Peer Reviewed Journal

ISSN 2454-2725

अंक 75

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

जनकृति

जुलाई 2021

JANKRITI

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

Volume 7, Issue 75, July 2021
(Peer-Reviewed / Refreed)

ISSN: 2454-2725
(विशेषज्ञ समीक्षित)

जनकृति

जुलाई 2021

प्रकाशक
जनकृति संस्था
संपादकीय कार्यालय
फ्लैट जी-2, बागेश्वरी अपार्टमेंट,
आर्यापुरी, रातू रोड़, रांची, 834001, झारखंड, भारत
ईमेल: jankritipatrika@gmail.com
वेबसाईट: www.jankriti.com
संपर्क: 8805408656

इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए प्रकाशक से अनुमति आवश्यक है।

जनकृति

परामर्श मंडल

डॉ. सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका), प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय (मुंबई)
डॉ. हरीश नवल (दिल्ली), डॉ. हरीश अरोड़ा (दिल्ली), डॉ. प्रेम जन्मेजय (दिल्ली),
डॉ. कैलाश कुमार मिश्रा (दिल्ली), प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा (उज्जैन), प्रो. कपिल कुमार (दिल्ली), प्रो. जीतेंद्र कुमार (दिल्ली)

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा
(सहायक प्रोफ़ेसर, झारखंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सहायक संपादक

डॉ. पुनीत बिसारिया
(एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश)

संपादन मण्डल/विशेषज्ञ समिति

डॉ. सदानन्द काशीनाथ भोसले
(प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ , महाराष्ट्र)
डॉ. नाम देव (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. प्रज्ञा (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. रचना सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. रूपा सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, बाबु शोभा राम गोवेरमेंट आर्ट कॉलेज, राजस्थान)
डॉ. पल्लवी (सहायक प्रोफ़ेसर, तेजपूर विश्वविद्यालय, असम)
डॉ. मोहसिन खान (एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जेएसएम कॉलेज, रायगढ़, महाराष्ट्र)
डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा (सहायक प्रोफ़ेसर, मिजोरम विश्वविद्यालय, मिजोरम)
डॉ. प्रवीण कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश)
डॉ. मुन्ना कुमार पाण्डेय (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी (सहायक प्रोफ़ेसर, जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ, राजस्थान)
डॉ. ज्ञान प्रकाश (सहायक प्रोफ़ेसर, बिहार)

संपादन सहयोग

डॉ. शैलेंद्र कुमार शुक्ला (अध्यापक, गिरिडीह, झारखंड)
डॉ. संजय सेफर्ड (लेखक, ट्रेवल ब्लॉगर, संस्थापक किताबनामा, दिल्ली)
श्री चन्दन कुमार (शोधार्थी, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा)
राकेश कुमार (शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

संस्थापक सदस्य

कविता सिंह चौहान (मुंबई)
डॉ. जैनेन्द्र कुमार (बिहार)

अंतरराष्ट्रीय सदस्य

प्रो. अरुण प्रकाश मिश्रा (स्लोवेनिया), डॉ. इंदु चंद्रा (फ़िजी), डॉ. सोनिया तनेजा (स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी), डॉ. अनिता कपूर (अमेरिका)
डॉ. शिप्रा शिल्पी (जर्मनी), राकेश माथुर (लंदन), रिद्मा (श्री लंका), मीना चोपड़ा (कैनेडा), पुर्णिमा वर्मन (शाहजहां), पूजा अनिल (स्पेन)
सोहन राही (सुरे)

संपादकीय

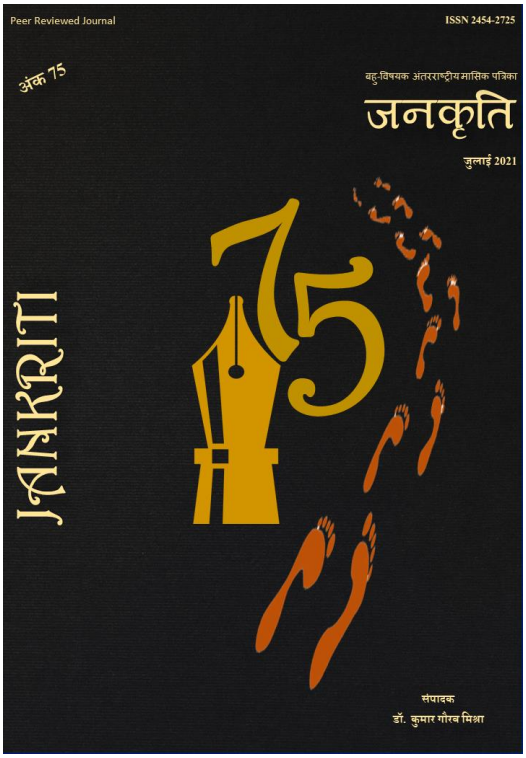

आप सभी पाठकों के समक्ष जनकृति का 75वां अंक प्रस्तुत है। जनकृति संस्था की पत्रिका 'जनकृति' का प्रकाशन 2015 में प्रारम्भ हुआ था। इन छः वर्षों में सामान्य अंकों के साथ 9 विशेषांक भी प्रकाशित हुए, जिसमें विदेशी भाषा कविता विशेषांक, थर्ड जेंडर विशेषांक, हिंदी पत्रिका विशेषांक, लोकभाषा विशेषांक, जल विशेषांक, साक्षात्कार विशेषांक, राजनीति विशेषांक एवं साक्षात्कार विशेषांक प्रमुख है। जनकृति को अत्यंत ही कम समय में अंतरराष्ट्रीय पहचान मिली। वैश्विक स्तर हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु वर्ष 2018 में 'एफपीए लंदन' ने पत्रिका को आधिकारिक सदस्यता प्रदान की। इसके अतिरिक्त जनकृति के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए उर्वशी सम्मान से सम्मानित किया गया।

अकादमिक क्षेत्र में शोध की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। शोध आलेखों का चयन विभिन्न क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है, जो विषय की नवीनता, मौलिकता, तथ्य इत्यादि के आधार पर चयन करते हैं। जनकृति के माध्यम से हम सृजनात्मक, वैचारिक वातावरण के निर्माण हेतु प्रतिबद्ध है। विमर्श केन्द्रित इस पत्रिका में हिंदी भाषा एवं साहित्य के साथ-साथ विभिन्न अनुशासन से सबंधित शोध आलेख, लेख प्रकाशित होते हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचनाओं को भी स्थान दिया जाता है।

-डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

अनुक्रम

संपादकीय 4

कला चिंतन

स्वातंत्र्य और कला : गुरुदेव के झरोखे से/ डॉ. सुरभि विप्लव 7

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय एकता/ डॉ. मोहन लाल जाट 11

तेय्यम:अनुष्ठानिक कला रूप/ रोहित जैन 15

दर्शन

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं शोध (दर्शन एवं वैचारिकी के विशेष संदर्भ में)/प्रिंस कुमार सिंह, निशा राय 20

दलित एवं आदिवासी चिंतन

दलित कहानियों में परंपरागत विचारधारा की स्वानुभूति/ डॉ. सजिथा 24

स्त्री चिंतन

स्त्री-अस्मिता का सैद्धान्तिक पक्ष/डा॰ शर्वेश पाण्डे,पूनम ठाकुर 28

ग्रामीण भारत की महिलाओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव/ कल्याणी प्रधान 38

समाज में दोषमुक्त महिलाओं की स्थिति: मानवशास्त्रीय अध्ययन/ गुंजन सिंह 43

मध्यकाल की स्त्री रचनाकारों से जुड़ी जनश्रुतियाँ/ ज्योति 49

साहित्य चिंतन

नलिन विलोचन शर्मा: साहित्यिक योगदान/ अजय कुमार 53

डॉ. ब्रजेश वर्मा का साहित्यिक सफर/ डॉ. कुमारी उर्वशी 58

आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ/ डॉ. अरविंद कुमार 72

भाषा संवेदना और आदर्श प्रेम का आख्यान : उसने कहा था/ अनु मित्तल(अग्रवाल) 81

बेरोज़गार की कसक/ डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत 85

ऋता शुक्ल की कहानियों में चित्रित स्त्री-छवि/ साक्षी कुमारी 89

'मीठी नीम' के जरिये पर्यावरण संरक्षण की अपील/ कमलेश 93

समसामयिक चिंतन

पर्यावरण की वर्तमान चुनौतियां व उनका समाधान/ अभिषेक रंजन 97

शिक्षा

A COMPARTIVE STUDY OF PROFESSIONAL DEVELOPMENT OF SENIOR SECONDARY SCHOOL BETWEEN MALE & FEMALE TEACHERS/ Dr. Rajkumari 103

धर्म एवं संस्कृति

Worship Śiva in Śaivacintāmaṇiḥ/ Swati Sucharita Pattanaik 109

विश्व साहित्य

Role of Chance and Fate in Hardy's novel/ Rajni 117

आलेख

कामकाजी महिला : संघर्ष की कहानी/ डॉ. सरोज कुमारी 120
प्रकृति सरंक्षण और लोकपर्व 'हरेला'/ प्रिया कुमारी 126
हिन्दी आख़िर क्यों ? संवाद की समरूपता में निहित है राष्ट्र की प्रगति/ डॉ. अर्पण जैन 'अविचल' 129

साहित्यिक रचनाएँ

सुशांत सुप्रिय की कविताएँ 132
अलविदा, मेरे प्यारे बेटे!/ कपिल सहारे 133

पुस्तक चर्चा

दादूपंथ के शिखर संत : एक मूल्यांकन/ समीक्षक-डॉ. विजय मणि त्रिपाठी 135
आज़ाद भारत के स्वप्न, संघर्ष एवं अतीत का काव्यात्मक आख्यान : उत्तर कबीर नंगा फकीर/ समीक्षक – कुलदीप उपाध्याय 142
मुर्दे का मजहब बताती 'मंटो न मरब'/ समीक्षक- तेजस पूनियां 149

स्वातंत्र्य और कला : गुरुदेव के झरोखे से

डॉ. सुरभि विप्लव *

"बहु दिन धरे, बहु कोश दुरे
बहु व्यय कोरे, बहु देश घुरे
देखते गियेछि पर्वत-माला, देखते गियेछि शिंधु
देखा होए ना चक्षु मेलिया
घर होते शुधु दुई पा फेलिया
सारा देश घुरे, देखा होए न एकटी घास उपरे
एक टी शिशिर बिंदु"।"

(मैं कई वर्षों तक हजारों मील घूमा, खूब खर्च करके बहुत सारे देशों में घूमता रहा, पर्वतमालाएं-सागर देखता रहा, लेकिन इन आंखों ने उसे नहीं देखा जो मेरे घर से दो कदमों की दूरी पर ही था। पूरा देश घूमकर भी जो चीज दिखाई न पड़ सकी वह थी, मैदान में घास के शीर्ष पर टंगी ओस की एक बूंद)

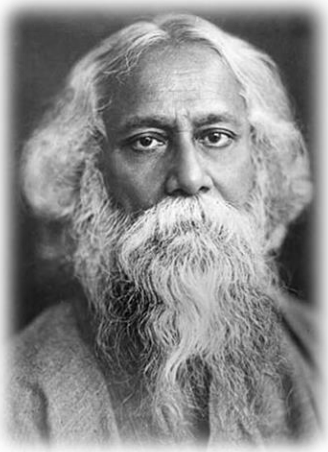

कविता की अंतिम पंक्ति में विश्व कवि रवींद्रनाथ ने ओस की एक बूंद की सूक्ष्मता को समूची पृथ्वी के समक्ष मानवीयता की विराटता के प्रतीक के रुप में प्रस्तुत किया है। जो मनुष्य की दृष्टी से ओझल हो जाती है। आज भी शांतिनिकेतन के प्रांगण की मुक्त प्राकृतिक घास, पेड़-पौधों की जड़ों और फुनगियों पर गुरूदेव की उस दार्शनिकता को महसूस किया जा सकता है। जिसमें मानव सभ्यता की सुख-सुविधा से वंचित उस अंतिम मनुष्य तक को देख लेने की नजर की नज़ीर की प्रस्तुति के साथ-साथ गुरुदेव'विश्व भारती, शांतिनिकेतन' विश्वविद्यालय के संस्थापक के रूप में शिक्षा, संस्कृति और दर्शन की नैसर्गिकता का रचाव-बसाव कर रहे थे। विश्व साहित्य का सर्वोच्च सम्मान 'नोबल' और उस नन्ही सी बूंद के रिश्ते को समझना आज संकटग्रष्त सभ्यता के सम्मुख एक बड़ी चुनौती है।

रवींद्रनाथ ने भारतीय ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य, संस्कृति और दर्शन को बहुत ही गहराई से प्रभावित किया है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, गीत-नाटक, और नृत्य-नाटक आदि बहु-विधाओं में सृजन किया है,सिर्फ रचना ही नहीं समाज को सुसंस्कृत करने के लिये'शांतिनिकेतन' जैसे बहु-अनुशासनिक शैक्षणिक-सांस्कृतिक संस्थान (विश्वविद्यालय) की स्थापना किए। रवींद्रनाथ को पूरी दुनिया 'विश्व-कवि' और 'गुरुदेव' की उपाधियों और नोबल पुरस्कार विजेता के रूप में अच्छी तरह से जानती है। रवींद्र नाथ ठाकुर का कला प्रेम शांतिनिकेतन की आबोहवा में समाहित है। जिसमें प्रकृत्ति का महासाम्राज्य, दृष्टि और दर्शन है जिसमें प्रकृत्ति की विराटता स्त्री की सहज व्यापकता के साथ एकाकार होकर अभिव्यक्त होती है। एक सूत्र में कहा जाय तो जहां आधुनिकता के साथ प्रकृत्ति की व्यापकता व्याप्त है। स्त्री की उदात्त भावनाओं और बौद्धिकता में प्रकृत्ति का एकाकार या प्रकृति में मनुष्य का समाहार है शांति निकेतन। इसमें प्रगतिशील विवेक और बौद्धिक विचारों के प्रति जागरूकता है जो बंगाल ही नहीं समस्त भारत का नवजागरण है जहां बदलते सामाजिक दर्शन का प्रभाव साफ-साफ देखा जा सकता है। सत्यजीत राय ने कहा कि मौका मिलने पर समस्त भारत को शांति निकेतन बिल्कुल गुरूदेव की तरह दोबारा बनाएंगे।

रवींद्रनाथ में उस महान परम्परा के सम्वाहक

*डॉ . सुरभि विप्लव, सहायक प्रोफेसर, प्रदर्शनकारी कला विभाग (फिल्म एवं थियेटर),
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय , वर्धा

होने के साथ-साथ उनमें नवसृजन के नवाचार को जोड़कर समृद्ध करते हुये गति प्रदान करने की प्रगल्भता थी, जो बहुत ही गहराई के साथ यहां के कण-कण में अंतर्निहित है। रवींद्रनाथ की कहानी, उपन्यास, चित्रकला, कविता, नृत्य, नाटक और अन्य समस्त विधाओं के सुर, ताल, छंद, लय और पात्र अपनी जीवंतता के साथ शांति निकेतन में संलग्न हैं।

कला शब्द इतना व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ केवल एक विशेष पक्ष को छूकर रह जाती हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार कला उन सारी

क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय शास्त्रियों ने भी कला में कौशल को महत्त्वपूर्ण माना है।कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमे शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। जिसे रवींद्रनाथ ने मनोयोग से सृजित किया। कला के द्वारा ही बुद्धि आत्मा का स्वतंत्र स्वरुप झलकता है। कला उस क्षितिज की भाँति है जिसका कोई छोर नहीं, इतनी विशाल इतनी विस्तृत अनेक विधाओं को अपने में समेटे, तभी तो कवि मन कह उठा-

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः ॥

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मुख से निकला "कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है "। कला कैसे स्वतंत्र रूपी होता है यह कला को सिखाने के लिए कैसे स्वतंत्र वातावरण की अवश्यकता होती है इसपर गुरुदेव ने खूब काम किया है।शांतिनिकेतन का पूरा परिसर इतना स्वतंत्र है जहां तमाम तरह की कलाएं सिखायी जाती हैं जहां समय का कोई बंधन नहीं है जैसे कला भवन ,संगीत भवन आदि जहां से यदि आप गुजर जाएँ तो अनायास ही मन थिरकने लगेगा ।पूरी दुनिया उन्हें उनके 'गीतांजलि' पर नोबल पुरस्कार के लिए याद करती है और हम भारतीय भी अपनी पीठ थपथापा लेते है कि टैगोर के बहाने ही सही यहाँ पहला नोबल तो मिला, लेकिन 'गीतांजलि' के अलावा भी उन्होने संसार को सुंदर बनाने के लिए बहुत कुछ दिया । उन्होने एक हजार से अधिक कविताएं लिखी हैं और दो हजार से भी अधिक गीतों की रचना की। इसके अतिरिक्त बहुत सारी कहानियाँ, उपन्यास, पेंटिंग, शिक्षा, दर्शन और राजनीति जैसे विविध विषयों पर सृजन किए। इन सबके अलावा रवींद्र नाथ टैगोर एक महान नाटककार-निर्देशक भी थे जिनके नाट्य-नृत्य-गीत संबंधी परंपरा आज भी शांतिनिकेतन के परिसर और विश्व के मंच पर गूँजता है। विश्व कवि क अधिक्तम सृजन शांति निकेतन में ही सम्पन्न हुआ था।

रवींद्र नाथ टैगोर नाटककर, अभिनेता, निर्देशक, नर्तक एवं संगीतकार थे, उन्होंने कलाओं के लिए अपने द्वार को खोले थे उदाहरण के लिए शांतिनिकेतन को ही ले लीजिये जहां आज भी आरंभिक शिक्षा वृक्ष के नीचे बैठकर की जाती है वहाँ के शिष्य और गुरु दोनों ही जमीन पर बैठते हैं । सबसे बड़ी बात यह है कि शिष्य अपने गुरु यदि पुरुष है तो दादा यदि स्त्री है तो दीदी कहते है, यह परंपरा टैगोर ने इसलिए डाली कि शिष्य और गुरु का रिश्ता बहुत दूर का न होकर अपनत्व भरा करीब का लगे । वस्त्र विधान भी, भारतीय कुर्ता-पैजमा जिससे छात्रों को सहूलियत हो, बहुत ही चिंतन के साथ लागू किए। कला तो वहाँ कि धरती में कूट कूट कर भरी है, रवींद्र गीत, रवींद्र नृत्य तथा रवींद्र नाटक जो अपनी एक विशेष शैली और संवेदना के लिए प्रसिद्ध है। बांग्ला नाटक के विकास के लिए अनेक लेखकों, कलाकारों रंगकर्मियों और शुभेच्छुओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह वह युग था जब अर्थप्राप्ति के लिए लोग थियेटर नहीं करते थे, बल्कि थियेटर के माध्यम से समाज सेवा ही अपना धर्म समझते थे। अपने परिवार और समाज से बहिष्कृत और आवृत होकर, सुंदर समाज के लिए थियेटर में लगे रहे। इसी प्रकार से रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य की अन्य कला विधाओं के साथ-साथ रंगमंच को भी बहुत कुछ दिया। उनके परिवार के बीच 'जोरासांको थियेटर' का दल काम करता था। उस दल द्वारा अभिनीत नाटक को देखकर इनके मन में उसके प्रति अनुराग हुआ। 1877 में पहली बार अपनी पारिवारिक प्रस्तुति में ये मंच पर आये। लेकिन जनता के बीच पहली बार 'वाल्मीकि प्रतिभा' नाटक के माध्यम

से जाने गये। उसके बाद इन्होंने कई नाटकों का मंचन किया और कई का निर्देशन भी किया। इन्होंने अनेक नाटक भी लिखे। 75 वर्ष की उम्र में शांति निकेतन में 1935 ई. में अपने नाटक 'शरदोत्सव' में अन्तिम बार उतरे। इनके नाटकों में संगीत नाटक, काव्य नाटक, हास्यप्रधान नाटक, सामाजिक नाटक, प्रतीकात्मक नाटक हैं। 'बहुरूपी' थियेटर दल ने शम्भु मित्रा के निर्देशन में इनके कुछ बड़े नाटकों का प्रदर्शन किया। रविबाबू की रूचि थियेटर में थी लेकिन वह थियेटर से औरों की तरह जुड़े नहीं रहे। उनके लिखे नाटकों में वाल्मीकि प्रतिभा, ऋतुरंग, वसंत, फाल्गुनी, शेशवर्षण, चण्डालिका, ताशेरदेश, चित्रांगदा, यामा, राजा और रानी, विसर्जन, शरदोत्सव, प्रायश्चित, डाकघर, चिरकुमार सभा, अचलआयतन, रक्तकरबी, मुक्तधारा, गृहप्रवेश, शेषरक्षा आदि हैं। जब 1917 में ' जोरासांको थियेटर' भवन के 'विचित्र हॉल' में 'डाकघर' का मंचन हो रहा था तो आमंत्रित दर्शकों में महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, एनीबेसेन्ट, मदनमोहन मालवीय जैसे लोग भी उपस्थित थे। टैगोर ने अपने नाटकों का अधिकांश मंचन शांतिनिकेतन में ही किया। एक बार उन्होंने कहा है कि कलकत्ता के थियेटर की अपेक्षा बंगाल का जात्रा ज्यादा पसंद है क्योंकि जात्रा में अभिनेता और दर्शक के बीच निकटता अधिक रहती है। गुरुदेव के इस कथन में लोकरंग की सुगंध को शांति निकेतन में महसूस किया जा सकता है।

गुरुदेव के नाटक आज भी प्रासंगिकता को लिए हुए है उदाहरण के लिए नाटक रक्तकरबी, विसर्जन, मुक्तधारा आदि।महान निर्देशक शंभू मित्र उनके 'रक्तकरबी' को प्रस्तुत करके ही महान बने। इस नाटक में एक सशक्त स्त्री पात्र 'नंदिनी' समूची राजसत्ता को हिला कर रख देती है। ऐसे कई उदाहरण बांग्ला रंग में आज भी देखा जा सकता है जहां रबीन्द्र का रंग बहुत ही चटख है। बंगाल से बाहर हबीब तनवीर जैसे अनेक निर्देशक भी टैगोर का 'विसर्जन' कई बार प्रस्तुत किए हैं। नृत्य नाटिका को टैगोर ने एक अलग पहचान दिया। 'तोता कहानी,' 'चित्रांगदा' और 'चंडालिका' जैसी नृत्य नाटिकाओं का अपना अलग ही महत्व है। जिसे मंचित करके आज के अंधकार को कम किया जा सकता है। उनके द्वारा रचित संगीत जीवन के वास्तविक परतों को खोलता है, गीत जो नृत्य और संगीत के साथ विलयित होकर जादुई संप्रेषणीयता को चार-चाँद लगाता है, यह प्रयोग रंगमंच को जीवंत बनाता है। "मेरे मन में नित कोई नाचे रे ताता थेई", "आनंद धारा बहे रे जग में", "तेरी आवाज़ पे यदि कोई ना आए तो फिर चल अकेला रे" आदि ऐसे ही अनेक रवीन्द्र नृत्य–गीत-संगीत प्रधान हैं। गुरुदेव ने जीवन के अंतिम दिनों में चित्र बनाना शुरू किया। जिसमें युग का संताप, संशय, गुलामी, क्लान्ति और निराशा और आशा के स्वर अभिव्यक्त हुये। मूल रूप से मनुष्य और ईश्वर का संबंध उनकी रचनाओं में बहू रंग- रूपों में प्रस्फुटित हुआ है, जिसमें से प्रत्येक विद्वान अपनी-अपनी दृष्टी के अनुसार मोक्ष, आक्रोश, संघर्ष, विद्रोह, मुक्ति, आनंद हरेक तरह की विशिष्टताओं को रेखांकित करने में सफल हो पाते हैं। रबीन्द्रनाथ की यह बहुत बड़ी रेंज है जिसे किसी एक खांचे में बांधना मुश्किल है। आज भी जब हम नृत्य, संगीत और नाटक की संस्कृति की बात करते हैं तो बिना रवींद्र नाथ और उनके/हमारे शांतिनिकेतन के सब अधूरा लगता है।

स्वतंत्रता का सटीक पर्यावरण गुरुदेव के चिंतन, मनन, लगन और व्यवहारिक सृजन में अभिव्यक्त हुआ है। साहित्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक और शिक्षा में योगदान उन्हें बीसवीं सदी की महांतम विचारकों में शुमार करता है। उनके वैचारिक और कला की अनूठी छुअन के बिना भारत की आधुनिक अस्मिता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शांति निकेतन के आधार पर हम अपने अतीत को समझ बुझ कर भविष्य के साथ उसका संबंध निश्चित कर सकते हैं। उनकी मान्यता थी कि एक नयी, विवेक सम्पन्न और धर्मनिरपेक्ष सार्वभौमिकता द्वारा अंग्रेजी राज की जगह लेने का राष्ट्रवादी स्वप्न कभी साकार नहीं हो सकता है जब तक भारत की सांस्कृतिक विरासत और विविध जीवन- शैलियों के अनुसार साम्रज्यवाद विरोधी आंदोलन को एक नये विचार से अनुप्राणित नहीं किया जायेगा तब तक आजाद भारत का स्वप्न बौना साबित

 ISSN: 2454-2725

होगा। यह समझ शांतिनिकेतन के रंध्र-रंध्र में समाया हुआ है बशर्ते कि उन्हे सच्चे मन की समझ के साथ देखा-सुना जाय। उन्होंने गांधी की तरह पश्चिमी सभ्यता की आलोचना किया, लेकिन आधुनिकता के मुक्तिकामी समझ के सात स्वरों के साथ नवजागरण पर पकड़ भी बनाये रखा। अपनी लोक-परम्परा और माटी से फूटने वाली जन भावनाओं पर निर्भर भी रहना चाहा, जिसकी झलक आज भी 'विश्व भारती' के प्रांगण में गुंजता है।'जन-गण-मन' हमारा तो 'आमार सोनार बांग्ला'बांग्ला देश का राष्ट्र गीत बना हुआ है और यही मन कह उठता है 'एइ अमा देर शांति-निकेतन, एइ अमा देर रवींद्रनाथ.....।

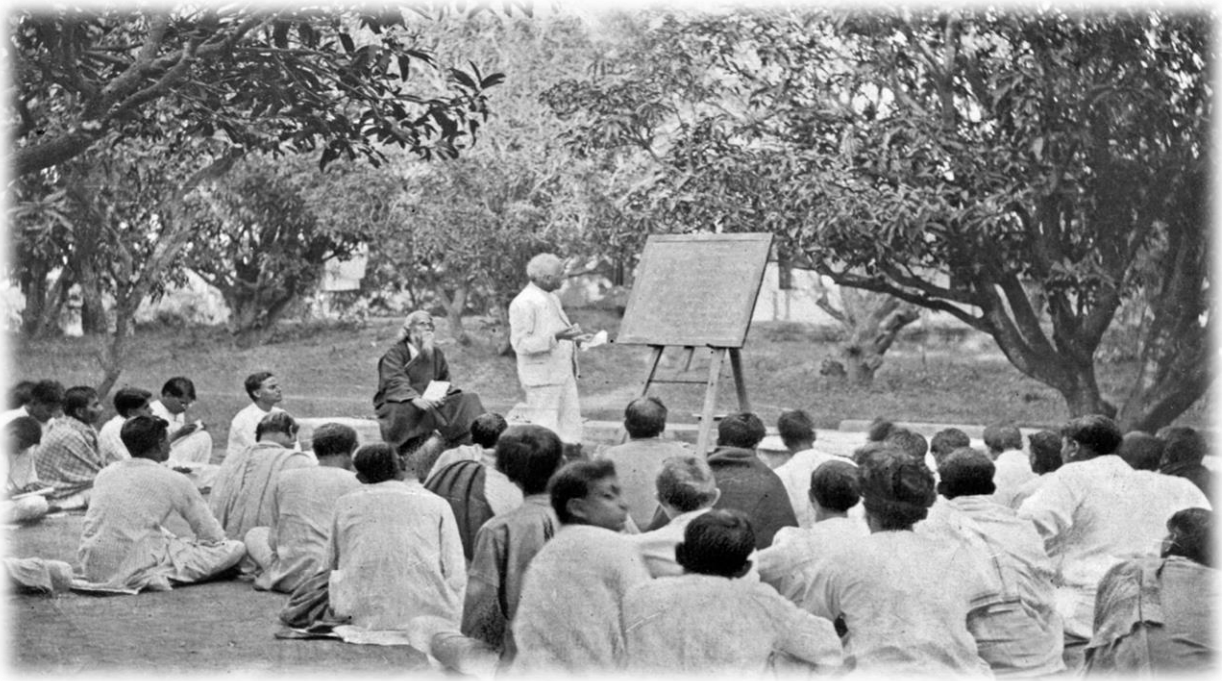

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय एकता

***डॉ. मोहन लाल जाट**

किसी भी देश में वर्ण-जाति,धर्म-संस्कृति और भाषा-क्षेत्र जैसी विविधता का होना असामान्य बात नहीं है। लेकिन 'राष्ट्र' में इन सबकी एकता का होना उतना ही अपरिहार्य है,जितना इनका अलग अस्तित्व रखना इनकी पहचान के लिए आवश्यक है। प्रसिद्ध भारतीय चिन्तक श्री मा स गोलवलकर ने 'राष्ट्र' शब्द को संबोधित करते हुए लिखा है-" जो भाव राष्ट्र के अन्तर्गत है,वह सम्पूर्ण में अविच्छिन रुप से घुले-मिले पाँच विशिष्ट अंशों का योग है। प्रसिद्ध पाँच इकाइयाँ-भौगोलिक(देश),जातीय(जाति) ,धार्मिक(धर्म),साँस्कृतिक(संस्कृति) और भाषात्मक(भाषा) है।"1 प्राचीन भारत में ये पाँचों इकाइयाँ पूँजीभूत थी,इसलिए हामारा देश सुखी,समृद्ध और शांतिमय था और इन्हीं पूँजीभूत इकाईयों के बल पर हमने स्वतंत्रता हासिल की। लेकिन मध्यकाल की भाँति आज धीरे-धीरे पुन: जाति,भाषा,धर्म,संस्कृति तथा प्रान्तीय स्तर की संकुचित भावना हमारे मन-मस्तिष्क में अप्रत्यक्ष रुप में प्रवेश करती जा रही है,चाहे उसमें राजनीतिक हस्तक्षेप की ही प्रधानता क्यों न हो। यह स्थिति हमारे देश,उसकी एकता और उसकी अन्तर्बाह्य सुरक्षा के लिए घातक रुप ले सकती है,यह विचारणीय प्रश्न है।

> "आजादी के बाद हिन्दी में लिखित ऐतिहासिक-सामाजिक नाटकों में हमारी सामाजिक-साँस्कृतिक, धार्मिक-साम्प्रदायिक, राजनैतिक एकता को पुनर्स्थापित करने और उसे अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए नाटककारों ने कथ्य, विचारधारा और अभिनय के स्तर पर अनेक सार्थक प्रयास किए हैं, जिनकी आज के भारत की एकता-अखंडता के लिए महत्ती आवश्यकता है।"

स्वतंत्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय एकता को अखंड बनाए रखने के लिए हिन्दी साहित्य में कविता,कहानी,उपन्यास की भाँति हिन्दी में लिखित नाटकों में हमारी सामाजिक-साँस्कृतिक,धार्मिक-साम्प्रदायिक,राजनैतिक एकता को पुनर्स्थापित करने और उसे अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए नाटककारों ने कथ्य,विचारधारा और अभिनय के स्तर पर अनेक सार्थक प्रयास किए हैं। जगदीश चंद्र माथुर ने 'कोणार्क','शारदीया' और 'पहला राजा' जैसे नाटकों में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाने में सफ़लता प्राप्त की है। हिन्दू-मुस्लिम धर्म तथा सम्प्रदायगत बढ़ती खाई को पाटना वर्तमान भारत के अस्तित्व की रक्षार्थ अत्यावश्यक है। हम सभी एक-दूसरे के समाज और धर्म का आदर करके ही अपनी मातृभूमि की गोद में समानता का हक पा सकते हैं।जगदीश चन्द्र माथुर के 'शारदीया' का नरसिंहराव युद्ध के पश्चात सिंधिया से यही शर्त लागू करने की प्रार्थना करता है-"पहली घोषणा तो यह कि दोनों राज्यों में हिन्दू और मुसलमानों को अपने धर्मकाज करने की पूरी आजादी होगी,न दखन में गोवध होगा ,न महाराष्ट्र में खुदापरस्ती पर रोक-टोक । और दूसरी घोषणा यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों परमात्मा की एक बराबर संतान है।इसलिए न हिन्दू मंदिरों का आघात होगा,न मुसलमान मजारों,पीरों और पैगंबरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रहेंगे-एक माँ की गोद में दो भाई।"2 सभी धर्मों को भारतीय

डॉ. मोहन लाल जाट, सहायक आचार्य-हिन्दी, स्नातकोत्तर राजकीय कन्या महाविद्यालय, सेक्टर-11,चंडीगढ़
मोबाइल -9016142497, ईमेल: dr.mohanlaljat@gmail.com

संस्कृति ने उदारता के साथ ग्रहण किया है और भविष्य में सर्वधर्म समभाव की यह धारणा यहां गूंजित होती रहेगी,'अशोक' यही घोषणा करता है-"वैदिक धर्म,जैन धर्म और सद्धम्म और अन्य भी जो धर्म है,वे एक-सी पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं और देखे जाएंगे।"3 आज राजनीति में इसी धर्म निरपेक्षता की जरुरत है।

भारत में कभी-कभी दो जाति या धर्मों के त्योहार एक ही दिन आ जाते हैं और दोनों धर्मों के अनुयायी उन्हें मनाने के लिए जुलूस/शोभायात्रा निकालते हैं,तब अचानक उनमें धार्मिक जज्बात एकनिष्ठ रुप से आने लगते हैं और देखते ही देखते साम्प्रदायिक आग भड़क उठती है। आज का मनुष्य साम्प्रादायिकता की आग में जुलस रहा है। देश में चारों तरफ़ फ़ैलती यह आग और वैमनस्य की भावना सभी का नाश और अहित ही करेगी,यह कटु सत्य किसी से छिपा नहीं है। हम सभी सम्प्रदायों का सम्मान तथा उपकार करके ही अपने समुदाय का भी हित तथा उपकार कर सकते हैं।सेठ गोविन्ददास के 'अशोक' में कारुबाकी राजा अशोक से कहती है-"मनुष्य को दूसरे सम्प्रदायों का भी आदर करना चाहिए। ऐसा करने से अपने सम्प्रदाय की उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार होता है।इसके विपरीत आचरण से न केवल दूसरे सम्प्रदाय का अपकार ही होता है वरन अपने सम्प्रदाय को भी क्षति पहुँचती है....आपस में मिल-जुलकर रहना और दूसरे धर्म को आदर से सुनना ही अच्छा है।"4

कबीर हिन्दु-मुस्लिम एकता की आज भी किंवदंत मिसाल है,क्योंकि वे हिन्दू की संतान और मुसलमान माता-पिता की परवरिश में पले-बढ़े थे। जन्मजात ही कबीर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप में हिन्दू-मुस्लिम समन्यशीलता को हमेशा बढ़ावा देते रहे और आज के सन्दर्भ में तो उनकी प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है।कबीर को अपने समय के दोनों धर्मों-सम्प्रदायों की कुरीतियों-बुराइयों का विरोध करने के कारण अनेक असहनीय कष्ट झेलने पड़े,लेकिन वे कभी इससे पीछे नहीं हटे और निरन्तर सुधार के रास्ते पर चलते रहे। भीष्म साहनी के 'कबीरा खड़ा बजार में' में कबीर अपनी माँ नीमा से कहते हैं-"कोई हिन्दू पूछेगा तो कहूँगा ब्राहमणी का बेटा हूँ। कोई तुर्क पूछेगा तो कहूँगा,नीमा मुसलमानिन का बेटा हूँ।यही ना ? इससे हिन्दू भी कोड़े नहीं मारेंगे और तुर्क भी कोड़े नहीं मारेंगे।तू यही चाहती है,ना ?"5

महात्मा गाँधी भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अहिंसक नेतृत्वकर्ता रहे हैं। उनका स्वभाव और उनके जीवन के सिद्धांत भारतीयों की एकता और स्वतंत्रता-भावना से परिपूर्ण थे। वे मरकर भी भारत की आजादी के समय भारत के दो टुकड़े नहीं चाहते थे और विभाजन को वे खुद के सिद्धांतों के अनुरुप सदियों से साथ रह रहे हिन्दू-मुस्लिम एकता को तोड़ने वाली सोच मानते थे। गाँधीजी की सोच और उनके सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है। सुशील कुमार सिंह के 'अलख आजादी की' नाटक में गाँधीजी का कथन इसका प्रमाण है। "गाँधीजी:दो कौमों का सिद्धांत असत्य है...हिन्दुस्तान के मुसलमान विभाजन पर जोर दें तो मैं अहिंसा का पुजारी होने के नाते उन्हें रोक नहीं सकता...लेकिन यह एक कौम के रुप में साथ रहने के लिए अनगिनत हिन्दुओं और मुसलमानों ने सदियों तक जो काम किए हैं...उसे धूल में मिलाना है...मेरी आत्मा इस कल्पना के विरुद्द बगावत करती है कि हिन्दुत्व और इस्लाम दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों और सिद्धांतों के प्रतिनिधि हैं।"6

धर्म और सम्प्रदाय से ऊपर भारत में आज भी यदा-कदा वर्णों की असमानता चरम पर दृष्टिगत होती है। देश में जाति और वर्ण के आधार पर भेदभाव के चलते जाने कितनों की जान बेवजह ले ली जाती है,कितनों को सरेआम बेआबरू किया जाता है और कितने ही लोग स्वयं को उच्च वर्ण/ जाति का समझकर अपने से निम्न को नीच तथा हीन मानकर उनके साथ 'प्रार्थी-सा' व्यवहार करते हैं? आजादी के इतने वर्षों बाद भी ऐसी नराधम सोच का होना हमारी एकता के लिए विघातक सिद्ध हो रहा है,क्योंकि इससे एक ही धर्म में अनेक परतें बनती जा रही है। हरिकृष्ण प्रेमी के 'शक्ति-साधना' में पतंजलि पुष्यमित्र को ब्राहमण-क्षत्रियत्व से ऊपर ऊठकर सोचने की आवश्यकता पर बल देता हुआ

कहता है-"इस धरती पर न कोई ब्राहमण न कोई क्षत्रिय। जाति और वर्णों की सीमाएँ धोखा है वत्स्। बुद्धि सबके पास ,भुजाएँ भी सबके पास है।जब मनुष्य मस्तिष्क से काम लेता है,तब वह ब्राहमण है,चाणक्य है।जब वह भुजाओं में मानव-कल्याण के लिए तलवार पकड़ता है,तब वह क्षत्रिय है,चंद्रगुप्त है।जागो मेरे चंद्रगुप्त निद्रा से जागो।"7

धार्मिक,भाषिक,सामाजिक और प्रादेशिक रुप से भारतीय मनीषियों ने अखंड भारत की कल्पना की थी,जिसे हमें बनाए रखना है।'शक्ति-साधना' में श्रीचंद और पुष्यमित्र का संवाद इसी एकता का समर्थन करता हमें प्रेरित कर रहा है आज भी। "श्रीचंद: सांस्कृतिक और भौगोलिक दृष्टि से सारा भारत सदा एक रहा है।किसी धर्म को लीजिए उसके अनुयायी हिमालय से लेकर भारतीय सागर तक फ़ैले हुए हैं-बौद्ध,वैदिक धर्मावलंबी और जैन।बौद्धों के मंदिर विहार,स्तूप भारत के प्रत्येक कोने में बने हुए हैं,इसी प्रकार जैन मंदिर भी और शिव,राम और कृष्ण के मंदिर भी। हमारी पवित्र नदियों में जहां उत्तर की गंगा-यमुना आदि को और मध्य की नर्बदा-गोदावरी को माना गया है तो वहीं दक्षिण की कृष्णा-कावेरी को भी। भारत के मनीषियों ने सदा ही एक और अखंड भारत की कल्पना की है। पुष्यमित्र:प्रकृति ने इसे अविभाज्य भू-खण्ड बनाया है,धर्म के नाम पर भी इसका विभाजन नहीं किया जा सकता, क्योंकि कोई प्रदेश ऐसा नहीं जहां केवल केवल एक धर्म के निवासी हो,विभिन्न धर्मों के मानने वाले अपने विश्वास के अनुसर जीवन-यापन करते हुए भाई-भाई की भाँति रहते हैं।"8

प्राचीन भारत कर्म आधारित भारत था,इसलिए जाति-धर्म,उच्च-निम्न जैसे कोई शब्द ही नहीं थे। धीरे-धीरे कर्म से निकलकर हमारी व्यवस्था जाति-वर्ण पर आने लगी तो समाज में अस्पृश्यता-छुआछूत जैसी घृणास्पद परम्परा पनपी। इसके कारण हमारी सामाजिक एकता खंड-खंड होने लगी। आज के वैज्ञानिक युग में भी ऐसी भावना और सोच का होना आश्चर्यजनक भी है और भविष्य के भारत के लिए एक चेतावनी भी। शंकर शेष के 'बाढ़ का पानी' में इसी समस्या को गाँव में निम्न जाति के माने जाने वाले बटेसर के सत्य-कथन के माध्यम से उठाया है -"बटेसर:चारों ओर मनुष्य-मनुष्य को अस्पृश्य समझता है। आदमी अब चंद्रमा पर पहुँच चुका है,यह छुआछूत हमारे देश की छाती पर सबसे बड़ा घाव है। दूसरे लोग घाव का इलाज करते हैं,पर हम आज भी उसे पाल रहे हैं,इस बाढ़ ने हमें सबक दिया है। ठीक है वह हमारा सब कुछ बहाकर ले गयी,पर साथ ही हमारे मनों का मैल भी ले गई। पंडित,एक इससे भी भयानक बाढ़ हमारे देश को घेर रही है,यह है आपसी फ़ूट की।साम्प्रदायिकता की। अनुशासनहीनता की। स्वार्थ की और हिंसा की। यह बाढ़ हमें दिखाई नहीं देती,पर हम घिर गए हैं..."9 इसका समाधान भी यूं सुझाया गया है कि जैसे सूर्य-चंद्र,धरती-आकाश,हवा-पानी,पेड़-पौधे,जीव-जन्तु किसी के साथ भेदभाव नहीं करते हैं,वैसे ही हमें भी एक होकर समानता-एकता का व्यवहार करना चाहिए। "ठाकुर:पंडित,भगवान क्या ब्राहमण के लिए अलग,ठाकुर के लिए अलग और अछूत के लिए अलग पानी बरसाता है? सब पानी एक है। फ़रक केवल हमारे दिमाग में है,...उसे मैंने छुआ है। नवल ने छुआ है,छीतू ने इसे हाथ लगाया है।तब तुम क्यों इस पानी को पार कर आए।देखो पंडित तुम्हारा तर्कशास्त्र ही गलत है-सब चीजें एक दूसरे को छू रही है।"10 प्रकृति का यह सन्देश हमें शिरोधार्य कर एकता के सूत्र में बँधे रहना होगा,एक मजबूत भारत के लिए।

वर्तमान परिस्थितियों में भारत बाहरी दुश्मनों से तो चिंतित और घिरा हुआ है ही,आन्तरिक देशद्रोहियों से भी बुरी तरह संत्रस्त है,जख्मी है। ऐसे में देश के इन आन्तरिक गद्दारों और देशद्रोहियों का सफ़ाया करना अत्यावश्यक है ताकि देश एकता के सूत्र में बँधा रह सके। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'शक्ति-साधना' पर बल देते हुए इसका उपाय सुझाया है-"देश अनेक राज्यों और समुदायों में विभाजित है। हमें भारत के प्रत्येक नागरिक के ह्दय में देश के प्रति आस्था उत्पन्न करनी है। विदेशियों से पहले देशद्रोहियों का सफ़ाया करना है और सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधना है।"11

हमारा सम्पूर्ण भारत एक परिवार है,जिसका प्रत्येक सदस्य अगर अपने परिवार के प्रति समर्पित हो,हम बड़ों का आदर करें और बड़े-बुजुर्ग छोटों की उपेक्षा के बजाय उनको महत्व दें तो विदेशी कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो,वह हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है।इस पारिवारिक एकता के सूत्र को समझाते हुए प्रेमीजी लिखते हैं-"यह सम्पूर्ण भारत एक बड़ा परिवार है।परिवार का प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने सुख,अपनी सुरक्षा और अपनी स्वतंत्रता की चिंता करेगा तो लुटेरे एक-एक कर सबको लूट लेंगे। यदि सब मिलकर सबकी रक्षा करेंगे तो लुटेरे शक्तिशाली परिवार का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे।"12

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आजादी के बाद हिन्दी में लिखित ऐतिहासिक-सामाजिक नाटकों में हमारी सामाजिक-साँस्कृतिक, धार्मिक-साम्प्रदायिक, राजनैतिक एकता को पुनर्स्थापित करने और उसे अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए नाटककारों ने कथ्य, विचारधारा और अभिनय के स्तर पर अनेक सार्थक प्रयास किए हैं, जिनकी आज के भारत की एकता-अखंडता के लिए महत्ती आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. श्री मा स गोलवलकर : हमारी राष्ट्रीयता पृष्ठ-32
2. जगदीश चंद्र माथुर : शारदीया पृष्ठ-44-45
3. सेठ गोविन्ददास : अशोक पृष्ठ-78
4. सेठ गोविन्ददास : अशोक पृष्ठ-114
5. भीष्म साहनी : कबिरा खड़ा बजार में पृष्ठ-22
6. सुशील कुमार सिंह : अलख आजादी की पृष्ठ-80-81
7. हरिकृष्ण प्रेमी : शक्ति साधना पृष्ठ-26
8. हरिकृष्ण प्रेमी : शक्ति साधना पृष्ठ-80
9. शंकर शेष : बाढ़ का पानी पृष्ठ-62
10. शंकर शेष : बाढ़ का पानी पृष्ठ-45
11. हरिकृष्ण प्रेमी : शक्ति साधना पृष्ठ-89
12. हरिकृष्ण प्रेमी : अमृतपुत्री पृष्ठ-19

तेय्यम:अनुष्ठानिक कला रूप

रोहित जैन*

दक्षिण भारत के केरल राज्य को विभिन्न कला-सांस्कृतिक परंपराओं, रीति-रिवाजों और लोक अनुष्ठानों के लिए धनवान माना जाता है। यह राज्य सहस्त्र वर्षों पुरानी सांस्कृतिक विरासत को न केवल जीवित रखे हुए है वरन् वर्तमान समय में भी अपनी पारंपरिकता को उत्साह के साथ आगे बढ़ा रहा है। इसी पारंपरिकता में यहां अनेक कला रूपों का उद्भव और विकास हुआ। यहां के विभिन्न तट कला रूपों के प्रस्फुटन और विकास के साक्षी माने जाते हैं। इन कला रूपों[1] को हम चार प्रमुख वर्गों में विभाजित कर समझ सकते हैं-

- प्रदर्शन कला रूप
- केरल की अनुष्ठानिक कला रूप
- युद्ध कला रूप
- केरल के लोक कला रूप

केरल की सांस्कृतिक विरासत को समेटे हुए यह विभिन्न कला रूप इस प्रदेश की अप्रतिम पहचान है। केरल के विभिन्न अनुष्ठानिक कला रूपों में उत्तरी मालाबार क्षेत्र के प्रसिद्ध कला रूप 'तेय्यम' अथवा 'थेयम' का प्रमुख स्थान है। तेय्यम लगभग 800 वर्ष पुराना एक आध्यात्मिक या पूजा कला रूप है। डॉ. सूर्या बोस के अनुसार, "दैवी या देव का तद्भव रूप है 'तेय्यम'। यहां दैवी शक्ति का भास प्रतीत होता है।"[2] वहीं व्यापक अर्थ में तेय्यम का शाब्दिक अर्थ है– 'ईश्वर का अवतार' इसीलिए इसे देवता का उत्सव भी कहा जाता है। नंदुल एस अपने वर्चुअल आलेख में तेय्यम के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते है, "It is a ritualistic performance blending the art of dance, craft making, literature, history and the emotions of society."[3]

तेय्यम उत्तरी केरल के कन्नूर, कोझिकोड, कासरगोड, नीलेश्वरम आदि जिलों का लोकप्रिय अनुष्ठानिक कला रूप है। यह सामाजिक समानता को बढ़ावा देने वाला अनुष्ठानिक उत्सव है, जिसमें सभी वर्गों और जनजातियों के लोगों को धार्मिक भागीदारी के साथ जोड़ा जाता है। तेय्यम की उत्पत्ति के संबंध में मान्यता है कि कोलाथिरी नामक राजा के शासन काल में करिवेलूर के मनक्कटानन गुरुकल नामक महान कलाकार ने तेय्यम की कुछ शैलीयां विकसित की थी। तेय्यम नृत्य की समय अवधि मलयालम माह 'तुलाम'(अक्टूबर-नवंबर) के दसवें दिन से आरंभ होती है और मई के अंत तक समाप्त हो जाती है। तेय्यम की सामाजिकता और उसकी समय अवधि के विषय में भवानी चिरत अपनी पुस्तक में लिखती है, "The Theyyam season begins after the harvest in October and continues till April-May, ending before the onset of the monsoons.it is a time for thanksgiving and for propitiating the Gods and ancestors for the bountiful harvest."[4] तेय्यम के पीछे सामाजिक मान्यता है कि इसमें अधिकांशत: पुरुष वर्ग देवताओं का रूप धारण करते है और देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नृत्य करते हैं

रोहित जैन (शोधार्थी), हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड, केरल, मो.8448509399, मेल-rohitjainsep22@gmail.com

इससे देवता समाज को समृद्धि और शांति प्रदान करते हैं। तेय्यम के विषय स्थानीय मिथकों और क्षेत्रीय महत्व के पात्रों की लोक कथाओं से विकसित होते हैं। इसी के साथ इसे हिंदू पौराणिक कथाओं से प्रेरित भी माना जाता है। विभिन्न समुदायों के मिथकों और विश्वासों में अंतर के चलते, तेय्यम की विभिन्न शैलियां प्रचलित हैं; जिन्हें विभिन्न समुदायों द्वारा पवित्र कुंजो तथा अन्य स्थानों पर प्रस्तुत किया जाता है। तेय्यम का प्रदर्शन वर्ष में एक बार होता है और इसे 'कलियाट्टम' कहते है। तेय्यम के कलाकार विभिन्न सामाजिक समुदायों से आते हैं जिनमें वण्णान, मलयन, माविलन, वेलन, चेरवन, चिंकत्तान, कोप्पालन, पुलयन, कलनाडी, पेरुमण्णान, तुलुवेलन, अंजूट्टान और मून्नूट्टान जैसे समुदाय प्रमुख हैं। प्रत्येक समुदाय द्वारा प्रस्तुत तेय्यम की नृत्य शैली, संगीत, चेहरे तथा शरीर को रंग करने के तरीके और धारण किए जाने वाले वस्त्राभूषण आदि में उनकी परंपराओं के अनुसार अंतर होता है। इस प्रकार तेय्यम के विविध रूप देखने को मिलते हैं। तेय्यम के विविध रूपों में सबसे लोकप्रिय है; मुत्तप्पन, ती चामुण्डी, कण्डाकर्णन, गुलिकन, विष्णुमूर्ति, मुच्छिलोट भगवति आदि है। इनमें से ती चामुण्डी, अत्यंत जोखिमी माना जाता है क्योंकि इस रूप में, तेय्यम आग अँगारों में नृत्य करके दैवी माहौल बनाता है। यह कला अनुष्ठान प्रकृति से गहरे तक जुड़ा हुआ है। तेय्यम के लिए उपयोग होने वाली सामग्री; शिरोभूषण से लेकर चेहरे तथा शरीर के श्रृंगार में प्रयोग होने वाले रंग अपने आस-पास की प्रकृति से ही प्राप्त किए जाते है।

> "तेय्यम का उद्देश्य अशिक्षित जनता के बीच हिन्दू पौराणिक कथाओं और विश्वासों का प्रचार करना है। तेय्यम को लोकप्रिय अनुष्ठानिक कला रूप बनाने में उत्तरी केरल के लोगों द्वारा इसका निरंतर प्रदर्शन और संरक्षण मददगार रहा है"

तेय्यम के सबसे महत्वपूर्ण और आकर्षक भाग हैं; उसका मुखतेजुत्तु (चहरे का श्रृंगार), शिरोभूषण (मुडी) और उसकी वस्त्रसज्जा। कलाकार की वेषभूषा, सजावटी और रचनात्मक होती है। 'मुखतेजुत्तु' और 'मुडी' तेय्यम के ऐसे दो भाग है जो इसे विश्वनीयता प्रदान करते है। यह दोनों बहुत ही बारीक और कठिन कलाएं है। तेय्यम में चेहरे पर होने वाली चित्रकारी को 'मुखतेजुत्तु' नाम से जाना जाता है। चेहरे का श्रृंगार प्राकृतिक सामग्री जैसे चंदन, हल्दी, कुमकुम, चावल का आटा, पत्ती के अर्क आदि के द्वारा किया जाता है। मुखतेजुत्तु की सूक्ष्म बारीक चित्रकारी और रचनात्मकता के माध्यम से ही तेय्यम को विशिष्ट भावनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। के.के.एन.कुनीप अपने लेख में मुखतेजुत्तु के विभिन्न प्रकारों को बताते हुए लिखते है कि "There are different patterns of face painting. Some of these patterns are called Vairudalum, Kattaram, Kozhipuspam, Kotumpurikam, and Prakkezhuthu. Mostly primary colours and secondary colours like black and white applied with con trast for face painting. It had effected certain stylization also."[5] मुखतेजुत्तु में चेहरे पर चित्रकारी देवताओं के गुणों के अनुरूप होती है, जिससे कलाकार को देवी-देवताओं जैसे पौराणिक आकृतियों की भव्यता को व्यक्त करने में मदद मिलती है। शिरोभूषण अर्थात् मुडी ; यह वह हिस्सा है जो सिर पर पहना जाता है। तेय्यम कलाकारों के शिरोभूषण को 'मुडी' के नाम से जाना जाता है। इसे हम मुखौटा के अर्थ में समझ सकते है। मुडी तेय्यम के सबसे महत्वपूर्ण भागों में से एक है और यह एक विशेष क्षेत्र के हस्तशिल्प का प्रतिनिधित्व करता है। तेय्यम में मुडी की व्याख्या 'ईश्वरीय अंश' के रूप में की जाती है। यह अत्यंत सजावटी होने के कारण कभी-कभी भयंकर दिखाई देती है। नंदुल एस अपने ब्लॉग में मुडी के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि, "It is belived that

the god reincarnates into the thyyakaran when he wears the theyyam mudi and sees himself in the mirror."[6] तेय्यम की मुडी के विभिन्न रूप होते है। इसकी ऊँचाई लगभग आधा फिट से लेकर बीस फिट के बीच होती है। इसकी संरचना अत्यंत जटिल और विस्तृत होती है; जिसे बनाने में बहुत अधिक श्रम और समय लगता है। मुडी का निर्माण मुख्य रूप से ताड़ के पत्तों, सुपारी के पेड़ों, फूलों, रेशमी कपड़ों, धातु और अन्य प्राकृतिक सामग्री से होता है। मुडी के निर्माण का प्रमुख प्राकृतिक घटक नारियल के पत्ते होते है। विभिन्न प्रकार की बारीक चित्रकारी इन्हीं पत्तों पर की जाती है; नारियल के पत्तों पर की जाने वाली इस चित्रकारी को 'कुरूथोला चरथु' कहा जाता है। इस प्रकार यह चित्रकारी किए हुए पत्ते मुडी के दृश्य भाग का स्वरूप निर्मित करते है।

तेय्यम के मुडी निर्माण में प्रयुक्त होने वाले आभूषणों का निर्माण नारियल और सुपारी के पेड़ों की लकड़ियों से होता है। मुडी के निर्माण में पारंपरिक उपकरण जैसे- उली, वल्ममट्टी, अरनी, अलावाट्टोम आदि का उपयोग किया जाता है। तेय्यम मुडी के निर्माण की कला को रीति-रिवाजों और परंपराओं के रूप में संरक्षित किया जाता है; जिससे एक ओर कला का विकास होता है तो वहीं दूसरी ओर इसे मशीनी युग के बढ़ते आधुनिकीकरण से भी बचाया जाता है। के.के.एन.कुनीप अपने लेख में इस संबंध में लिखते है कि, "The indigenous Teyyam cult under the influence of the great classical Indian tradition incorporated new ideals and legends. How ever, its form and content did not change very much."[7] तेय्यम मुडी के विभिन्न भागों का निर्माण व्यापक स्तर पर नहीं होता है बल्कि अधिकांशतः मुडी का निर्माण सात पेरूवन्नुम (वह समुदाय जो तेय्यम की मुडी का निर्माण करता है) और चार आश्रयी (बढ़ई) मिलकर करते है। तेय्यम में इन संख्याओं का क्या अर्थ है, इसके विषय में जानकारी नहीं मिली है लेकिन कुछ स्रोतों से ज्ञात हुआ कि तेय्यम मुडी के निर्माण में कलाकार कम से कम सामग्री के उपयोग द्वारा बेहतर से बेहतर कार्य करने की कोशिश करते है।

मुडी की संरचना में ऊपरी हिस्से को 'कलशा' कहा जाता है, जो तेय्यम कलाकार के अनुसार लंबा या छोटा हो सकता है। मुडी का यह हिस्सा दिव्य भाग की तरह प्रतीत होता है। मुडी के अन्य भागों में 'कर्णपदम' (कान की संरचना) और आधार संरचना की सजावट शामिल है। इसी के साथ मुडी को लाल रेशमी कपड़े से चारों ओर से ढका जाता है, जिससे तैयार की गई आधार संरचना को सुदृढ़ किया जा सकें। मुडी को सिर पर रखने की प्रक्रिया को 'मुडियेट्टु' कहा जाता है। मुडियेट्टु के उपरांत मान्यता है कि तेय्यम चरित्र, दैवीय शरीर में प्रवेश कर जाता है और इसे परकाया प्रवेश की तरह देखा जाता है। तेय्यम मुडी को एक दिव्य इकाई माना जाता है। तेय्यम अनुष्ठान पूर्ण होने के उपरांत 'कलियाट्टम' आशीर्वाद के रूप में अपने मुडी व श्रृंगार से हल्दी लगे हुए फूल और पत्ते आम लोगों को देते है। वह एक तरह से दिव्य मुडी के हिस्सों को लोगों के बीच ही वितरित कर देते है और आम-जन इन्हें समृद्धि का प्रतीक मानकर ग्रहण करते है।

पहले के समय में मुडी का निर्माण कुछ पारंपरिक लोगों द्वारा ही किया जाता था; यह पारंपरिक लोग पूर्ण अनुष्ठानिक ढंग से मुडी को प्राकृतिक अवयवों द्वारा निर्मित करते थे। लेकिन समय के साथ बदलते इस मशीनी युग ने दिव्य अनुष्ठानिक कला रूप को प्रभावित किया है और आजकल के युवा प्राकृतिक के बनिस्बत मशीन-निर्मित अवयवों को मुडी के निर्माण में प्रयोग करने लगे है। मुडी शिल्प के प्रमुख केंद्र कन्नूर जिले के पयन्नूर, अंडलुर आदि स्थान है। शिरोभूषण या मुडी को इनकी विविधता के आधार पर कतिपय विशेष नामों से

पहचाना जाता है; उनमें ओलमुडी, इलमुडी, पालमुडी, तोप्पि चमयम, वट्टामुडी, नीलमुडी, पीलीमुडी, पुरत्तट्टु, ओमकारा मुडी आदि प्रमुख है। तेय्यम के रूप और वस्त्र सज्जा की विविधता सीधे-सीधे यहां की क्षेत्रीय मूर्ति कला से प्रभावित है।

तेय्यम के प्रदर्शन में प्रकृति और प्राकृतिक तत्वों का बहुत अधिक महत्व है। प्रदर्शन से संबंधित विभिन्न प्रकार के कार्यों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए केवल प्राकृतिक सामग्री का उपयोग ही परंपरा से चला आ रहा है। जैसे-मुडी आदि के निर्माण के समय जो टेंट बनाया जाता है, वह ताड़ के पत्तों का होता है। तेय्यम प्रदर्शन के समय सभी नर्तकों द्वारा एक साथ अनुष्ठान गीत का पाठ किया जाता है और मंदिर के नाम का उल्लेख किया जाता है। पृष्ठभूमि में लोक संगीत, वाद्ययंत्र जैसे 'चेंडा', 'टुटी', 'कुऴल' और 'वेक्नी' लय में बजाए जाते हैं। इसी संबंध में विद्वान के.के.एन.कुनीप अपने लेख में लिखते है, "Teyyam performance is a combination of playing of musical instruments, vocal recitation, dance and strange make-up and costumes. The Teyyam ritualistic observations make it one of the fascinating theatrical arts of India."[8] तेय्यम प्रदर्शन से संबंधित प्रत्येक कला में निपुणता हासिल करने में लगभग आठ से दस वर्षों की अवधि लगती है। तेय्यम नृत्य से संबंधित शिक्षण-प्रशिक्षण आज भी गुरुकुला मॉडल में दिया जाता है, इस प्रशिक्षण अवधि के दौरान प्रशिक्षु ढोल वादक और मुखतेज्जु कला का भी प्रशिक्षण प्राप्त करता है।

तेय्यम का उद्देश्य अशिक्षित जनता के बीच हिन्दू पौराणिक कथाओं और विश्वासों का प्रचार करना है। तेय्यम को लोकप्रिय अनुष्ठानिक कला रूप बनाने में उत्तरी केरल के लोगों द्वारा इसका निरंतर प्रदर्शन और संरक्षण मददगार रहा है। के.के.एन.कुनीप अपने लेख में इस संबंध में लिखते है कि, "the folk theatre like the Teyyam is mainly intended to propagate religion, Hindu mythology and belief even among the uneducated masses. There the art form is only a medium of communication and cult centre where the art form is performed is a sacred centre of social organisation. The continued patronage of the masses makes it a popular art."[9]

आज के समय में हमें जरुरत है कि हम इस पारंपरिक सांस्कृतिक दिव्य अनुष्ठानिक कला नृत्य को, उसी पारंपरिक परिचय के साथ जाने; जिसे हमारे पूर्वज हजारों वर्षों से हमारे लिए संरक्षित करते आए है। तेय्यम के विभिन्न अवयवों को निर्मित करने वाले कलाकार 'टी.वी. प्रभाकरन.' अपने एक साक्षात्कार में कहते है, "Many skill sets associated with this craft are disappearing, unfortunately. We have only very fewer people in this profession now."[10] यह परंपराएं और संस्कृतियां हमारे इतिहास की जीवित विरासत है; इन्हें समृद्ध करना ही हमारा कर्तव्य है

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. https://www.keralatourism.org/hindi/artforms/ केरल के कला रूप
2. उत्तरी केरल के पुलयर और तेय्यम- डॉ. सूर्या बोस; समन्वय दक्षिण, अप्रैल-जून 2020 ; पृष्ठ-97
3.https://spaindustrialdesign.wordpress.com/2020/12/16/theyyam-mudi-craft/
4. Theyyam: The Other Gods- Bhawani Cheerath; Stark World Publishing Private Limited, Page- 80
5. A Panorama of Indian Culture- edited by K. K. Kusuman; (Teyyam-A Vanishing Ritual

Dance of Kerala- K. K. N. Kunip); Mittal Publication,New Delhi; Page- 129
6.https://spaindustrialdesign.wordpress.com/2020/12/16/theyyam-mudi-craft/
7. A Panorama of Indian Culture- edited by K. K. Kusuman; (Teyyam-A Vanishing Ritual Dance of Kerala- K. K. N. Kunip); Mittal Publication,New Delhi; Page- 126
8. A Panorama of Indian Culture- edited by K. K. Kusuman; (Teyyam-A Vanishing Ritual Dance of Kerala- K. K. N. Kunip); Mittal Publication,New Delhi; Page- 130
9. A Panorama of Indian Culture- edited by K. K. Kusuman; (Teyyam-A Vanishing Ritual Dance of Kerala- K. K. N. Kunip); Mittal Publication,New Delhi; Page- 134
10.https://medium.com/@tyndistravelindia/crafting-the-divine-accessories-37f09e5da8b8

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं शोध (दर्शन एवं वैचारिकी के विशेष संदर्भ में)

***प्रिंस कुमार सिंह *निशा राय**

विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में भारत का नाम प्रमुखता से आता है। लगभग 5000 वर्ष पूर्व से भारतीय सभ्यता अपने गर्भ में अनेक दर्शन, व्यवस्थाओं, मान्यताओं एवं एक लंबे मानव इतिहास को संजोए हुये है। भारतीय ज्ञान परंपरा के विषय में चर्चा के पूर्व सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक होगा कि **ज्ञान क्या है?** अतः *"ज्ञान बहुत से तथ्यों, स्वयं सिद्धियों, सिद्धांतों, सम्बन्धों, मान्यताओं एवं प्रक्रियाओं का संकलन है जिनकी जानकारी से मनुष्य अपनी समस्याओं एवं जिज्ञासा को शांत करता है।"*[1] अतः ज्ञान की प्राप्ति हेतु अनेक विधियों का उल्लेख किया गया है जिनमे सत्ता, वैयक्तिक अन्यभव, निगमन विधि, आगम विधि, वैज्ञानिक विधि आदि महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक काल में वैज्ञानिक विधि को ही प्रामाणिक विधि की श्रेणी में रखा गया है, परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा में लगभग सभी माध्यम के प्रयोग एवं परिणामों को मान्यता प्रदान की गई है।

> शोध नवीन ज्ञान का सृजन एवं उपलब्ध ज्ञान का पुनःप्रमाणीकरण है। भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रवाह सतत रूप से आत्मसात एवं आत्म-सौंदर्यीकरण के भाव से ओत-प्रोत रहा है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति ज्ञान के मूल तत्व की निर्मिति, संलयन एवं अविरल प्रवाह की धोतक रही है। अतः भतीय ज्ञान परंपरा की विकास यात्रा में हम बौद्धिक एवं वैचारिक रचनात्मकता स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। विभिन्न दर्शन, मत एवं भाव एक दूसरे से भिन्न होने के बावजूद परस्पर एक दूसरे के साथ दिखाई देते हैं। वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा का यही समागम हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक तथा सभ्यतागत एकरूपता को दर्शाता है।

चूंकि वर्तमान में प्रत्येक क्षेत्र में शोध की उपियोगिता के महत्व को समझते हुये अवसरों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, अतः भारतीय ज्ञान परंपरा में भी लगातार शोध होते आए हैं जिनकी वजह से इसमें प्रामाणिकता एवं नवीनता का सतत संचार होता रहा है। शोध के विषय में **'वैब्सटर्स डिक्शनरी'** में शोध को परिभाषित करते हुये लिखा गया है कि *"शोध समीक्षात्मक तथा सर्वांगीण पर्यालोचन अथवा परीक्षण को कहते हैं, जिसका लक्ष्य नये तथ्यों की खोज, उनका सही आख्यान तथा स्थापित निष्कर्षों, सिद्धांतों और नियमों का पुनर्मूल्यांकन है।"*[2] भारतीय इतिहास का सभ्यतागत स्वरूप हमारे संज्ञान में हड़प्पा काल से देखने को मिलता है तथा जहां सभ्यता की शुरुआत होती है ज्ञान की उपस्थिती एवं ज्ञान परंपरा वहाँ चलायमान होती है। अतः प्राप्त जानकारियों के आधार पर हम हड़प्पा सभ्यता (सिंधुघाटी सभ्यता- 2350 ई.पू. से 1750 ई.पू.) की प्रचलित मान्यताओं, सिद्धांतों, सम्बन्धों एवं तथ्यों का विश्लेषण कर उस काल की ज्ञान परंपरा के संबंध में अपनी राय कायम करते हैं। चूंकि उस काल के लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं अथवा जो उपलब्ध हैं

***प्रिंस कुमार सिंह,** पी-एच.डी. शोधार्थी (गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।
संपर्क- princesingh.mgahv@gmail.com
***निशा राय,** पी-एच.डी. शोधार्थी (गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा,
संपर्क- nisharai.bhu@gmail.com

[1] अनुसंधान परिचय.(2014).पृ.सं.2.

[2] शोध-प्रविधि.(2011).पृ.सं.5.

भी वह अब तक अपाठ्य हैं, अतः धारणाएँ स्पष्ट नहीं है, परंतु उसके पश्चात **वैदिक सभ्यता** (1500 ई.पू. से 600ई.पू.) के काल से संबन्धित लिखित सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। वेदों से हमें ऋग्वैदिक काल एवं उत्तर-वैदिक काल से संबन्धित प्रचुर जानकारियाँ उपलब्ध हैं। जिसमें तात्कालिक (वैदिक कालीन) समाज, संस्कृति और मान्यताएं आदि प्रमुख हैं।

किसी भी सभ्यता में उसकी स्थिति, संस्कृति एवं आवश्यकता के अनुसार कुछ नियम बनाए जाते हैं, जो सामाजिक संचरण एवं मानवीय विकास के ध्येय से प्रेरित होते हैं। वस्तुतः हम वैदिक काल के समाज एवं उसकी मान्यताओं के आधार पर जिनमें यज्ञ परंपरा, लेखन शैली का विकास एवं भाषागत विकास तथा सामाजिक वर्गीकरण की प्रणाली का अध्ययन आदि महत्वपूर्ण है जिसकी चर्चा करेंगे। हम जानते हैं कि वैदिक कालीन समाज मुख्यतः ग्रामीण समाज था। कृषि एवं पशुपालन उनका मुख्य व्यवसाय था, समाज मुख्य रूप से **चार भागों** में विभाजित किया गया था। पहला पुरोहित वर्ग जो ज्ञान अर्जन, पठन एवं पठन का कार्य किया करता था। दूसरा शासक वर्ग जो राज्य की व्यवस्था का संचालन किया करता था एवं सुरक्षा संबंधी मामलों पर नजर रखता था। तीसरा वणिक वर्ग जो व्यापारिक गतिविधियों को सम्हालता था तथा चौथा श्रमिक वर्ग जो प्रेत्येक क्षेत्र में अपनी सेवाओं के माध्यम से उपर उल्लेखित तीनों वर्गों के कार्यों में उनका सहयोग किया करता था। ऋग्वैदिक काल अर्थात लगभग 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक यह वर्ग-विभाजन कर्म प्रधान था जिसमें कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार अपना पेशा परिवर्तित कर सकता था अतः ऋग्वेद में जीवक नामक एक व्यक्ति का उल्लेख होता है जो स्वयं व्यापारी था उसके पिता कृषक एवं पितामह वैद्य थे। इसके साथ ही जब हम उत्तर वैदिक काल का विश्लेषण करते हैं तो परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक व्यवस्थाएं एवं मान्यतएं बदलती हैं सामाजिक वर्गिकरण स्थायी हो जाता है यह रुचि अनुसार न होकर वंशानुगत हो जाता है तथा सममाजिक मान्यताओं में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। उपनिषद काल जो इन सभी मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है एवं वैदिक काल की व्यवस्थाओं में परिवर्तन करते हुये तार्किकता तथा भौतिकता को लाता है। ज्ञान परंपरा के दो अंग होते है प्रथम **भौतिक ज्ञान** एवं द्वितीय **आध्यात्मिक ज्ञान** अतः वैदिक सभ्यता का आधार ही आध्यात्मिकता पर स्थापित था तथा उपनिषदों ने आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समायोजन के उसे तार्किकता के लक्ष्य की ओर मोड़ दिया, उसके पश्चात बौद्ध एवं जैन धर्मों का प्रादुर्भाव होता है जो अपनी कुछ अलग मान्यताओं एवं परम्पराओं को पोषित केआर भारतीय सभ्यतागत विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। उपनिषद काल से भारतीय ज्ञान परंपरा में दर्शनों परंपरा का प्रादुर्भाव होता है जैसे कपिल का **सांख्य दर्शन**, चारवाक दर्शन, जैन दर्शन का **स्नेकांत वाद**, बौद्ध मत का **माधमिक दर्शन** एवं **नागार्जुन का शून्यवाद,** पतंजलि का **योग दर्शन, विज्ञानवाद,** गौतम का न्याय **दर्शन,** संकराचार्य का **अद्वैत वेदान्त दर्शन,** रामानुजाचार्य का **विशिष्टाद्वैत** तथा **वैष्णव, शैव** एवं **शक्त संप्रदाय** तथा मध्यकाल में **सूफी मत** ये सब भारतीय समाज में अपना-अपना स्थान एवं क्षेत्र को सुरक्षित रखने में सफल रहे।

प्राचीन एवं मध्यकाल की भांति ही आधुनिक इतिहास में भी अनेक व्यक्ति हुये जिन्होने सामाजिक परिपाटी एवं सांस्कृतिक विकास की अहमियत को समझते हुये भारतीय ज्ञान परंपरा को नवीनता एवं सकारात्मकता के मार्ग की ओर उन्मुख किया। जिसकी वजह से भारतीय ज्ञान परंपरा को अत्यधिक बल मिला, उनमें महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद, सहजनन्द, राजा राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, एनिबिसेंट, लोहिया एवं एम. एन. रॉय आदि महत्वपूर्ण हैं। इनमें से ही एक महत्वपूर्ण

व्यक्ति थे महात्मा गांधी जिनके विषय में **मार्टिन लूथर किंग** कहा कि- *"सम्पूर्ण इतिहास में, शायद गांधी ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने ईसा मसीह के प्रेम के नीतिशास्त्र को, मात्र व्यक्तियों के पारस्परिक आदान-प्रदान से ऊपर उठाकर, एक सशक्त सामाजिक शक्ति का रूप प्रदान किया। महात्मा गांधी ने भारतीय आंदोलन की एक नई बात यह थी कि उनहोंने आशा, प्रेम तथा अहिंसा को क्रांति का आधार बनाया।"*[1] गांधी जी ने एक सच्चे शोधकर्ता की भाँति सामाजिक जीवन पर प्रयोग किया उन्होने उन मूल्यों की खोज की जो मानवीय व्यवहार एवं सामाजिक व्यवस्था को आदर्श रूप प्रदान करने में सक्षम हैं। उनके प्रयोगों का तरीका सबसे अलग था अर्थात वह व्यावहारिक प्रयोग किया करते थे। ताकि व्यक्ति एवं समाज पर उसके प्रभाव का आंकलन आसानी से किया जा सके। *"महात्मा गांधी की विश्व को सबसे बड़ी देन यह नहीं है कि उनहोंने भारत को अंग्रेजों से आजादी दिलाई। आजादी तो उनके न होने पर भी मिलती क्योंकि यह एक ऐतेहासिक क्रम था। गांधी जी कि देन तो- आजादी दिलाने के तरीके में थी, जिसमें विरोध किसी व्यक्ति समूह का नहीं किया गया अपितु व्यवस्था या तंत्र (system) का किया गया।"*[2]

अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप ने केवल सांस्कृतिक व जातीय विविधता को ही पल्लवित नहीं किया अपितु दार्शनिक एवं सामाजिक विविधता भी इसकी प्रमुख विशेषता है। यह विविधता ज्ञान परंपरा में अनवरत तथा सतत शोध का परिणाम है। **संस्कृति के चार अध्याय** पुस्तक के प्रथम प्रकरण में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि *"अगर ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़ दें, तव भी, इस देश में एक के बाद एक ग्यारह जातियों का आगमन और समागम का प्रमाण मिलता है। जिनहोने इस देश को ही अपना देश मान लिया और जिनका एक-एक सदस्य यहाँ कि संस्कृति और समाज में भली-भांति पच-खप कर आर्य अथवा हिन्दू हो गया।"*[3] अपितु नीग्रो, औष्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, शक, आभीर, हूण, मंगोल आदि वह सभी जातियाँ हैं जिन्होने भारतीय समाज में अपने को न कि केवल सम्मिलित किया बल्कि इसके सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सम्पूर्ण ज्ञान परंपरा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। हम भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में जब ब्रिटिश इतिहासकार जे. एस. मिल कि बात करते हैं जिसने साम्राज्यवादी इतिहास के आयाम को भारतीय व्यवस्थ में दाखिल किया तथा प्राचीन भारतीय दर्शनों, मान्यताओं एवं ज्ञान परंपरा पर प्रश्न-चिन्ह खड़ा किया तब भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने पुनः भारतीय ग्रन्थों एवं लिखित सामग्रियों को संदर्भित करते हुये ऐतेहासिक पुस्तकों कि रचना की एवं प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण काल तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के इतिहास को भारतीय जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत किया।

निष्कर्ष

सारतः एक वाक्य में कहें तो 'भारतीय ज्ञान परंपरा सर्वांगीण पवित्रता एवं सार्थकता को पोषित एवं पल्लवित करती है' अतः जिन दार्शनिक मतों का ऊपर उल्लेख किया गया है जिनमें आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों दर्शन हैं सभी की मान्यताओं, हितों एवं प्रक्रियाओं में अंतर है परंतु सभी एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं जो एक राष्ट्र रूपी वृक्ष को अपने फैलाव एवं तेज से विशालता प्रदान करती हैं।

उपरोक्त वर्णित सम्पूर्ण ऐतेहासिक कालक्रम जिसमें सैन्धव कालीन सामाजिक परिकल्पना से, वैदिक कालीन समाज, संस्कृति, मान्यताएं एवं सिद्धांतों तक तथा जैन धर्म की संकल्पना से लेकर बौद्ध धर्म के विकास तक, उपनिषदों की रचना से लेकर पुराणों के

[1] गांधी दर्शन के विविध आयाम.(2015).पृ.229-230.
[2] गांधी दर्शन के विविध आयाम.(2015).231.
[3] संस्कृति के चार अध्याय.(1962).पृ.सं.4.

संकलन तक अथवा गुप्तकालीन स्वर्णिम काल से भौतिक दर्शनों के विकास तक एवं मध्यकालीन समाज से लेकर आधुनिक समय में महात्मा गांधी के सामाजिक पुनर्निर्माण तक सम्पूर्ण प्रक्रिया भारतीय ज्ञान परंपरा में एक अनवरत शोध की वृत्ती को दर्शाती है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. आहूजा,राम. (2015).सामाजिक अनुसंधान.द्वितीय संस्करण.रावत पब्लिकेशन.जयपुर,भारत.
2. वर्मा,हरिश्चंद्र. (2011).शोध-प्रविधि. द्वितीय संस्करण.हरियाणा साहित्य अकादमी,पंचकूला.भारत.
3. राय,पारसनाथ.(2014).अनुसंधान-परिचय.त्रयोदश संस्करण.लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन.आगरा,भारत.
4. प्रसाद,महादेव.(2012).महात्मा गांधी का समाज दर्शन.छठा संस्कारण.हरियाणा ग्रंथ अकादमी,पंचकूला.
5. दिनकर,रामधारी सिंह.(1962).संस्कृति के चार अध्याय.तृतीय संस्करण.उदयांचाल प्रकाशन.पटना, भारत.
6. शर्मा,चंद्रधर. (2013).भारतीय दर्शन. द्वितीय संस्करण.मोतीलाल बनारसीदास.दिल्ली,भारत.
7. श्रीवास्तव,बी.के.(2013).विचारों का इतिहास. चतुर्थ संस्करण.एस.बी.पी.डी.पब्लिशिंग हाउस,आगरा.भारत.
8. प्रो.बी.एम.शर्मा,डॉ.रामकृष्ण दत्त शर्मा,डॉ.सविता शर्मा.(2015)गांधी दर्शन के विविध आयाम.भारत.

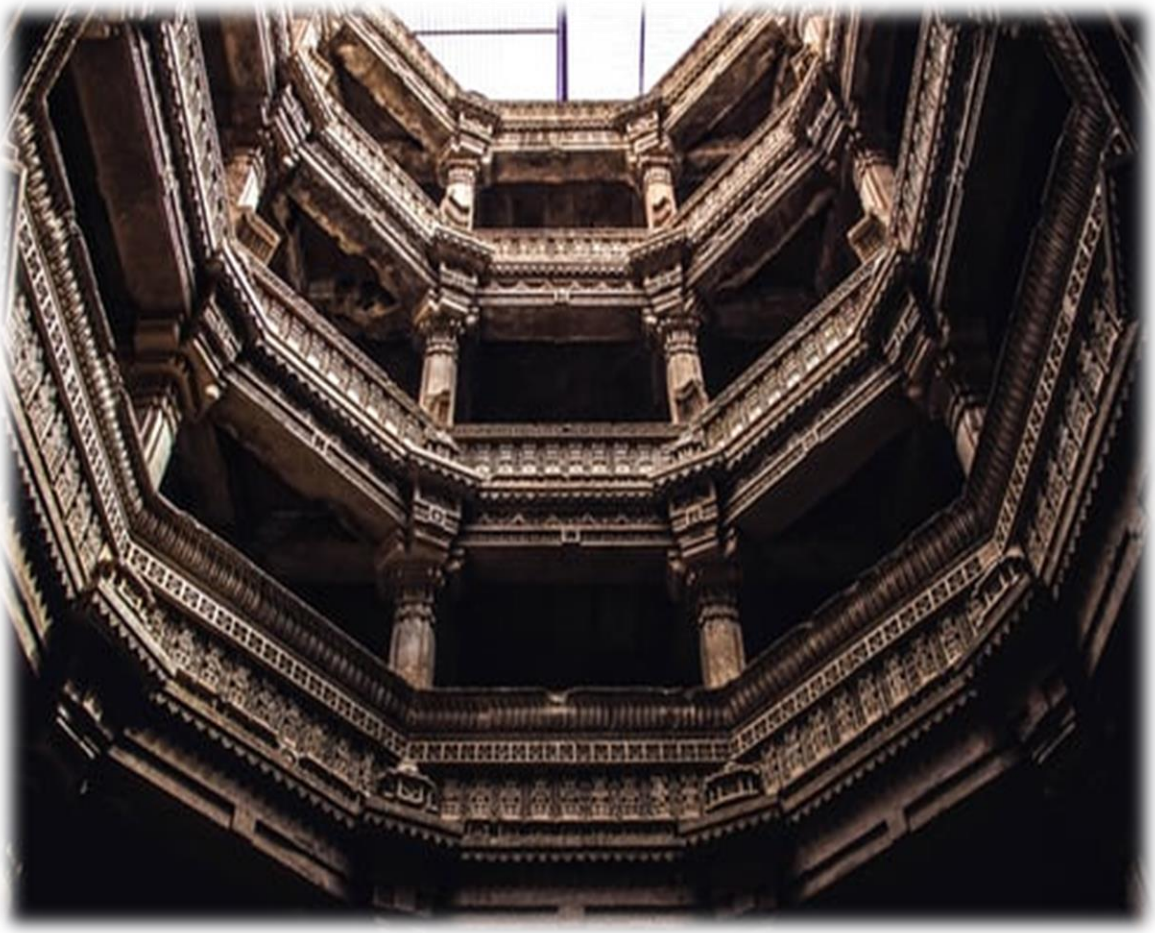

 ISSN: 2454-2725

दलित कहानियों में परंपरागत विचारधारा की स्वानुभूति

डॉ. साजिथा*

सामाजिक नियमों के बंधनों में घिरा हुआ दलित आज के सामाजिक परिवेश में सर्वत्र संशय, भय, आतंक, व्यवस्था, निराशा, घुटन आदि के कारण वह अपने आपको अकेला महसूस कर रहा है। साथ ही इन सामाजिक विवशताओं, विसंगतियों और विद्रूपताओं के बीच जीता हुआ मानवता की खोज में लगा हुआ है।

उच्चता के उन्माद में घिरे हुए सवर्ण व्यक्ति को अमानवीयता का चित्रण डंक कहानी में रत्न कुमार सांभरिया ने प्रस्तुत किया है। ''मनु की उक्ति है, शूद्र का धन संचय ब्राह्मण को पीड़ा पहुँचाता है।''[1] यह उक्ति गाँव के कुटिल ब्राह्मण सतना के दिमाग को टटोलकर जागृत करता है। वास्तव में सतना दरिद्र था। अपनी बेटी का ब्याह करने की स्थिति में भी नहीं था। ऐसे में धनवान दलित खरे। उसे पैसे की मदद करके उसकी नैया पार लगता है। परंतु इस एहसान को सतना भूत जाता है और पैसा लौटाने के बदले दलित खेरा को पिटवाकर कमर तोड़ देता है। इस बीमारी से चलते धनवान खरेरा को दरिद्रता आ जाती है। ऐसे में सतना को दिए हुए पैसे वापस माँगने हेतु वह अपनी पत्नी माँगी को भोजन देता है। तब चतुर और अन्यायी ब्राह्मण द्वारा पैसे तो वापस नहीं मिलते है बल्कि उसकी जगह मांगी को धमकी ही मिलती है। इतना ही नहीं मांगी को अभी तक जिस बात की खबर नहीं थी कि अपने पति के हालत के ज़िम्मेदार कौन था। वह भी इस वक्त पता चला। सतना ब्राह्मण की जुबान से सच्चाई खुद-व-खुद निकल आई। उन्माद भरे स्वर में बोला ''तू तो दंडी-दंडी चली जाती है न। उस दिन खेरा की कमर तोड़ दी थी। एक दिन तेरी भी कमर तोड़ दूंगा।''[2] इस प्रकार

> **"दलित कहानियों में जो दलित संबंधित विचार व्यक्त हुए है वह मनोरंजनात्मक नही बल्कि यह समाज का लेखा-जोखा है"**

गाँव के मंदिर का पुजारी धर्म के रास्ते पर चलने की

सीखे देने वाला ब्राह्मण सतना के अंदर बैठे हुए राक्षसी वृत्ति का दर्शन मांगी को होता है। मांगी घर जाकर अपने साथ किए बर्ताव और अपने पति की इस हालत का ज़िम्मेदार कोई और नहीं बल्कि जिन पर उपकार किया था वही सतना है इस सच्चाई को बताती है तो खेरा का खून खेल जाता है प्रतिहिंसा के भाव से कोने में रखी हुई तांबे गुंथी लाठी को ओर वह देखता और विवशता से दांत काट लेता है। सच्चाई जानने पर भी वह कुछ भी नहीं कर सका। क्योंकि इस वक्त उसका अपाहिज शरीर उसका साथ नहीं दे रहा था। क्रोध में आकर खेरा ने अपने आप को लहूलुहान कर लिया था। पत्नी मांगी उसे बहुत शांत करने की कोशिश करती रही परंतु खेरा का उबाल नहीं थमा। उद्वेलित होने से उसे बेहोशी का दौरा पड़ गया और वह हमेशा के लिए इस दुलिया से चला गया। दूसरे दिन जब अर्थी सतना ब्राह्मण के घर के सामने से गुजरी तब ''खेरा की अर्थी देखकर सतना के चेहरे पर एक मुस्कान रिपस कर कुंडली हो गई सापित सी।''[3] इस

*सहायक प्रोफ़ेसर, श्री रामकृष्ण कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स (स्वायत्त), नव इंडिया, कोयंबटूर, तमिलनाडु

प्रकार न्याय और दया दान करनेवाले के प्रति अन्याय का चित्रण उक्त कहानी में हुआ है।

पिछडे दलित जन जातियों पर अत्याचार और अन्याय की एक लंबी दास्ताना पाई जाती है। भारत तो आज़ाद हुआ है। परंतु परंपरावादी उच्चता का उन्माद भरनेवाले सवर्ण जनों के चंगुल से पिछड़ी दलित जन-जातियों को आज़ादी नहीं मिला है। कुछ एक अपवादों को छोड़कर आज भी कुछ एक मामले में अपना वर्चस्व की भरपूर कोशिश करते है। भारत रत्न डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के प्रयत्न स्वरूप प्रशासनिक बल मिला। साथ ही शिक्षा के कारण दलितों में काफी मात्रा में परिवर्तन आ गया है। इस परिवर्तन के साथ कुछ आधुनिक सवर्ण समाज के युवा भी जुड़ गए है और अपने आप में परिवर्तन कर दलितों के साथ, हाथ मिलाने के साथ-साथ घनिष्ठ मित्र भी बने हुए है। परंतु कुछ पुराण पंथी अभी भी अपनी घिसी-पिटी परंपरा से बाज नहीं आए है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कहानी 'ब्रह्मास्त्र' में उपर्युक्त विचारधारा की सत्यता प्रकट होती है। प्रस्तुत कहानी में अरविंद नैथानी और केवल दोनों में काफी घनिष्ठ मित्रता थी। अरविंद नैथानी (ब्राह्मण) और कंपल (दलित) दोनों एक साथ पढ़ते थे। साथ ही एक ही कॉलेज से एक साथ डिग्री भी हासिल की थी। आगे चलकर दोनों को भी अलग-अलग क्षेत्र में नौकरी भी मिली। दोनों के मित्रता का घनिष्ठता में अभी तक कोई कमी नहीं आई थी। ऐसे में अरविंद नैथानी का ब्याह तय हो जाता है। ओर वह अपने मित्र केवल के घर शादी का निमंत्रण देने खुद जाता है। मित्रता की घनिष्ठता ने केवल को भी हां कहने में विवश कर दिया। और अपने मैनेजर से कई झूठ बोलकर आखिर दो दिन की छुट्टी मंजूर कर ली थी। केवल को भी मित्र की बारात में शामिल होने की खुशी हो रही थी। एक-एक करके बाराती बस में बैठने लगे। अरविंद के कहने पर केवल भी इसमें चढ़ने के लिए पायदान पर पैर रख ही रहा था कि पंडित माधव प्रसाद भट्ट ने उसे टोका। और सवाल किया कि 'तू कहां जा रहा है।' पंडित माधव प्रसाद की बातों में काफी कड़वाहट थी। फिर भी उस बात की ओर अनदेखा करते हुए केवल ने पंडित के सवाल का जवाब दिया 'बारात में' केवल के जवाब से पंडित माधव प्रसाद भट्ट ने हैरानी जताई।

केवल और पंडित माधव प्रसाद भट्ट के बीच काफी समय तक गर्मा गरम बहस चलती है। पंडित माधव भट्ट केवल को औकात में रहने की बात बताता है। पंडित की एक-एक बात में उपेक्षा और घृणा की आग भरी हुई थी। जिसकी तपिश में केवल झुलस गया था। इस अनचाहे बातों से वह स्वयं को संभाल नहीं पार रहा था। केवल तो अपने मित्र अरविंद के बुलाने पर ही उसकी बारात में शामिल होने आया था। पर यहां पंडित माधव प्रसाद भट्ट ने उसको इस प्रकार अपमानित किया जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता। पंडित माधव प्रसाद भट्ट ने केवल को इन शब्दों में लताडा ''यह किसी डोमचमार की बारात नहीं है। यह मैथानियों की बारात है जो टिहरी के ऊँचे ब्राह्मणों में जा रही है। इसमें एक डोम के लिए कोई जगह नहीं है ... जा अपने पर वापिस।''[4] इतने से ही पंडित को समाधान नहीं मिला वह अरविंद के पापा के पास जाकर ऊंची आवाज में अपनी भंडास निकालने लगा। वह चिल्ला रहा था ''विष्णुदत्त नैथानी यह क्या कर रहे है आप? नैथानियों की बारात में डोम ... यह नहीं हो सकता ... जान बूझकर मक्खी नहीं निगली जाती है।''[5] पंडित की बातें सुनकर अरविंद के पिता विष्णुदत्त जी को भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह भी पंडित की बातें सुनकर परेशान हो गए। उन्होंने पंडित को शांत करने का कोशिश की। वह समझा रहे थे कि केवल अरविंद का खास दोस्त है।

परंतु उनकी बातों का कोई असर पंडित पर नहीं हुआ उल्टा वह अरविंद के पिताजी को कहने लगा कि ''नैथानी जी आप लोग भ्रष्ट हो गए ... मैं कह देता हूं। वह बारात में नहीं जाएगा। पंडित ने अपने दुर्वासा रूप को प्रकट कर दिया था।''[6]

अरविंद के पिता विष्णुदत्त नैथानी ने पंडित जी को बहुत समझाने की कोशिश की और स्थिति संभालने की भरपूर कोशिश करने लगे केवल की योग्यता की बात बताने लगे। केवल पढ़ा-लिखा है बैंक में अपना अच्छी पोस्ट पर है उसे देखकर कोई नहीं कहेगा कि वह दलित है उन्होंने अपना तर्क देने का प्रयास किया। परंतु इस तर्क का नतीजा उल्टा हुआ पंडित माधव प्रसाद भट्ट और भड़क गए और उन्होंने अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। उन्होंने अरविंद के पिताजी को साफ़-साफ कह दिया ''आपका दिमाग खराब हो गया है! ... मैं आपसे ज्यादा बहस नहीं करना चाहता ... आपको लगता है उस ले जाना उचित और ज़रूरी है ले जाइए। लेकिन इस स्थिति में मैं बारात में नहीं जाउंगा ... मुझे क्षमा कीजिए ... मैं यही से लौट जाता हूं। ... वह डोम पढ़ा-लिखा है उसी से शादी के संस्कार भी करा लेना।''[7] पंडित माधव प्रसाद भट्ट की बातें सुनकर बहुत दुखी हुए। पंडित की यह बातें मानो ब्रह्मास्त्र की तरह विष्णुदत्त मैथानी की छाती पर लगी और वह खाने चित हो गए।

अरविंद के पिता विष्णुदत्त नैथानी धर्म संकट में फंस गए। क्योंकि माधव प्रसाद भट्ट उनके परिवार के पुरोहित थे। उनके परिवार में होनेवाले सभी पूजा-पाठ, संस्कार वे ही करते आ रहे थे। इनके परिवार में उनका बड़ा सम्मान भी था। तो ऐसे समय उनको नाराज करना नैथानी परिवार के बस की बात नहीं थी।

वहां जो भी चल रहा था उसे देखकर केवल बहुत दुखी हो रहा था। उसके मन में उथल-पुथल शुरु हो गई थी। वह अपने-आप को भयावह स्थिति में स्वयं को फंस महसूस कर रहा था। एक ऐसी उलझन की स्थिति बन गई थी। जिसके बारे में केवल ने कभी न कभी सोच भी नहीं था।

पंडित के इस बर्ताव से केवल ने अंदाज लगाना चाहा कि कई पंडित पुरानी दुश्मनी तो नहीं निबाह रहा है? उनको इस सम वह प्रसंग याद आ गया कि एक दिन पंडित माधव प्रसाद भट्ट ने उनके पिताजी को डोम कहकर दुर्व्यवहार करने से पिताजी ने हाथ में जूता लेकर दौड़ाया था। यह घटना डाकरे (गाँव का नाम) में बहुत दिनों एक चर्चा का विषय रहा था। इस समस्या के समाधान का आखिर एक ही उपाय था वह अरविंद द्वारा केवल को यह देना। अरविंद के पिताजी के बस की बता तो यह नहीं था। जब पिता द्वारा अरविंद को यह सारी बातें पता चली तो वह भी बहुत दुखी हो गया। केवल को बारात में शामिल हुए बगैर वापस जाने को कहना यह उसके बस की बात भी नहीं थी। परंतु व्यवस्था के साथ लड़ना उस वक्त तो नामुमकिन था वह भी उलझन में पड़ गया। एक तरह खास मित्र केवल जिसको स्वतः अरविंद ने ब्याह के लिए बुलाया था। दूसरी तरफ अपनी बारात। अरविंद किसको छोड़ेगा एक तरफ पिताजी विनती कर रहे थे कि अरविंद को समझा-बुझाकर विदा करो इस वकत पंडित को नाराज करना उनके हित की बात नहीं है। आखिर अरविंद इस पाखंडी पंडित माधवप्रसाद भट्ट के हट्ट को पूरा करने अपनी बहन द्वारा केवल को बुला लिया। केवल को देखते ही अरविंद की आंखें छल-छला उठी। आवाज भी भरी गयी। कुछ बोलते नहीं बनता था। शब्द गले के भीतर ही अटक गए थे। जीने ही हम सिर ऊपर उठाकर जीने कोशिश करते है, वैसे ही यह दुबुद्धि कर नाग डसने लगता है। मरे भैंस की खाल नहीं खींचने, भैंस का शिकार नहीं खाने से अगर सत्यानाश होता तो

रायबहादुर किसनराम का सत्यनाश क्यों नहीं हुआ?[8] अपनी बातों में रायबहादुर किसनराम का जिक्र पर्राम इस लिए करता है कि इन्होंने शिक्षा पाकर अपना विकास कर लिया है। साथ ही गाँव के परंपरागत रूप में चलती आई बातों से छुटकारा पाया है।

निष्कर्ष

सवर्ण समाज ने दलितों द्वारा अपनी सेवा चाकरी को बरकरार रखने के लिए उनके मन में अनगढ़त बातें भरकर डर पैदा करके रखा है। इस बात पर अशिक्षित दलित वर्ग अपना पूरा विश्वास कर बैठा है। साथ ही विकास की अपने पेट भूख लेकर तड़पता सूखी रोटी की आकांक्षा करता है। इसी भूख और अभाव के कारण दलित समाज गंदगी ढोने और उसकी दुर्गन्ध बर्दाश्त करने को मजबूर होता रहा।

हिंदी साहित्य में बहुत-सी ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें उच्चता वे उन्माद में उच्चवर्गियों ने दलितों को लगभग समाप्त किया है। सामान्यतः हर समाज और काल में कुछ सामाजिक विषमताएँ हमेशा से नीचे ही रहने की व्यवस्था उच्च समाज करता आया है जहां भी दलितों ने ऊपर उठने की कोशिश की वहां उसे शक्ति और युक्ति दोनों के प्रयोग से दबाया गया क्योंकि सवर्णों के मन में यह हमेशा से डर बना है कि दलित ऊपर उठेगा तो अपनी सेवा-चाकरी कौन करेगा। इसी सोच को मजबूत बनाकर सवर्ण विलासी जीवन जीता आ रहा है। वही मनोभाव से सेवा-चाकरी करके चौखट के बाहर मेहनती दलित पेट में भूख लेकर तड़पता खड़ा है।

उच्चता के उन्माद में जीता सवर्ण समाज दलितों के प्रति काफी कठोरता का व्यवहार कर चुका है। व्यक्ति या समाज के विकास के लिए सहानुभूति, क्षमता और स्वतंत्रता की आवश्यकता है। परंतु कुछ एक अपवादों को छोड़कर हिंदू सवर्ण समाज ने अपनी ही सेवा करनेवाले एक बडे समुदाय के प्राणि निर्दयता से व्यवहार किया है। दलित कहानियों में जो दलित संबंधित विचार व्यक्त हुए है वह मनोरंजनात्मक नहीं बल्कि यह उस समाज का लेखा-जोखा है।

संदर्भ

1. रत्नकुमार सांभरिया-डंक-पृ.सं. 226
2. रत्नकुमार सांभरिया-डंक-पृ.सं. 226
3. रत्नकुमार सांभरिया-डंक-पृ.सं. 226
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि-ब्रह्मास्त्र, पृ.सं. 233
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि-ब्रह्मास्त्र, पृ.सं. 233
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि-ब्रह्मास्त्र, पृ.सं. 233
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि-ब्रह्मास्त्र, पृ.सं. 233
8. राज वाल्मीकि-इस समय में-(दलित वार्षिक-2006)
9. मोहनदास नैमिशराय-दर्द-पृ.सं. 213
10. जयप्रकाश कर्दम-मोहरे, पृ. सं. 802

स्त्री-अस्मिता का सैद्धान्तिक पक्ष

*डा० शर्वेश पाण्डे, *पूनम ठाकुर

अस्मिता, मनुष्यता के विकासक्रम में मानवीय भूमिका को उसकी भीतरी और बाह्य चेतना के साथ रेखांकित करने वाली मनःस्थिति है। जैसे-जैसे मनुष्य अधिक प्रगतिशील, विज्ञानसम्मत और धार्मिक सहिष्णुता के स्तर पर विकसित हुआ वैसे-वैसे अस्मिताओं ने अपने जीवनानुशासन और समालोचनात्मक दृष्टि को भी विकसित किया। अस्मिता की खोज बाह्य और आंतरिकता के विभाजन से हटकर एक समाज वैज्ञानिक विकास में अपनी कसौटी की खोज है। अस्मिताओं की प्रासंगिकता और उनकी ऐतिहासिकता का सवाल इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि कैसे मनुष्यता के इतिहास के साथ हम शोषण, उत्पीड़न, लैंगिक असमानता और सत्ता केन्द्रीयकरण का इतिहास भी पल्लवित होते देखते हैं। सदियों से होते आये लैंगिक दमन और असमतामूलक राजनीति ने स्त्री-अस्मिता के अध्ययन को नवीन सामाजिक दर्शन का एक जरूरी हिस्सा बना दिया है।

> "स्त्रियाँ अपनी निजी अभिव्यक्ति और सामाजिक उपस्थिति के लिए जिन सवालों से सैद्धांतिक रूप से और प्रक्रियात्मक रूप से दो-चार होती हैं उसे ही स्त्री-विमर्श के रूप में जाना जा सकता है"

दर्शन और चिंतन के स्तर पर जो 'अस्मिता' है वही व्यवहार और आंदोलनों के स्तर पर 'विमर्श' है। अपने अस्तित्व, स्वत्व और सामाजिक ताने-बाने में एक आवश्यक और अपरिहार्य हस्तक्षेप के रूप में स्त्री की अस्मिता की उपस्थिति ही विमर्श कहलाती है। समर्पण, ग्लानि, दैन्य और प्रारब्ध से स्त्री होने की नियति अर्थात परवश होने की विवशता और पुरुष के एकाधिकारवादी माहौल से स्त्री को मुक्त कराने का जो सैद्धांतिक और क्रियात्मक पक्ष है वही स्त्री-विमर्श का मूल स्वरूप है। जहाँ भावुकता का स्थान विवेक, विषमता का स्थान समानता, परम्परा का स्थान वैज्ञानिकता और नियति का स्थान चेतना ले लेती है वहीं से अस्मितामूलक विमर्श

की शुरूआत होती है। स्त्री-अध्ययन के संदर्भ में इसे स्त्री-अस्मिता और स्त्री-विमर्श कहते हैं।

अस्मिता का हेतु और उसका ध्येय सामाजिक ही होता है। प्रथमतः व्यक्ति सामाजिक परिस्थिति और

संबंधों में अपनी पहचान और उपस्थिति को सुनिश्चित करता है और फिर निजी स्तर पर अपने स्वत्व को सामाजिक अभिप्राय के साथ संयुक्त करने का प्रयास करता है। यह चरणबद्ध न होकर निरन्तर समानान्तर प्रक्रियाएँ हैं। जिस तरह से समाज व्यक्ति के उपयोग और उसकी उपादेयता को परिभाषित करता है उसी तरह व्यक्ति भी समाज की आकांक्षाओं और उसके दायित्व का वहन करता है। यह एक समूहगत प्रणाली है। समस्या तो तब आती है जब कोई एक पक्ष दूसरे पक्ष पर नियंत्रण करने या हावी होने की भावना से संचालित होता है। यदि व्यक्ति समाज पर बलपूर्वक हावी होता है तो वह समाज की मौलिक संरचना को ध्वस्त करता है। जैसे-जैसे विभिन्न मानवीय तौर तरीकों ने अपनी पहचान को बढ़ाया, उसे नये रीति-रिवाजों से जोड़ा और धार्मिक, वैज्ञानिक मान्यताओं के

***डा० शर्वेश पाण्डे,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी० सी० एस० के० पी० जी० कालेज, मऊ, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ० प्र०

***पूनम ठाकुर,** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डी० सी० एस० के० पी० जी० कालेज, मऊ, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ० प्र०

साथ घुला-मिला दिया वैसे-वैसे अस्मिताएं व्यवहारिक रूप से कठोर और तल्ख़ तेवर वाली होती गयी। इसमें मनुष्य की बौद्धिक क्षमता और उसका व्यक्तित्व, सामाजिक परिस्थिति और जीवन को विकृत करता है। इससे न्याय और समूहगत धारणाओं के ह्रास की प्रवृत्ति बढ़ती है जो कि अनुचित है। अस्मिता के सवाल व्यक्तिगत पहचान के साथ-साथ सामाजिक अस्तित्व और स्थापत्य के भी सवाल हैं। बिना सामाजिक भूमिका के अस्मिता के सवाल भी सम्बोधित नहीं किये जा सकते। इसलिए अस्मिता के सवाल जितने व्यक्तिगत पहचान को तलाशने के हैं उतने ही समाज के द्वारा बनायी गयी असमानता और विषम अस्तित्वहीनता के भी हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं कि अस्मिता जितनी स्वयं के प्रति प्रश्नाकुल होती है उतनी ही समाज के प्रति मुखर भी होती है। ध्यान रहना चाहिए कि स्वयं की पहचान और गौरव का अर्थ स्वयं से निःसंगता नहीं है। वस्तुतः सामाजिक अंतर्विरोधों के बीच व्यक्तिगत सत्ता का वस्तुगत सत्ता के साथ एक द्वन्द्वात्मक योग है। जैसा कि अभय कुमार दुबे कहते हैं *''यह एक ऐसा दायरा है जिसके तहत व्यक्ति और समुदाय यह बताते हैं कि वे खुद को क्या समझते हैं। अस्मिता का यह दायरा अपने आप में एक बौद्धिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक संरचना का रूप ले लेता है जिसकी रक्षा करने के लिए व्यक्ति और समुदाय किसी भी सीमा तक जा सकते हैं।'' भारत का भूमण्डलीकरण, संपादक- अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, 2007, पृष्ठ-455*

इन संदर्भों का आधार लेकर यह एक बात कही जा सकती है कि अस्मिता व्यक्तिवत्ता, निजता, अहंता के साथ अपनी केन्द्रीय शक्ति के होने का बोध कराती है। और साथ ही वह भौतिकता की अन्य अनुभूतियों और समाज चिंतन की लोक उन्मुखता से जुड़े हुए अन्य पहलुओं से भी संबंध रखती है। यह समय पर अपना परिवेश, अनुशासन और उसकी व्याख्या बदलती रहती है। यही वजह है कि कभी एक दूसरे के साथ संयुक्त होकर, कभी समानांतर रहकर और कभी प्रतिगामी बनकर व्यक्ति और समूह दोनों ही अस्मिता प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्षरत रहते हैं। अस्मिता के प्रति यही बहुआयामी तनाव इन्हें दिशाहीन होने से बचा ले जाता है। यह सही है कि आज के औद्योगिक शहरीकरण और पूँजीवादी आधुनिकता के दौर में अस्मिता के प्रश्न अधिक जटिल और विपर्यस्त हैं। इससे उनकी संघर्ष और प्राप्ति अधिक दुष्कर और सूक्ष्म हो गयी है। इस स्थिति को विश्लेषित करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं *''अब इस आइडेंटिटी नाम के तत्व ने अजब संकट खड़ा कर दिया है। अस्मिता जितनी मेरी है उतनी ही मेरे परिवेश और परम्परा की भी है। उसमें वर्ग, वर्ण, क्षेत्र, धर्म, लिंग, परम्पराएं सभी कुछ घुसे और घुले मिले हैं।'' हंस, राजेन्द्र यादव, जून 2003, पृष्ठ 9*

हम देख आये हैं कि अस्मिता संघर्ष की शुरूआत किसी भी वर्ग, जाति, परिवार, वंश, समुदाय, क्षेत्र, संगठित संस्था और यहां तक कि राष्ट्र के स्वयं को दमित, आक्रांत, वंचित और उत्पीड़ित होने के आधारभूत एहसास से शुरू हो जाती है। जिसमें अन्य सभी केन्द्रीय और प्रतिनिधि ताकतों के सामने सबसे बड़ा उद्देश्य अपनी पहचान और अधिकारों की रक्षा का होता है। ऐसे ही सत्ता के नियंत्रणवादी और शोषणवादी चरित्र के सम्मुख विवश और वंचित संस्कृतियां अपना स्वर मुखरित करने लगती हैं। इस संदर्भ में अर्चना वर्मा कहती हैं *''अस्मिता एक हद तक संबद्धता, सरोकार, लगाव और अपनत्व का प्रश्न भी है। जिसे अंग्रेजी में सेंस आफ बिलांगिंग कहा जाता है।'' अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक, जनवरी 2008, पृष्ठ 32*

हम यह जानते हैं कि चाहे साहित्य का पक्ष हो या फिर सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, वास्तविक मुद्दा हमेशा मानवीय विवेक और लोकाग्रहों के प्रगतिमूलक विकास का रहा है। जब तक किसी भी नागरिक, राजनीतिक, रचनाकार और संस्कृतिकर्मी की विचारधारा अनुभूत सांसारिकता से युक्त नहीं होगी, जब तक वह अंतरसंघर्ष से नहीं जुड़ेगी तब तक बाहरी टकराहटों और विरोधों का सामना भी नहीं कर सकेगी। किसी कारण से

अस्मिता प्राप्ति का संघर्ष बहुत बार हिंसक अभियानों और आत्महन्ता प्रवृत्तियों की ओर भी मुड़ जाता है जैसा कि अमत्र्यसेन कहते हैं *''अस्मिता को प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा हिंसा को जन्म देती है। अपनी अस्मिता पर आये खतरे के समक्ष अन्य भावनाएं जैसे सहानुभूति, सहनशीलता, सद्भावना इत्यादि क्षीण हो जाती हैं तो पहचान की भावना हत्याएं भी करवा सकती है। किसी समूह के अंग होने की पहचान और यह कि हम दूसरों से अलग हैं कई दफा दूसरे समूहों से दूरियां और उनसे भिन्न होने का भाव भी पैदा करता है।'' हिंसा और अस्मिता का संकट, अनुवादक महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ 19-20*

अभिप्राय यह है कि पहचान जब भी आपत्तिग्रस्त होती है और कुछ संगठित शक्तियों द्वारा अपने नैसर्गिक अधिकार और समान विकास के अवसरों को छिनता हुआ देखती है तो संघर्ष का आवेग प्रतिहिंसा में भी बदल जाता है। सत्तासमर्थित उपेक्षा या समुदाय विशेष द्वारा प्रायोजित निषेध और अवमानना उत्पीड़ित और परिधिगत समाज को किसी भी असंगठित आंदोलन के स्वरूप में बदल सकते हैं।

नामवर जी कहते हैं कि एक व्यक्ति या समाज बहुत सारी अस्मिताओं को लेकर पैदा होता है। उनमें से कोई एक प्रतिनिधि अस्मिता उस व्यक्ति और समाज का नेतृत्व करती है और बाकी सभी अस्मिताएं उस एक अस्मिता की लक्ष्य प्राप्ति के लिए सहयोगी का काम करती हैं। हांलांकि कभी-कभी यह भी होता है कि सभी अस्मिताएं एक साथ आपस में टकराव की स्थिति में आ जाएं जो कि व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक है। ऐसे में समुदाय को व्यक्ति और व्यक्ति को समुदाय का शत्रु मान लिया जाता है।

राजेन्द्र यादव इस विषय में लिखते हैं *''अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ-साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे संदर्भ तय करते हैं। यह संदर्भ जाति, वर्ग, रंग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर तथा पेशे इत्यादि के रूप में हमारे अंतरंग (साइकी) के हिस्से हैं।'' हंस, राजेन्द्र यादव, जून 2003, पृष्ठ 9*

तो ऐसे हम देखते हैं कि अस्मिता बोध का लक्ष्य और स्वप्न स्पष्ट है- कि अपनी चेतना और व्यक्ति निष्ठा की प्रतीति, अपने अस्तित्व के प्रति संवेदनशील ईमानदारी और अभिव्यक्ति को अपने जीवनमूल्यों तथा सामाजिक सरोकारों के अनुकूलन में बनाये रखना।

अपने स्वतंत्र अस्तित्व के वैचारिक संघर्ष और चिंतन की आलोचनात्मकता को केन्द्रीय बनाना ही जीवनदृष्टि को आधुनिकता की धारणा से जोड़ता है। यह भूमण्डलीकरण की वैश्विक संरचना के समानांतर, शक्ति और सत्ता के विरोध को भी व्यक्त करता है। साथ ही यह भावना सामाजिक विवेचन में मानवीय उपस्थिति के शक्ति संतुलन को भी बनाए रखती है अर्थात् मनुष्यता को बनाए रखना ज़रूरी है। कुछ तयशुदा आग्रहों से इतिहास को देखने के सत्ता-व्यवहार के बरक्स यह मानव प्रवृत्ति को अधिक समन्वयात्मक और सहअस्तित्व के लिए प्रेरित करती है। ऐसे में हम देखते हैं कि कैसे अस्मिताएं एक समतामूलक समाज के लिए समुदाय की चेतना और व्यक्ति की स्थानिकता को मिलाकर इतिहास और संस्कृति को देखने का नितांत अलग नज़रिया प्रस्तुत करती हैं।

अस्मिता-बोध जहाँ एक सांस्कृतिक पड़ाव है वहीं विमर्श एक राजनीतिक और सामाजिक संवाद है। जैसा कि अभय कुमार दुबे कहते हैं *''इसका निपट अर्थ है दो वक्ताओं के बीच संवाद या बहस या सार्वजनिक चर्चा।'' भारत का भूमण्डलीकरण, संपादक- अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, 2007, पृष्ठ 444*

जहाँ अस्मिता का संबंध एक सांस्कृतिक लोकाचार में व्यवहृत सांस्थानिक और स्थानीय पहचान बोध से है वहीं विमर्श की आवश्यकता उस पहचान बोध को वैचारिक अभिव्यक्ति के स्तर पर राजनैतिक और सामाजिक अनुशासनों में तार्किक परिणति तक पहुँचाना है। कह सकते हैं कि जहां अस्मिता मनुष्यता का विचार पक्ष है वहीं विमर्श उसका व्यवहार पक्ष। विमर्शों के उभार ने सत्ताओं के ध्रुवीकरण, उनके संगठित ताने-बाने, नौकरशाही, नकली किस्म की समाजशास्त्रीयता और आत्मप्रकाशित वरीयताओं को

चुनौती देते हुए उसकी मानसिकता और कार्यप्रणाली का विरोध किया। शम्भुनाथ सिंह अपने लेख 'विमर्श की ज़मीन' में इस बात की पुष्टि करते हैं- *''आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें करने वालों ने ही आदर्शों को संकट में डाला। यही वजह है कि समाज के दबे समुदायों ने विचारधाराओं की तरफ से मुँह फेरकर अतीत से चले आ रहे भेद-भाव के खिलाफ सामुदायिक आवाज का रास्ता पकड़ा और साहित्य में विमर्श की महत्ता बढ़ी।'' नया ज्ञानोदय, शम्भूनाथ सिंह, दिसम्बर 2010, पृष्ठ 126*

एक बनावटी तरह के इतिहास, सांस्कृतिक विभाजन और पद्धतियों के विरोध में नयी आत्मचेतनाओं, अपेक्षाओं और चुनाव के प्रश्न सामने आये। हाशिये पर पड़े उपेक्षित विकल्प, दमन से ग्रस्त जीवनशैलियां, समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत इकाइयाँ, लघुतर लोकसमूह, समाप्त प्राय और लगभग भुला दिये गये वर्ग की पीड़ाएं आज अपनी सामाजिक पहचान से जुड़ी जटिलताओं को सामने रखकर समाज और राजनीति की नेतृत्वकारी स्थिति में आना चाहती हैं। अनामिका अस्मिता विमर्श की धारणा को इस तरह विवेचित करती हैं *''यही तो मंशा है अस्मिता विमर्श की कि जो कभी नहीं बोले वो बोलें, अपना दुःख दर्द कहें ताकि उन अंधों की आँखें और बहरों के कान खुलें जिनके बारे में बाइबिल में बहुत पहले ही लिख दिया गया है ''Seeing they don't see, hearing they don't hear'' हंस, अनामिका, नवंबर 2009, पृष्ठ 56*

अस्मिताएँ जब भी संकट में आती हैं तो विमर्श की स्थिति भी पैदा होती है। ऐसे में हम एक रोचक सामाजिक बदलाव को देखते हैं कि कैसे वंचित और उपेक्षित वर्ग अपनी जातीय चेतना और वर्गीय मानसिकता से ऊपर उठकर मात्र मानवीय अधिकारों और मुक्ति के सवालों पर एकजुट हो जाता है। यहाँ कहने का आशय यह नहीं है कि स्वत्रंतता और अधिकारों के सवाल के बीच में उनका अपना जातीय चरित्र और पहचान शामिल नहीं है बल्कि सिर्फ इतना ही कि जीवन और चेतना से जुड़ हुए वृहत्तर सवाल हमें अपने निहित मंतव्यों और संकीर्ण दायरे से बाहर निकलने के लिए उकसाते हैं। तो इस तरह से हम देखते हैं कि कैसे अस्मिता विमर्श हाशिये और केन्द्र के सत्ताजनित विभाजनकारी मन्तव्यों का शोध करता है और समाज के सर्वांगीण मानवीय बोध को सामने लाने का प्रयास करता हैं। जैसा कि अर्चना वर्मा कहती हैं *''अस्मिता विमर्श आज के राजनैतिक सामाजिक दृश्य का सबसे अधिक मुखर और प्रमुख स्वर है।..... वंचित की हैसियत से अपनी पहचान के साथ बड़ा मोह होता है। पूरे समाज और इतिहास के अन्याय के खिलाफ खड़े होने का ख्याल ऊर्जा और प्रतिरोध की आपूर्ति का अक्षय श्रोत साबित होता है।'' अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक, जनवरी 2008, पृष्ठ 33*

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि विमर्श असंदिग्ध रूप से व्यापक, सामाजिक पुनरूत्थान और मानवीय मूल्यों के संरक्षण का एक सांस्कृतिक अनुशासन है। यह विभिन्न तरह के सामाजिक एकाधिकारवाद की सोच का विरोध करता है। जीवन तथा अवधारणाओं को देखने के पूर्वाग्रहों से मुक्त करता है। विमर्श वैचारिकी और व्यवहारिकता का नज़रिया है। इसीलिए इसमें यथार्थ न तो किसी उपयोगिता से जन्में पदार्थ की तरह मौजूद होता है और ना ही किसी प्रतिस्पर्धा के तौर पर पाया जाता है। विमर्श यथार्थ को सरल या रैखिक ना मानकर बहुस्तरीय और जटिल मानता है। इसलिए अस्मिता-विमर्श में यथार्थ का संदर्भ विभिन्न मूल्यों, प्रभावों और प्रक्रियाओं के सहअस्तित्व से मिलकर बनता है। उसके पास सामान्य लोकमन की त्रासदी, उत्पीड़न, अवसाद, विडम्बनाओं और सपनों के साथ अधिक तटस्थ और संतुलित होकर देख सकने की क्षमता होती है। इसीलिए विभिन्न सामाजिक खाँचों (क्षेत्र, वर्ण, जाति) के मौजूद रहते हुए भी उसका मूल उद्देश्य मानवीय समतामूलक वर्ग संरचना को उपस्थित करना होता है। इसमें विमर्शकार की दृष्टि युग से जुड़े हुए बौद्धिक आयामों के साथ जितना समाज के वर्तमान के प्रति सजग होती है उतना ही भविष्य के विकल्पों के प्रति भी जागरूक रहती है।

इस तरह हम देखते हैं कि विमर्श का लक्ष्य

सामूहिक जनसांस्कृतिक दृष्टिकोण के साथ अस्मिताओं के सामान्यीकरण और उनके सामाजिक परिक्षेत्र को सुनिश्चित करना है। इसलिए स्त्री-विमर्श हो, या दलित-विमर्श, या आदिवासी-विमर्श- यह समझना ज़रूरी है कि उसमें वर्गीय आदतों और अभ्यासों से प्रतिरोध की चेतना कितनी मुखर है। और साथ ही सत्ता केन्द्रित प्रणालियों और नियामक शक्तियों के उपभोग से बचकर निकल जाने की कितनी सामथ्र्य है। यह सामर्थ्य ही मानवता के विभेदहीन सामाजिक अभियान को तय करती है। इसलिए यह आवश्यक है कि समाज में सार्थक रचनात्मक बदलाव पैदा करने के लिए उसका विकासगामी जीवन के अनुभवों और संघर्षशील संवेगों के साथ प्रतिबद्ध जुड़ाव हो। विमर्श यथास्थितिवाद का विरोधी होता है और समय के अविभाजित परिवेश का बयान भी होता है। इसीलिए विमर्श की सार्थकता इसी में है कि वह अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, स्मृतिगत और अमूर्त घेरावों से अलग इतिहास और परम्परा के अनिवार्य आत्मसंघर्ष को देखने का प्रयास करे। हांलांकि अस्मिता विमर्श के खतरे भी हैं जो कई बार उसे आत्मभत्र्सना और निजी आकांक्षाओं की पूर्ति का उपकरण बना देते हैं।

स्त्री-अस्मिता-विमर्श: दृष्टिकोण

विमर्श अपनी प्रकृति, संभावनाओं और चुनौतियों में चूँकि स्वभावतः संवादधर्मी होता है इसलिए उसकी एक बड़ी जिम्मेदारी यह भी होती है कि वह सामाजिक संरचनाओं और मानवीय अस्मिताओं के बीच मध्यस्थ का भी काम करे। स्त्रियाँ अपनी निजी अभिव्यक्ति और सामाजिक उपस्थिति के लिए जिन सवालों से सैद्धांतिक रूप से और प्रक्रियात्मक रूप से दो-चार होती हैं उसे ही स्त्री-विमर्श के रूप में जाना जा सकता है। स्त्रियाँ परम्परा से चली आ रही पारिवारिक सत्ता में देह और गृहस्थी के एक विपर्यस्त भूगोल में बंधी हुई हैं। स्त्री-विमर्श का मूल स्वर यही है कि स्त्रियाँ इन बंधनों का निषेध करें और अपने व्यक्तित्व की सीमाओं को विस्तार दें और लैंगिक असमानता का प्रसार करने वाली चेतना(स्त्री-पुरुष) को चुनौती दें। भारतीय सामाजिक स्थितियों में और यहाँ तक कि वैश्विक स्तर पर भी पिछले कुछ दशकों में उभरे अस्मिता आंदोलनों ने स्त्री की दृष्टि, छवि और वैचारिक स्थिति के बारे में प्रचलित पूर्वाग्रहों और विश्वस्त मान्यताओं को बदला है।

आधुनिकताबोध और सांस्कृतिक विमर्श की मानवाधिकारवादी पद्धतियों ने स्त्री-चिंतन की वैचारिकी को अस्पष्टता और आकस्मिकता से बाहर निकाला है। जहाँ सामाजिक समीकरण में पुरुष की सत्ता प्रधान इकाई के रूप में सुरक्षित और सम्मानित मानी जाती है। वहाँ स्त्री-जीवनशैली का मूल स्वर नगण्य और अनसुना ही रहता है। उसकी चुप्पी ही उसका श्रंगार और सेवा ही संस्कार माने जाते है। यदि वह स्वयं को अभिव्यक्त कर सकती है और अपने अस्तित्व के लिए चुनौती दे सकती है तो उस समूचे सांस्कृतिक एकीकरण का प्रतिरोध कर रही होती है जिसमें परंपराओं और रीतियों के नाम पर निरंकुशता का पोषण होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जब स्त्री मुखर होती है तब वह समस्त असमानताओं के लिए परिवार, समाज और समुदाय से अपना विरोध दर्ज करा रही होती है।

इसके जरिए स्त्री के स्वत्व और वैचारिक चेतना को या तो किसी पौराणिक भावुक नियतिवाद में झोंक दिया जाता है या तो किसी भ्रमित रहस्यवादी उपभोग में ढकेल दिया जाता है। किसी भी वर्ग की सत्ता अपनी अधीनस्थ समाजिकता के साथ जैसा व्यवहार करती है उससे उस सत्ता की मनुष्यता के प्रति प्रामाणिकता और उत्तरदायित्व का पता चलता है। जैसा कि निवेदिता मेनन कहती हैं *''खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी' इस पंक्ति का क्या अर्थ निकलता है वास्तविकता में यह उस सूरत में भी जब कि एक औरत ऐसे अपरिमित शौर्य और वीरता का प्रदर्शन कर रही है उसके इस गुण को नारी सुलभ गुण नहीं माना जा रहा था यानी कुल मिलाकर बहादुरी का गुण पुरुषों की ही विशेषता कहलाती है। फिर भले ही कितनी भी औरतें बहादुरी का प्रदर्शन करती रहें और कितने ही पुरुष पीठ दिखाकर भाग खड़े होते रहें''* नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे,

निवेदिता मेनन, हिन्दी माध्यम कार्यान्यवयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 9

यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि स्त्री-स्वतंत्रता की बुनियादी प्रक्रिया स्वत्व की खोज और इतिहास की सर्वसमावेशी नियति में स्वयं को रेखांकित करती है। सत्ता की पितृसत्तात्मक तकनीक अपने ढंग से काम करती है व स्त्री के सौंदर्य को उसके ही विरूद्ध इस्तेमाल करके उसे मनुष्य से पदार्थ होने की ओर ढकेल रही है ताकि वह निजी अधिकारों और मुक्ति की पद्धति से विचलित हो जाये।

आधुनिक चेतना और वैज्ञानिक प्रगति के दौर में स्त्री-चिंतन को भी आत्मसजग और आत्मसंवेदित बनाया है। उसने अपने अनुभव और अभिव्यक्ति के अधिक विकल्प तैयार किये हैं। अपने को अधिक इतिहास सापेक्ष बनाया है और संस्कृतिजीवी भी। इसका यह आशय नहीं है कि स्त्रीवाद कोई व्यक्तिवादी दर्शन है। असल में वह सत्ता के वैयक्तिक और शक्तिलिप्सा से ग्रस्त सांस्थानिक तटस्थता का प्रतिरोध है। स्त्री-अस्मिता इसी अर्थ में विशिष्ट है कि वह अपनी मुक्ति को जितना नैतिक दायित्व मानती है उतना ही वैचारिक और राजनीतिक भी मानती है। मनीषा कुलश्रेष्ठ कहती हैं *''स्त्री-मुक्ति का सवाल अपने खुद के लिए निर्णय लेने से लेकर मनुष्य के रूप में आजादी से जुड़ा प्रश्न है। स्त्री-मुक्ति सड़े-गले स्त्री-विरोधी, पितृसत्तात्मक, ब्राह्मणवादी, सामन्ती मूल्यों के प्रति विद्रोह भी है।'' स्त्री-अस्मिता के प्रश्न, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सम्पादक-सुभाष सेतिया, सामयिक प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 102*

इस तरह हम देखते हैं कि विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ स्त्री-चिंतन अलग-अलग तरह के अनुभवगत रूपांतरण के साथ आगे बढ़ता रहा है। इस बात को रेखांकित किया जाना आवश्यक है कि एक सामाजिक अध्ययन की कसौटी पर स्त्री-चिंतन लिंग या जेन्डर को तन्त्रगत उत्पीड़न के एकमात्र आधार के रूप में नहीं देखता। वह स्त्री के सामुदायिक पर्यावरण, भौतिक संदर्भों और व्यवस्थाबद्ध अनुकूलन के जरिए स्त्री के प्रति होने वाले भेद-भाव और असमानता को चिह्नित करता है। रोहिणी अग्रवाल का मत है *''स्त्री का अस्मितामूलक मुक्तिकामी संघर्ष, नैतिक व अनैतिक हो अपनी दृष्टि से पुनर्भाषित करने का प्रयास है। जहाँ पुरुषतंत्र के पूर्वाग्रह और मानदण्ड दोनों औंधे मुँह गिर पड़ते हैं। और इसीलिए स्त्रीवादियों की दृष्टि में उनकी लड़ाई नैतिक, मानवीय और सृजनात्मक है जबकि परम्परावादियों की दृष्टि में अनैतिक और विध्वंसात्मक है। स्त्रियाँ पुरुषों के समानान्तर हक चाहती हैं। वह उनसे आगे या पीछे नहीं रहना चाहती हैं। वह तो सिर्फ मानवीय बनने का अवसर चाहती हैं'' नागपाश में स्त्री, रोहिणी अग्रवाल, संपादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृष्ठ 119*

चूँकि स्त्री-विमर्श स्त्री के अपने परिचित संसार, भोगे हुए यथार्थ और इतिहास के बहुआयामी सवालों से पैदा हुआ है इसलिए परम्परागत ढंग से पितृसत्ता के शोषणवादी खाँचों से स्त्री अपनी मुक्ति की घोषणा करती है। और स्थापित विश्लेषणों के यथास्थितिवाद का प्रतिरोध करती हैं। स्त्री-चिंतन ने स्त्री दासता के लिए मात्र पितृसत्तात्मक दोहरेपन को ही जिम्मेदार नहीं माना बल्कि स्त्री-मनोविज्ञान के सरलीकृत, समझौतावादी राजनीति को भी सहायक माना। चर्चित कवियत्री और लेखिका अनामिका कहती हैं *''दुनिया का इकलौता पूर्णतः अहिंसक आन्दोलन है स्त्रीवाद। एक मनोवैज्ञानिक लड़ाई जिसने मुकाम भी हासिल किये हैं तो बहनापे के जोर पे। और युद्ध, दंगे, निःशस्त्रीकरण, रंग-भेद की नीति और पर्यावरण सब बेहतर प्रश्नों से उन अपने भाईयों, बेटों और दोस्तों के साथ लगातार जूझ रही हैं जो उनकी तरह सर्वहारा और विस्थापित हाशिये के लोग हैं।'' स्त्री मुक्तिः सांझा चूल्हा, अनामिका, नेशनल बुक ट्रस्ट, भूमिका से, पृष्ठ 28*

हमारी सभ्यता की संरचनाओं में हिंसा के बहुवैकल्पिक और दबाव समूहों की व्यवस्था अन्तर्निहित है। वर्ण, कुल, नस्ल, रंग की विभाजनकारी व्यवस्था एक ही समय पर अलग-अलग इरादों और दिशाओं के साथ जीवित रहती हैं। सामाजिक राजनीति का प्रतिमानीकरण इनके आदर्श और गति को तय

करता है। ये कभी एक दूसरे की अंतरग्रन्थी कुंठा बनकर काम करते हैं और कभी निहित सामाजिक स्वार्थ के लिए एक दूसरे के विरोध में आ जाते हैं।

ये सभी अंतर्धाराएँ प्रताड़ना और दमन के नए प्रतीकों का निर्माण करती है। इसलिए इनकी पहचान लैंगिक विषमताओं और उनके आपसी जटिल संबंधों को समझने का सही परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। सामाजिक प्रणालियों में सभी स्त्रियाँ वर्गीय रूप से समान अन्तरसंबंधों और एकरूपात्मकता से युक्त नहीं है। सामाजिक विभाजन के आधार पर वे भी दूसरे वर्ग और जाति की स्त्रियों के साथ वैसा ही दोयम और असामान्य व्यवहार करती हैं जैसा पुरुष उन जातियों और वर्गों के साथ करता है। इसलिए सामाजिक श्रेणीक्रम में निचले स्तर पर खड़ा हुआ पुरुष उत्पीड़न और हिंसा के दंश को भोगता अपनी ही स्त्री को नियंत्रित और शोषित रखने की प्रक्रिया में उसी प्रकार शामिल हो जाता है जैसे अन्य वर्ग और जाति के लोग उस स्त्री के साथ व्यवहार करते हैं। ऐसे मौके पर सामाजिक व्यवस्था अपने सांस्कृतिक ढांचे को उपनिवेश की तरह संचालित करने लगती है। इसमें तमाम वर्ग, द्वन्द्व, मनोदशाएँ अपनी-अपनी केन्द्रीय राजनीति के साथ अपने वैचारिक निहितार्थों को भी सामने लाते हैं। सार्वजनिक तंत्र वर्चस्व और आक्रामकता के आधार पर लैंगिकताओं के पदानुक्रम तय करते हैं। ऐसे में सत्ताभिमुख लैंगिकता, सत्ताहीन लैंगिकता को हाशिए पर डाल देती है।

स्त्री-रचनाशीलता की प्रासंगिकता और उपस्थिति तब है जब इन संरचनाओं में व्याप्त पितृसत्तात्मक दोहन और उसके प्रतीतिकरण को रेखांकित करके उसके विरूद्ध एक स्वतंत्र प्रतिपक्ष तैयार कर दिया जाए। इस तरह हम देखते हैं कि स्त्री-विमर्श अन्ततः एक ऐसे समाज के स्वप्न को भौतिक बनाना चाहता है जो न्याय, स्वतंत्रता और समानता के प्रामाणिक यथार्थ पर निर्भर हो। यह बात ध्यान में ले आनी चाहिए कि स्त्री की लैंगिक समानता और मुक्ति पुरुष के लिए भी कसौटी है। वह भी तभी अपने स्वत्व और पहचान को पूर्ण कर सकेगा जब स्त्री अपने स्थानीय और निजी अनुभवों से स्वयं की भागीदारी सुनिश्चित कर पायेगी। वह शक्ति-संतुलन के साझा अनुभवों को जीवन-पद्धति और विचार-पद्धति में बदलने का प्रयास करती हैं। महाश्वेता देवी कहती हैं *''स्त्री आन्दोलन के प्रथम चरण में स्त्रियाँ स्वयं को पुरुष के रूप में प्रस्तुत करने की पक्षधर थीं जिसमें उन्होने पहनावे आदि पर विशेष ध्यान दिया। द्वितीय चरण में समाज में प्रचलित तमाम नियमों के विरोध में स्वयं को खड़ा करके वे अपने आन्दोलन की सार्थकता महसूस करती थीं। किन्तु अब स्थिति ऐसी नहीं है। अब वे समाज में अपना स्थान चाहती हैं। राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक हर क्षेत्र में अपना पहचान बनाना चाहती हैं। वस्तुतः इन्हीं अधिकारों को पूरे सम्मान के साथ पाने के लिए संघर्षरत हैं।''*

स्त्री-अस्मिताओं का चिंतन इतिहास, समूह, परम्परा और सार्वजनिक अवचेतन के स्तर पर पनपते सभी प्रश्नों को संबोधित करता है। ये एक प्रकार से सामाजिक, राजनैतिक संसाधनों और प्रतिमानों पर पुरुष-सत्ता के नियंत्रण का प्रतिकार भी है और साथ में स्त्रियों के वैचारिक और सांस्थानिक बहनापे का प्रगतिशील अभियान भी है। स्त्री-संघर्ष का इतिहास एक लम्बी उम्र जी चुका है। अपने असमंजस और विकल्पों के बीच अपने जीवन के अनुभवों का सीमांकन और पुरुषसत्ता के उपभोगवादी ज्ञान और आदर्श का क्रिटिक तैयार करता हुआ स्त्री-चिंतन का विकास सामाजिक यथार्थ के विभिन्न स्तरों पर एक होता है। राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व में हिस्सेदारी से लेकर आर्थिक संसाधनों में समान हस्तक्षेप की मांग स्त्री-आन्दोलन के इतिहास का एक मुख्य घटक रही है।

स्त्रीवाद की विभिन्न अवस्थाएँ अपनी योजना के आधार पर अलग-अलग नहीं होती बल्कि योजनाओं की भूमिकाओं, तौर-तरीकों, अभ्यासों और तर्क के आधार पर पृथक होती हैं। जो उदार स्त्रीवाद, रेडिकल स्त्रीवाद, मार्क्सवादी स्त्रीवाद इन सभी प्रतिरूपों की मुख्य पहचान लैंगिक असमानता से मुक्ति और पितृसत्तात्मक निरंकुशता का सांकेतिक और प्रत्यक्ष

विरोध है कि स्त्री पितृसत्ता का अंकुश हटाकर निकलती हैं। यह अलग बात है कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपर्युक्त सभी धाराओं की विचार-प्रक्रिया और भौतिक प्रत्याशायें अलग-अलग हैं। स्त्री सृजनात्मकता में स्त्रीमानस, स्त्रीभाषा और स्त्रीदृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस शिनाख्त से सामाजिक संक्रमण और उसके दर्शन को रेखांकित करने का अवसर मिलता है जो वर्तमान समाज के ऐसा होने के लिए उत्तरदायी है। पुरुष सत्ता और उसका प्रतिरोध जितनी बड़ी आवश्यकता और शर्त है उतनी ही बड़ी आवश्यकता समाज का वह प्रबंधन है जो अपने वर्चस्ववादी हितों को साधने के लिए पितृसत्ता और मातृसत्ता जैसे जड़ और सर्वग्रासी सांचे को तैयार करता है।

स्त्रीवाद से जुड़े विभिन्न देशकालों में लिखे गये साहित्य का अध्ययन करने पर हमें सामाजिक विभाजन और वर्गीय विकेन्द्रीकरण का परस्पर मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। जिसमें विषय, विचार, चेतना, पदार्थ, प्रतिक्रियाओं और व्यक्तियों का ऐसा समीकरण है कि ऐतिहासिक विरोधाभास बहुत सहज और सामान्य दिखने लगते हैं। स्त्री-चिंतन के साहित्य का एक बड़ा हिस्सा स्त्री आत्मकथाओं का भी है जिनमें वही विषय भी हैं और वही अध्ययन भी हैं। विभिन्न किस्म की आकस्मिक और तात्कालिक सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच किस तरह से उनका आत्म एक अमूर्त यथार्थबोध और सुविधापरस्त इतिहास से संघर्षरत होता है और अपने लिए मार्ग तैयार करता है।

विकास उन्मुख समाज के लिए समता और स्वतंत्रता का बोध अत्यन्त गतिशील और चेतनावान होना चाहिए। मुक्ति और न्याय की कोई भी अवधारणा कुण्ठित और आभासी नहीं रह सकती। अवधारणाओं का सम्बन्ध लोकाचार, ज्ञान की विभिन्न संस्कृतियों और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवनशैलियों को प्रभावित करने वाला होता है। इसीलिए इनकी सार्वजनिक निर्मिति संवादी और विकेन्द्रित होती है। स्त्री-पुरुष की जीवन-स्थितियाँ भी इन व्यवहारों, अनुभवों और सिद्धांतों के साथ लगातार बदलती और रूपान्तरित होती रहती है। इनके अन्तरसम्बन्धों को भी बार-बार पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता होती है। स्त्री-अस्मिताएँ बदलावों और मानवीय सामूहिकता के आधार पर व्यक्तिवाची और वस्तुनिष्ठ मनःस्थितियों के विकास के द्वारा स्त्री अस्तित्व को समूहगत प्रतीक में बदल देती है। इस अर्थ में स्त्रीवाद को जीवन और विचार के सामाजिक पाठ की तरह भी पढा जा सकता है। प्रकारांतर से आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ स्त्री ने अपने अवचेतन और अचेतन के उन दबावों और दमन की उन सच्चाईयों को भी अभिव्यक्त किया है जिन पर एक समय सोचने पर भी पहरा था। इसलिए सभ्यतामूलक न्याय, वर्गीय समानता एवं लैंगिक एकाधिकारवाद के विरूद्ध संघर्ष की ज्ञान मीमांसा को यथार्थ तथा सत्य के साथ रेखांकित कर पाना इस साहित्य को पढ़ने की पहली माँग है।

स्थापित कार्य-कारण और अनुमानित ज्ञान के आधार पर तैयार वर्चस्ववादी मानकों को ध्वस्त करके स्त्री-चिंतन भागीदारी और हस्तक्षेप की मुद्रा तैयार करता है। इससे उन प्रचलित मान्यताओं का असली चेहरा और संकीर्ण राजनीति सामने आती है। साथ ही यह क्रिया स्त्री के लिए उसके संघर्ष की अभिव्यक्ति और अपनी विलुप्त आत्मा को पाने का प्रयत्न भी है। स्त्री-रचनाशीलता का वास्तविक चरित्र उनके सृजन में मौजूद सामाजिक शक्तियों की सत्ता संरचना और उनके बीच अपनी निजता और अधिकार को भी प्रत्यक्ष करते रहना है। इसका सामना हर स्त्री अपने जीवन में बार-बार करती है। सामाजिक विभेद, अधीनता की परम्परा वस्तुस्थितियों और मनोदशाओं को सत्य और न्याय के गहरे उद्देश्यों से अपदस्थ कर देती हैं। इससे विडम्बनाएँ भी जीवन की सहजता की तरह दिखने लगती हैं और उनसे मुक्ति का प्रयास भी दुस्साहस बन जाता है।

परम्परा और संस्कार से प्राप्त स्त्रीत्व के अनेक दृश्य, व्यवहार, स्वप्न और स्मृतियाँ इसी अनुकूलन की निर्मितियाँ हैं। जातिगत, क्षेत्रगत और साम्प्रदायिक असमानताओं को तैयार करने का भी यही मार्ग रहा है। सामाजिक अवधारणाएँ राजनीतिक मनोजगत को

स्वभावगत व्यवस्थाओं के साथ व्याख्यायित करने का एक उपक्रम है। किसी भी विमर्श की सार्थकता इतिहास को तात्कालिकता की दृष्टि से देखने की विरोधी होती है साथ ही समाज द्वारा किये जा रहे किसी वर्ग विशेष के कृत्रिम और सरलीकृत अनुकूलन को चुनौती देने की क्षमता पर आधारित होती है। स्त्री-रचनाशीलता इस अर्थ में विलक्षण है कि वह सामाजिक असमानता और विषमता को लैंगिक विरूपता और विभेद की सैद्धांतिक और व्यवहारजनित प्रस्तावना से जोड़ती है। उस लैंगिक निरंकुशता को किसी स्वायत्त अथवा तात्कालिक द्वन्द्व के रूप में प्रस्तुत नहीं करती है बल्कि एकरूपताओं के सर्वसमावेशी परिवेश में उनकी अन्तरदशाओं को सामने लाती है। इसलिए स्त्री-चिंतन का हस्तक्षेप दुविधा से बना हुआ होकर भी प्रतिरोध के प्रामाणिक अनुभवों और यथार्थ को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का माध्यम बनता है।

भारतीय सर्जना में भले ही एक आलोचनात्मक अनुशासन के रूप में उसकी स्वीकार्यता बहुत बाद में बनी किन्तु लिंग आधारित समाजशास्त्र और विषमता का वैचारिक और सांस्थानिक स्तर पर पहचान का बोध स्त्री-लेखन के साथ प्रारम्भ से जुड़ा हुआ है। इसलिए भारतीय स्त्रीवादी मीमांसा को पश्चिम से आये नये किस्म की सैद्धांतिकी की प्रतिलिपि मानना गलत होगा बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि भारतीय स्त्री-चिंतन अपनी प्रकृति और इतिहास में पश्चिमी अवधारणा और स्त्री-मुक्ति के राजनैतिक सामाजिक दर्शन को आगे ले जाता है। इस बात को स्वीकार करना सही होगा कि भारतीय मानस में पाठ का संदर्भ अस्मिता केन्द्रित कम और परिकल्पना केन्द्रित अधिक होता है। सरल शब्दों में कहें तो यह स्त्री-चिंतन विचार की स्थानीय प्रवृत्तियों को उसके संस्कार और चेतना के अन्तराल को रेखांकित करके तैयार होता है। इसमें सत्ता संरचना की भूमिका बहुत धुँधली और अपारदर्शी होती है। भारतीय परिस्थितियों में स्त्री-विमर्श घटनाओं और जीवनवृत्त के माध्यम से शोषण की नियामक सत्ता तक पहुँचने का प्रयास है। जो बहुस्तरीय, जटिल और विवादित होती है।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय स्त्री अध्ययन व्यक्ति-सापेक्ष कम है और समाज-सापेक्ष अधिक है। ऐसे में स्त्री-चेतना का अनुभवतंत्र और उसकी वर्गीय अस्मिता को उसके पारिवारिक कुटुम्बगत कार्य क्षेत्र में व्याख्यायित करते हैं। इसलिए परिवार और पारिवारिक सम्बन्ध, स्त्रीवादी दर्शन और ज्ञान का बीज तंत्र बनते हैं। स्त्री का परिवार और उसका सामाजिक जीवन, उसके स्वत्व और सामूहिक चेतना पथ पर प्रभावशाली रहने वाला एक सुरक्षात्मक और संगठित समीकरण है। यह द्वन्द्व विचारधारात्मक स्तर पर सजातीय रूप से जितना केन्द्रित है उतना ही सत्ता और शक्ति द्वारा अनुकूलित किये जाने के स्तर पर अवसादी भी है और रक्त-संबंधों तथा अन्यान्य पारिवारिक सम्बन्धों में प्रतिहिंसात्मक भी है। भारतीय स्त्री-लेखन में परिवार और समाज की समानान्तर व्यवस्था के बीच, प्रतिरोध और प्रतिकार की संवेदनशील और पारस्परिक रूप से निर्भर इस द्वन्द्वात्मकता को थेरीगाथाओं के समय से कभी मंद और कभी उच्च स्वर से इतिहास के प्रवाह में देखा जा सकता है। परिवार और पितृसत्ता वैयक्तिक उत्पीड़न के संवाहक भी हैं और सामाजिक अस्मिता तथा सम्मान के मानक भी हैं। दरअसल स्त्री को जिसके विरूद्ध खड़ा होना है वही उसका नियंता भी है। इसकी वजह से उसका लेखन भी बहुधा नाटकीय आस्वादों और व्यक्तित्व की नैतिक वांछनाओं का भी शिकार होता रहता है। इसीलिए स्त्री-लेखन का स्वर द्वन्द्व और असमंजस से भरा है। परिवारजनित हिंसा, दमन की सांस्कृतिक प्रक्रिया और इनसे उत्पन्न विरोधाभासों को स्त्री-लेखन में सुना जा सकता है। स्त्री-संघर्ष की सामाजिक, राजनैतिक विचारधारा का व्यवस्थित नरेटिव बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सामने आया। उसकी अभिक्रिया, प्रतीति और चिंतन तभी से स्त्री अभिव्यक्ति का केन्द्र बिन्दु रही है। जब से मनुष्य ने अपने आस्वाद, विकास, उपभोग को, सामाजिक और आर्थिक जीवनशैली को संगठित करने के दृष्टिकोण से प्रबंधित किया। केट मिलेट कहती हैं *''महिला की पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता और उसका मुक्त व्यवहार पितृसत्ता के लिए बड़ी चुनौती है। इसका महŸवपूर्ण परिणाम यह*

होगा कि वर्तमान में प्रचलित सम्पत्ति में स्वामित्व और अवयस्कों का अधिकारहनन बन्द हो जाएगा। बच्चों की देखभाल का सामूहिक उत्तरदायित्व रूढ़िवादी परिवार संरचना में स्त्री की स्वतंत्र भूमिका को स्थापित करेगा। विवाह यदि पारस्परिक रूप से अपेक्षित हो तो दोनों पक्षों का स्वतंत्र चुनाव होना चाहिए। यौन-क्रान्ति की घटना आज असम्भव सी प्रतीत होती है। यह अनियंत्रित जनसंख्या की समस्या को भी नियंत्रित कर देगी क्योंकि स्त्री-स्वातंत्र्य इसके केन्द्र में होगा।'' सेक्सुअल पालिटिक्स, केट मिलेट, गूंगे इतिहासों की सरहदों पर, अनुवादक-सुबोध शुक्ल, आधार प्रकाशन, 2017 पृष्ठ 72

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. भारत का भूमण्डलीकरण, संपादक- अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, 2007
2. हंस, राजेन्द्र यादव, जून 2003
3. अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक, जनवरी 2008
4. हिंसा और अस्मिता का संकट, अनुवादक महेन्द्र कुलश्रेष्ठ
5. नया ज्ञानोदय, शम्भूनाथ सिंह, दिसम्बर 2010
6. हंस, अनामिका, नवंबर 2009
7. नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, निवेदिता मेनन, हिन्दी माध्यम कार्यान्यवयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
8. स्त्री-अस्मिता के प्रश्न, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सम्पादक-सुभाष सेतिया, सामयिक प्रकाशन, 2009
9. नागपाश में स्त्री, रोहिणी अग्रवाल, संपादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, 2019
10. स्त्री मुक्तिः सांझा चूल्हा, अनामिका, नेशनल बुक ट्रस्ट, भूमिका से
11. गूंगे इतिहासों की सरहदों पर, अनुवादक-सुबोध शुक्ल, आधार प्रकाशन, 2017

 ISSN: 2454-2725

ग्रामीण भारत की महिलाओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव

***कल्याणी प्रधान**

भूमंडलीकरण का शाब्दिक अर्थ विश्व स्तर पर या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसका उपयोग एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरी दुनिया के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं और एक साथ काम करते हैं। प्रचुर मात्रा में सैद्धांतिक अध्ययनों से पता चला है कि भूमंडलीकरण आबादी के सांस्कृतिक जीवन में हस्तक्षेप करता है जो कई महत्वपूर्ण मुद्दों को जन्म देता है (रॉबर्टसन, 1992)। व्यापक अर्थ में, "भूमंडलीकरण" शब्द का अर्थ है सूचना, विचारों, प्रौद्योगिकियों, वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, वित्त और लोगों के क्रॉस-कंट्री प्रवाह के माध्यम से अर्थव्यवस्थाओं और समाजों का संयोजन। भूमंडलीकरण का वर्णन सिद्धांतकारों ने उस प्रक्रिया के रूप में किया है जिसके माध्यम से समाज और अर्थव्यवस्था विचारों, संचार, प्रौद्योगिकी, पूंजी, लोगों, वित्त, माल, सेवाओं और सूचनाओं के सीमा पार प्रवाह के माध्यम से एकीकृत होते हैं।

> भारत में ग्रामीण महिलाओं पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का मूल्यांकन करने और वर्तमान स्थिति पर इसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को जानने की आवश्यकता है। इस शोधपत्र का मूल उद्देश्य भूमंडलीकरण के कारण भारतीय समाज के ग्रामीण महिलाओं की बदलती भूमिका की जांच करना है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भूमंडलीकरण के युग में महिलाओं की उन्नति और विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। व्यापक स्तर पर रोजगार सृजन के माध्यम से महिलाओं को राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक प्रगति में भागीदार बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रक्रिया के तहत महिला हितैषी रोजगार भी सृजित किया जा रहा है, ताकि योग्य और सक्षम महिलाएं राष्ट्र के आर्थिक विकास में उचित और सक्रिय भागीदारी ले सकें। आर्थिक व्यवस्था में पाश्चात्य मूल्यों की स्वीकृति के कारण अब स्त्री-पुरुष में कार्य के क्षेत्र में कोई अंतर नहीं रह गया है। उनकी सुरक्षा की उचित गारंटी भी दी जाती है। आज की महिलाएं अधिक स्वतंत्र और

अधिक आत्मनिर्भर महसूस कर रही हैं और विकास की प्रक्रिया में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। इससे उनकी सामाजिक स्थिति भी मजबूत हुई है और उन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी देखा जा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है।

भूमंडलीकरण का प्रभाव

भूमंडलीकरण महिलाओं के विभिन्न समूहों को अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग तरीकों से प्रभावित

*पीएचडी रिसर्च स्कॉलर, भाषाविज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश मो- 9879734413, ईमेल- kalyanipradhan94@gmail.com

करता है। एक ओर यह महिलाओं के लिए आर्थिक और सामाजिक प्रगति में अग्रणी बनने के नए अवसर पैदा कर सकता है। वैश्विक संचार नेटवर्क और क्रॉस-सांस्कृतिक आदान-प्रदान के आगमन के साथ महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया है, हालांकि बहुत बड़ी सीमा तक नहीं। हालांकि, भूमंडलीकरण ने वास्तव में महिलाओं के लिए समानता के विचारों और मानदंडों को बढ़ावा दिया है जो जागरूकता लाए हैं और समान अधिकारों और अवसरों के लिए उनके संघर्ष में उत्प्रेरक के रूप में काम किया है। दूसरी ओर यह पितृसत्तात्मक समाज में विशेष रूप से विकासशील देशों में लैंगिक असमानता को बढ़ा सकता है। आर्थिक क्षेत्र में यह अनौपचारिक श्रम क्षेत्र में महिलाओं को और अधिक हाशिए पर ले जा सकता है या आय के पारंपरिक स्रोतों के नुकसान के माध्यम से दरिद्रता का कारण बन सकता है।

कार्यस्थल में महिलाओं की बदलती भूमिका

भूमंडलीकरण ने महिलाओं को गृहिणी, खेती, पशुधन, पशुपालन, हस्तशिल्प, हथकरघा आदि की पारंपरिक भूमिका से वंचित कर दिया है और इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत बेहतर वातावरण बना है। महिलाओं के पास अधिक नौकरियां हैं, जो आमतौर पर पुरुषों के लिए आरक्षित तरीके से अधिक सक्रिय हो जाती हैं, जिन्होंने समाज में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और केवल घर तक ही सीमित नहीं हैं। इसने भारत में अधिकांश महिलाओं के लिए उपलब्ध काम की मात्रा और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित किया है।

समाज में महिलाएं की बदलती भूमिका

भूमंडलीकरण ने भारत में पितृसत्ता की संस्था को एक बड़ी चुनौती दी है। जैसे-जैसे महिलाएं काम करती हैं और सामाजिक गतिशीलता हासिल करती हैं, उन्होंने भी अपने अधिकारों के लिए खड़े होना शुरू कर दिया है। जैसे-जैसे एकल परिवार अधिक आम हो गए हैं, महिलाओं के लिए अपने अधिकारों का दावा करना और प्राचीन तटों पर फंसे वातावरण में समानता के लिए पूछना आसान हो गया है। एक ही जाति के भीतर विवाह कम महत्वपूर्ण हो गया है, और कई मामलों में महिलाओं ने शादी करने का अधिकार सुरक्षित रखा है, जो भी जाति की परवाह किए बिना चुनाव करता है। जैसे-जैसे देश करीब आते हैं, और वैश्वीकृत दुनिया में सीमाएं गायब हो जाती हैं, भारत में महिलाएं अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए दुनिया भर की महिलाओं से प्रेरित होती हैं। बेशक, उपरोक्त सामान्यीकरण के कुछ उल्लेखनीय अपवाद हैं। लेकिन, बहुत हद तक, इन परिवर्तनों को भूमंडलीकरण के नए युग से एक बड़ा धक्का मिला है।

भूमंडलीकरण का सकारात्मक प्रभाव

भूमंडलीकरण का मतलब अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग चीजें हैं। अर्थशास्त्री इसे पूरी तरह से एकीकृत विश्व बाजार की ओर एक कदम मानते हैं। कुछ राजनीतिक वैज्ञानिक इसे राज्य की पारंपरिक रूप से परिभाषित अवधारणा से दूर एक मार्च के रूप में देखते हैं। विश्व व्यवस्था में गैर-सरकारी शक्ति खिलाड़ियों के उदय के साथ राज्य की संप्रभुता को चुनौती दी गई है। भूमंडलीकरण एक घटना नहीं है, बल्कि एक प्रक्रिया है जो आर्थिक क्षेत्रों के उदारीकरण और निजीकरण से उत्पन्न हुई है। इसका उद्देश्य एक सीमाहीन दुनिया की स्थापना करना है।

पारंपरिक महिला केंद्रित विश्वासों ने भूमंडलीकरण द्वारा पारंपरिक प्रथाओं जैसे सती, बाल विवाह, कन्या भ्रूण

हत्या आदि को मिटा दिया है। बदलती मानसिकता में आधुनिकीकरण सफलतापूर्वक किया गया है। महिलाओं की स्थिति, जो पतन के दौर से गुजर रही थी, भूमंडलीकरण की बदौलत बहाल हो गई है। दुनिया भर में नई व्यवस्थाओं के विकास ने भूमंडलीकरण के कारण मुख्य रूप से हर जगह नए विश्वास का प्रसार किया है। उन महिलाओं के लिए उच्च और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की संभावनाएं संभव हो गई हैं जो उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से वहन कर सकती हैं।

भूमंडलीकरण ने रोजगार के नए अवसर पैदा किए। यह महिलाओं के लिए विशेष रूप से फायदेमंद था, जिसे समान नहीं माना जाता था। रोजगार के अवसरों ने परिवारों की आय के स्तर को बढ़ाने में भी मदद की है। तकनीकी और अन्य उन्नत क्षेत्रों में रोजगार, जिसका वैश्विक प्रभाव है, उपयुक्त योग्य महिलाओं के लिए खुला है। महिलाओं के प्रति बदलते रवैये के साथ, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, महिलाएं यौन संबंधों के अधिक समतावादी सेट का आनंद लेती हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शन के माध्यम से महिला आंदोलनों की विविधता महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में बड़े बदलाव लाने में मदद करेगी। लैंगिक असमानताओं में कमी का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ में महिला सशक्तिकरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

अच्छी शिक्षा, परिवार नियोजन और स्वास्थ्य देखभाल, बच्चों की देखभाल, नौकरी के अच्छे अवसर आदि के लाभों के कारण परिवार में महिलाओं की भूमिका के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव निश्चित रूप से अधिक आत्मविश्वास और स्वस्थ महिलाओं के विकास में मदद करेगा। आर्थिक और सांस्कृतिक प्रवास के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण महिलाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेहतर संभावनाओं के प्रति जागरूक करेगा। महिलाओं के पास अधिक नौकरियां हैं, आम तौर पर पुरुषों के लिए आरक्षित रास्ते में अधिक सक्रिय हो गई हैं, समाज में एक अधिक प्रमुख भूमिका निभाई है और न केवल घर तक ही सीमित है। इसने भारत में अधिकांश महिलाओं के लिए उपलब्ध काम की मात्रा और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित किया है।

भूमंडलीकरण ने भारत में पितृसत्ता की संस्था के लिए एक बड़ी चुनौती पेश की है। जैसे-जैसे महिलाएं नौकरी करती हैं और सामाजिक गतिशीलता हासिल करती हैं, उन्होंने भी अपने अधिकारों के लिए खड़े होना शुरू कर दिया है। उच्च और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की संभावनाएं उन महिलाओं के लिए व्यवहार्य हो गई हैं जो आर्थिक और सामाजिक रूप से उन्हें वहन कर सकती हैं। महिलाओं के प्रति बदलते रवैये के साथ, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, महिलाएं लैंगिक संबंधों के अधिक समतावादी सेट का आनंद लेती हैं। अच्छी शिक्षा, परिवार नियोजन और स्वास्थ्य देखभाल के लाभ, बच्चों की देखभाल, नौकरी के अच्छे अवसर आदि के कारण परिवार में महिलाओं की भूमिका के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तन निश्चित रूप से अधिक आत्मविश्वास और स्वस्थ महिलाओं के विकास में मदद करेगा।

भूमंडलीकरण का नकारात्मक प्रभाव

महिला विकास और महिला सशक्तिकरण के भूमंडलीकरण के प्रयासों के बावजूद, भारत में इसका प्रभाव भी कई क्षेत्रों में नकारात्मक रहा है। सबसे पहले, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के तहत महिलाओं को आइटम बनाया गया है, वे प्रदर्शनी का उद्देश्य बन रही हैं। बड़ी-बड़ी कंपनियाँ महिलाओं की योग्यता, योग्यता और व्यक्तित्व का पूरा उपयोग अपने व्यावसायिक हितों को पूरा करने और अपनी सेवाएँ और सामान बेचने के लिए करती हैं।

महिला कामगार भारत में कुल कार्यबल का 31 प्रतिशत हैं, जिनमें से 95-96% असंगठित क्षेत्रों में काम करती हैं। इन क्षेत्रों में न तो अच्छा वेतन है और न ही काम के निश्चित घंटे। न नौकरी की सुरक्षा है और न ही सामाजिक सुरक्षा। इन क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं के शोषण की संभावनाएं बहुत अधिक हैं। असंगठित क्षेत्रों में काम की अनिश्चितता है, प्रतिस्पर्धा के इस युग में, महिलाएं अक्सर नौकरी बचाने के लिए अपनी क्षमता से अधिक समय तक काम करती हैं। श्रम कानूनों की अवहेलना करके न केवल असंगठित बल्कि आईटी जैसे अच्छे क्षेत्रों में भी 12-12 घंटे काम लेना सामान्य माना जाता है। प्रतिस्पर्धा, मानसिक और शारीरिक थकान, लंबे समय तक काम करने से होने वाला तनाव न केवल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, यह सामाजिक संबंधों के लिए भी खतरनाक है और कई मनोविज्ञान को जन्म देता है।

तकनीकी विकास के कारण कई क्षेत्रों में बेहतर उत्पादन के लिए मशीनों का उपयोग बढ़ा है। इससे रोजगार पर नकारात्मक असर पड़ा है। हथकरघा या खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं को रोजगार संकट का सामना करना पड़ रहा है। बेरोजगारी, ठेके या अस्थायी काम का असर पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर ज्यादा पड़ता है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न हर क्षेत्र की महिलाओं के साथ होता है, चाहे वे संगठित हों या असंगठित, खासकर रात की पाली में काम करने वाली महिलाओं के साथ। भूमंडलीकरण के कारण, बीपीओ, कॉल सेंटर नई नौकरियों के रूप में उभरे हैं लेकिन उनमें काम करने वाली महिलाओं की सुरक्षा पर अक्सर सवाल उठाए जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रस्ताव रखे हैं। उदाहरण के लिए, समान कार्य, महिलाओं और पुरुषों के लिए समान वेतन का प्रावधान किया जाना चाहिए। महिलाओं को संसाधनों, रोजगार, बाजार और व्यापार, सूचना और प्रौद्योगिकी में समान हिस्सेदारी मिलनी चाहिए। कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न और अन्य प्रकार के भेदभाव को समाप्त किया जाना चाहिए। गरीब महिलाओं को आर्थिक अवसर प्रदान करना चाहिए - कम लागत के घर, भूमि, प्राकृतिक संसाधन उधार और अन्य सेवाएं। पर्यावरण नीतियों के निर्माण में महिलाओं को शामिल किया जाना चाहिए। महिलाओं के विकास की जिम्मेदारी उच्च स्तर पर सरकार को सौंपी जानी चाहिए।

निष्कर्ष

भारत में भूमंडलीकरण में महिलाओं की भूमिका इन दिनों बदल रही है। २१वीं सदी में गैर सरकारी संगठनों के उदय के साथ, दुनिया भर में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए विभिन्न संगठनों की स्थापना और निर्माण किया गया है। निस्संदेह, भूमंडलीकरण महिलाओं को महान अवसर प्रदान करता है लेकिन समान रूप से नई और अनूठी चुनौतियां। लैंगिक असमानता कई स्रोतों से उत्पन्न होती है, और यह निर्धारित करना अक्सर मुश्किल होता है कि भूमंडलीकरण के प्रभाव से असमानता के कौन से रूप समाप्त हो रहे हैं और कौन से बढ़ रहे हैं। एक एकीकृत दुनिया में लैंगिक असमानता की लागत अधिक है। समाज में बराबरी का दर्जा पाने के लिए महिलाओं को कितनी मेहनत करनी पड़ती है। इसलिए भूमंडलीकरण महिलाओं के लिए अच्छे से ज्यादा बुरा साबित होता है। कई मामलों में महिलाएं परिवार के लिए रोटी कमाने वाली होती हैं लेकिन समाज इस सच्चाई को स्वीकार नहीं करना चाहता। भारत की संस्कृति ऐसी है कि ज्यादातर लोगों ने सोचा कि अगर कोई महिला कामकाजी महिला बनना चाहती है, तो इससे उनके परिवार और बच्चों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। लेकिन

ऐसा सच नहीं है. एक महिला कैरियर परिवार और बच्चों की उपेक्षा की कीमत पर नहीं होगा। अंत में, सच्चाई यह है कि भूमंडलीकरण महिलाओं और पुरुषों के बीच प्रतिस्पर्धा को बढ़ा रहा है।

कॉरपोरेट जगत में महिलाओं ने काफी तरक्की की है लेकिन फिर भी भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति ऐसे करियर बनाने से रोकती है जो पारिवारिक जीवन पर बहुत अधिक उल्लंघन करते हैं। महिलाएं अब दोहरी आय वाले अपने परिवारों का समर्थन कर रही हैं, जिससे न केवल घर पर बल्कि संसद में भी 50% आरक्षण के लिए आवाज उठ रही है क्योंकि वे बड़े पैमाने पर भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान दे रही हैं। उन्हें दोहरी भूमिकाएँ निभानी होती हैं, घर पर अवैतनिक सेवक के रूप में और एक संगठन में वेतनभोगी सेवक के रूप में। इतना ही नहीं उन्हें दोनों जगह तनाव और तनाव से गुजरना पड़ता है। महिलाएं आज खुद को अपने पति की सच्ची अर्धांगिनी मानती हैं। वह आज उसकी दुनिया के बारे में ज्यादा जानती है और वह उसके काम के दबाव को समझती है। यह व्यापक रूप से महसूस किया जाता है कि कमाई की शक्ति उन्हें बड़े फैसलों पर अपनी राय देने की अनुमति देती है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. बागची ए. भूमंडलीकरण उदारीकरण और भेद्यता भारतीय और तीसरी दुनिया, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 34 (48), 3219-30
2. चिब्बर बी. भूमंडलीकरण और महिलाओं पर इसका प्रभाव एक महत्वपूर्ण विश्लेषण, मुख्यधारा, 9 मई, XLVII(21)।
3. सेन अमर्त्य। ए. गौहर (सं.), साउथ-साउथ स्ट्रैटेजी, लंदन थर्ड वर्ल्ड फाउंडेशन, 1983, 103 में द फूड प्रॉब्लम: थ्योरी एंड प्रैक्टिस"।
4. टेम्मा कपलान, अनकॉमन वीमेन एंड द कॉमन गुड वुमेन एंड एनवायर्नमेंटल प्रोटेस्ट इन शीला रोबोथम और स्टेफ़नी लिंकोगल (संस्करण), वीमेन रेसिस्टेंट ग्लोबलाइज़ेशन मोबिलाइज़िंग फॉर लाइवलीहुड एंड राइट्स, जेड बुक्स, लंदन, 2001, 28-45।

समाज में दोषमुक्त महिलाओं की स्थिति: मानवशास्त्रीय अध्ययन

*गुंजन सिंह

परिचय- समाज में अपराध को अच्छा नहीं माना जाता है. यह एक असामान्य व्यवहार होता है. अगर किसी व्यक्ति पर एक बार ही सही अपराधी होने का आरोप लग जाता है तो क़ानूनी प्रक्रिया से निर्दोष साबित होने के बावजूद उसके ऊपर लगे आरोपों से समाज दोषमुक्त नहीं करता है. गैरकानूनी गिरफ्तारी और नजरबंदी से न केवल जीवन के वर्षों का नुकसान होता है, बल्कि रिहा होने के बाद भी सामाजिक कलंक यानि स्टिग्मा और बहिष्कार का सामना करना पड़ सकता है. कई बार तो आस पड़ोस और रिश्तेदार साथ देते हैं और सहानुभूति रखते हैं लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता है. सामाजिक कलंक और बहिष्कार केवल व्यक्ति का ही नहीं होता है बल्कि परिवार का भी होता है. अगर परिवार में बच्चे हैं तो पुरे जीवन भर के लिए मानसिक आघात के साथ जीना पड़ता है. संघर्ष उनके जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन जाता है. क्योंकि जैसी परवरिश व्यक्ति जेल से बाहर रहकर या बिना किसी आपराधिक आरोप लगे कर सकता है वैसी परवरिश वह जेल में रहकर नहीं कर सकता है. ऐसे व्यक्तियों के साथ सामाजिक भेदभाव कम या ज्यादा सभी के साथ अनिवार्यतः होता है. जेंडर गत गैरबराबरी होने के कारण महिलाओं को सामाजिक भेदभाव तो सहना ही पड़ता है लेकिन पारिवारिक भेदभाव भी उन्हें झेलना पड़ता है. भारत के जेलों में जो महिलाएं कैद हैं उनमें से अधिकांश माँ हैं. कुछ महिला कैदियों के साथ उनके बच्चे जेलों में ही बिना किसी अपराध के रहते हैं जबकि बहुत महिलाओं के बच्चे जेलों से बाहर बिना माँ के रहने को मजबूर होते हैं.

> यह लेख मुख्य रूप से उन महिलाओं से संबंधित हैं जिन पर गलत अभियोजन लगाया गया और उन्हें कुछ समय तक जेल में भी रहना पड़ा. यह लेख इस परिघटना का विश्लेषण करता है और महिलाओं पर इसके प्रभाव को विभिन्न आयामों के माध्यम से चर्चा में लाने का प्रयास किया करता है

31 दिसंबर, 2019 तक 4,78,600 कैदियों में से 4,58,687 पुरुष कैदी थे और 19,913 महिला कैदी थी [1]. यह तय है कि 19,913 की संख्या में से सभी महिलाएं अपराधी नहीं है. उनमें से बहुत महिलाएं

निर्दोष हैं जिनके ऊपर गलत अभियोजन चलाया जा रहा है. इन निर्दोष महिलाओं की जिन्दगी जेलों में बद से बदतर होती हैं. अपनी बेगुनाही के साथ जेलों में रहने के कारण ये मानसिक तनाव, अनिद्रा और अवसाद की शिकार होती हैं. स्वास्थ्य सम्बन्धी तमाम बीमारियाँ इनको घेर लेती हैं. दुखद ये होता है कि इनके लिए किसी भी तरह की चिकित्सीय सुविधा उपलब्ध नहीं होती है.

गलत अभियोजन के लिए पुलिस, अधिवक्ताओं और न्यायाधीशों को मुकदमें के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जाता है, जो गलत सजा की ओर ले जाता है, जैसे कि गढ़े हुए सबूत, झूठी गवाही देना, या बेगुनाही के सबूत पर विचार करने से इनकार करना[2]. ऐसे कई मामले होते हैं जिनमें जमानत को नज़रंदाज़ किया जाता है. गलत पहचान के आधार पर हिरासत में लेना मुख्य उदाहरण है. पायल के घर के लोगों के बार बार यह कहने के बावजूद कि पुलिस ने गलत लड़की को जेल में रखा है उनकी जमानत होने में महीनो लग गए. इसका कारण यह भी होता है कि मामलों पर गंभीरता से विचार नहीं किया जाता है.

[1] https://ncrb.gov.in/en/prison-statistics-india-2019(03.06.2020) 11pm

[2] https://eji.org/issues/wrongful-convictions/(03.06.2020) 10pm

*पीएचडी मानव विज्ञान, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, ईमेल- gunjansingh070@gmail.com, मोब-8485865894

'भारत की 1,350 जेलों में से केवल 31 जेल महिलाओं के लिए आरक्षित हैं, और केवल 15 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में अलग-अलग महिला जेल हैं. बाकि जगह, महिला कैदियों को पुरुषों की जेलों के भीतर ही छोटे-छोटे घेरों में रखा जाता है. महिलाओं के जेल के बारे में ऐसा कहा जा सकता है कि एक जेल के भीतर एक जेल.[1] अधिकांश महिलाएं जिस जेल में होती हैं वो उनके घरों से बहुत दूर होता है. जेल में भी उनसे मिलने आने वाले लोगों की संख्या या तो बहुत कम होती है या नहीं होती है.

शोध प्रविधि- गलत अभियोजन के चलते जमानत होने तक या मुकदमें का फैसला आने में सालों लग जाते हैं तब तक महिलाओं को जेल में ही रहना पड़ता है. इस शोध आलेख में ऐसे कई महिलाओं से असंरचित साक्षात्कार लिया गया है जो कुछ समय तक जेल में रहीं और दोषमुक्त हुयी हैं. उनके परिवारों में विषय को लेकर संवाद स्थापित किया गया जिससे महिलाओं और उनके परिवार की स्थिति को बेहतर तरीके से समझा गया. अवलोकन एक महत्वपूर्ण शोध प्रविधि रही जिसके माध्यम से उन स्थितियों का भी अध्ययन संभव हो पाया जो साक्षात्कार के दौरान नहीं हो पाया था. प्रस्तुत शोध में इस परिघटना का विश्लेषण करने के लिए दो महिलाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिनसे साक्षात्कार लिया गया था.

वैक्तिक अध्ययन- गलत अभियोजन के कारण कुछ समय तक जेल में रहने और सालों तक मुकदमा चलने के कारण कई महिलाओं का जीवन नकारात्मक रूप से प्रभावित हो जाता है. वैक्तिक अध्ययन में समानता नहीं होती है और उस आधार पर सामान्य सैधान्तिकी का निर्माण संभव नहीं होता है. लेकिन इस परिघटना के कारण स्टिग्मा, सामाजिक भेदभाव और जीवन के संघर्ष लगभग एक जैसे होते हैं. यहाँ दो महिलाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है जो लंबे असंरचित साक्षात्कार पर आधारित है[2].

1- लखनऊ निवासी श्वेता 24 वर्ष (काल्पनिक नाम) को कम्पनी में हेरा फेरी के आरोप में गिरफ्तार किया गया था. उन्हें तीन महीने जेल में रहना पड़ा और करीब 10 वर्षों तक मुकादमा लड़ना पड़ा. जिस कम्पनी में वो थी वहां पर वह सिर्फ दो घंटे के लिए एक कलर्क की हैसियत से जाती थी. वो अपनी पढ़ाई कर रही थी और खाली समय में आय के इस श्रोत से भी जुड़ गयी थी. उन्हें इस बात का अंदाज़ा भी नहीं था उस कम्पनी के अधिकारी ने उन्हें सचिव के पद पर नियुक्त किया है. अधिकारी श्वेता के नाम से हेराफेरी का सारा काम कर रहा था. इस बात की पुष्टि जल्दी ही हो गयी. इसलिए जमानत भी तीन महीने में ही मिल गयी लेकिन यह तीन महिना ही उनकी जिन्दगी बर्बाद करने के लिए पर्याप्त साबित हुआ. उनके परिवार में माँ पिता और दो छोटे भाई हैं.

2- लखनऊ निवासी पायल 18 वर्ष (काल्पनिक नाम) गलत शिनाख्ती के आधार पर जेल गयी थी. उनके मोहल्ले में मारपीट की घटना हुई थी. पुलिस ने गलत शिनाख्त के आधार पर उन्हें जेल ले गयी थी. एक महीने में जमानत मिल गयी थी लेकिन जमानत की राशि का भुगतान न कर पाने के कारण उन्हें दो महीने और जेल में रहना पड़ा. पायल का मुक़दमा करीब दो सालों तक चला था. लेकिन जेल के वातावरण और वहां हुई बदसलूकी के कारण वो गहरे अवसाद में चली गयीं थी. करीब एक साल तक उनका इलाज कराना पड़ा. मानसिक

[1] https://thewire.in/women/india-women-prisoners-rights(01.06.2020) 07pm

[2] दोष मुक्त महिलाओं से और उनके परिवार के लोगों से विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है. यहाँ इस परिघटना को समझने के लिए विस्तृत बातचीत का बहुत ही संक्षिप्त विवरण दिया गया है.

> अस्थिरता उनकी जिन्दगी का हिस्सा बन गया है. उनके घर के लोग पायल के भविष्य को लेकर चिंतित हैं. पायल के परिवार में माँ पिता और पांच भाई बहन हैं जिसमें से वो तीसरे नंबर पर हैं. दो बहने छोटी हैं.

विश्लेषण- पेनल रिफॉर्म एंड जस्टिस एसोसिएशन की महासचिव और पेनल रिफॉर्म इंटरनेशनल की अध्यक्ष रानी धवन शंकरदास ने अपनी पुस्तक 'ऑफ वीमेन 'इनसाइड': प्रिज़न वॉयस फ्रॉम इंडिया' [1](2020)में जेलों के अंदर महिलाओं की स्थिति का विस्तृत वर्णन किया गया है.

रानी धवन कहती हैं कि 'जेल अपने कानूनी अपराधों के अनुसार कैदियों को वर्गीकृत कर सकते हैं. लेकिन एक जेल का सामाजिक समूह विशेष रूप से एक महिला जेल में सभी कानूनी अपराधों के बारे में नहीं होता है. यह इस बारे में होता है कि महिलाएं किस तरह से प्रथा, परंपरा जो कि सदियों से निर्धारित होती हैं उनको तोडती हैं. इस तरह की महिलाएं सामाजिक और नैतिक वर्जनाओं की बाधाओं को पार कर चुकी हैं. समाज में अक्सर धर्म कानून की तुलना में अधिक मजबूत स्वीकृति होने की उम्मीद की जाती है और सामाजिक रूप से इसी की मान्यता भी होती है. इसलिए कानून की नज़र में दोषमुक्त हुआ व्यक्ति समाज की नज़र में भी दोषमुक्त हो ये जरुरी नहीं है.

समाज का स्वरूप पित्रसत्तात्मक होने के चलते महिलाओं के लिए जीवन में अगर कोई इस तरह की घटना हो जाती है तो उनके लिए समस्याओं का पहाड़ टूट पड़ता है. श्वेता को सामाजिक बहिष्कार, तिरस्कार, सामाजिक भेदभाव झेलना पड़ा. उनका केस दस सालों से भी अधिक समय तक चला. जिसके चलते उनका विवाह नहीं हो पाया. लेकिन वो संघर्षशील महिला हैं, अपनी आजीविका के लिए लगातार प्रयासरत रहती हैं. उन्हें इस बात का डर है कि उनके माता पिता की मृत्यु के बाद उनका क्या होगा? उनके दोनों भाई अपनी अपनी जिंदगी और जिम्मेदारियों में व्यस्त हो गए हैं. उनकी सबसे बड़ी समस्या यह है की वह जहाँ भी नौकरी के लिए आवेदन देती हैं वहां उनके पिछले जेल जाने की घटना और केस के चलते नौकरी नहीं मिल पाती है. वह कहती हैं कि 'इस समाज में इस घटना के बाद न्यायलय ने भले ही मुझे दोषमुक्त कर दिया गया हो लेकिन मुझे बहुत बड़ी सजा मिल रही है. यह सजा जीवन भर के लिए भुगतना है. मैंने कुछ नहीं किया लेकिन जेल में रहकर आई हूँ ये लोग भूल ही नहीं पाते है. न ही मुझे भूलने देते हैं. अब मेरी जिम्मेदारी सिर्फ मैं हूँ. मुझे ही अपने आपको पालना है. मेरे पास अपना कोई परिवार नहीं है अपने कोई बच्चे नहीं है.'

उनके अनुसार इस समाज में उनकी कोई भूमिका नहीं है. प्रदत प्रस्थिति में वो केवल बेटी और बहन की भूमिका में हैं. और वो भी आश्रित. अगर वो अपने आजीविका के लिए लगातार प्रयासरत नहीं रही तो पूरी तरह से भाइयों पर ही आश्रित होना पड़ेगा.

'एक प्राथमिक समस्या जिसका सामना लड़कियों और महिलाओं को करना पड़ता है, वह है अकेले रहने का डर'.[2] अधिकांश महिलाएं आश्रित होती हैं. उन्हें अपने पिता या पति पर आश्रित होना पड़ता है. यह समाज और परिवार का एक नैतिक नियम होता है जिसमें महिलाओं की भूमिका सार्वजनिक जीवन में न होकर घर के अंदर होती है. लेकिन आश्रित होने से कई गुना ज्यादा डर महिलाओं को अकेले रहने से होता है. समाज में अकेली महिला के लिए तमाम तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है. गलत अभियोजन के चलते जेल जा चुकी महिलाओं का सबसे बड़ा डर यही होता है. किसी भी तरह के सामाजिक नैतिक मूल्यों के मापदंड से विचलन को महिलाओं के चरित्र से जोड़ कर देखा जाने लगता है.

[1] Shankardass, Rani Dhavan (2016) *Of Women 'Inside': Prison Voices From India,* Routledge, India

[2] https://www.law.northwestern.edu/legalclinic/wrongfulconvictions/events/documents/psychological-consequences-of-wrongful-conviction-in-women.pdf(02.06.2020) 11pm

श्वेता और पायल पायल को अपने चरित्र को लेकर हमेशा ताने सुनने पड़ते हैं. वो कहती हैं कि 'जैसे यह मान लिया गया है कि 'जेल में मेरे साथ यौन संबंध स्थापित हुआ है. लोग यही कहते हैं कि लड़कियां जेल में कैसे बच सकती हैं'. कोर्ट में पेशी के लिए जाने पर सभी महिलाओं की तलाशी ली जाती थी. उनके सभी कपडे उतरवा लिए जाते थे. तलाशी लेने वाले लोगों को यह फर्क नहीं पड़ता था कि बिना कपड़ों को उन्हें पुरुष भी देख रहे हैं. जेल में आपकी इज्जत, आपका आत्मसम्मान, आपका आत्मविश्वास सब चकनाचूर हो जाते हैं. इस आघात को सहना किसी भी निर्दोष महिला के लिए आसान नहीं होता है.

समाज में महिलाओं और पुरुषों की भूमिका बहुत ही स्पष्ट तरीके से विभाजित होती है. वर्तमान समय में इसमें कुछ बदलाव जरुर हुये हैं जिसके चलते सार्वजानिक जीवन में महिलाएं ऐसे बहुत काम कर रहीं है जिसे आज तक पुरुष करते आये थे और उनका ही वर्चश्व था, परन्तु संरचनात्मक रूप से इसमें कोई बदलाव नहीं है. महिलाओं को उग्र स्वभाव का नहीं माना जाता है. उन्हें स्वभाव से निष्क्रिय माना जाता है. महिलाओं की किसी भी क्षेत्र में सक्रीय भूमिका यानि पहल की भूमिका को बुरा ही माना जाता है. परिवार में निर्णय की लेने की क्षमता महिलाओं की नहीं होती है और अगर होती भी है तो बहुत ही सीमित होती है. महिलाओं की सामाजिक भूमिका अपने दायित्यों का निर्वहन करना होता है. उसके इसी भूमिका को नैतिक रूप से सही माना जाता है. अपराध जगत में भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की सक्रीय भागीदारी बहुत ही कम होती है. लेकिन एक बार किसी महिला के जेल चले जाने से उस पर जो सामाजिक कलंक लगता है उसे समाज भूलने नहीं देता है और महिलाएं सामान्य जीवन नहीं जी पाती हैं. जबकि पुरुष भी सामाजिक कलंक का सामना करते हैं लेकिन समाज पुरुषों की तुलना में महिलाओं के प्रति ज्यादा क्रूर रवैया अपनाता है.

श्वेता की भी यही स्थिति है. वो कहती हैं कि 'मेरे साथ तो ऐसा व्यवहार होता है जैसे लड़कियां मुझसे बात भी कर लेंगी तो वो बदनाम हो जाएँगी'. कोई मुंह से कुछ नहीं कहता लेकिन सबकी नज़रे और व्यवहार ऐसे हैं कि सब कुछ समझ में आ जाता है. अब मैं अगर घोषित रूप से बुरी लड़की बन गयी हूँ तो यहाँ रहूँ या कहीं और क्या फर्क पड़ता है'.

भारतीय समाज का तानाबाना मुख्यतः पित्रसत्तात्मक है. महिलाओं के लिए एक खास तरह की दर्जाबंदी होती है जिसके अनुकूल उनको व्यवहार करना होता है. ऐसा न करने पर महिलाओं को अच्छी और बुरी महिलाओं के रूप में चिन्हित किया जाता है. सामाजिक नियम कानून और आदर्श महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग अलग होते हैं. नैतिकता जितनी महिलाओं के लिए कठोर होती है उतनी पुरुषों के लिए नहीं होती है. हालाकीं नौतिकता के पैमाने बदलते रहते हैं. फिर भी समाज में अपराध एक ऐसा क्षेत्र रहा है जहां महिलाओं की भागीदारी जबर्दस्त कम रही है. किसी पुरुष का जेल में रहकर आना और किसी महिला का जेल से आना बहुत ही अलग बात है. पुरुष अपने सामान्य जीवन के लिए संघर्षरत रहते हैं लेकिन कोई महिला अपना सामान्य जीवन ही नहीं शुरू कर पाती है.

महिलाओं के साथ सोशल स्टिग्मा यानि सामाजिक कलंक बहुत गहरे स्तर पर जुडा होता है. किसी भी तरह के तथाकथित सामाजिक नैतिक मूल्यों के भटकाव या उसके विरोध मे जाने पर समाज उन्हें 'बुरी महिलाओं' की नजर से देखना शुरू कर देता है. समाज में बनाये गए नौतिक मूल्य महिला और पुरुष के लिए समान नहीं होते हैं. उनमें बहुत गैरबराबरी होती है. समाज में अविवाहित महिला को भी अच्छी नजर से नहीं देखा जाता है. वर्तमान में आर्थिक रूप से सशक्त और कामकाजी कुछ महिलाएं विवाह न करने का निर्णय ले रहीं है. आत्मनिर्भर महिलाएं ही इस तरह के निर्णय ले पाने में सक्षम हैं. लेकिन समाज में इसकी संख्या भी बहुत कम है. आत्मनिर्भर महिलाएं भी इस तरह के निर्णय लेने का साहस नहीं कर पाती हैं. क्योंकि सामाजिक रूप से परिवार को ही मान्यता प्राप्त होती है जिसमें पति पत्नी और बच्चे होते हैं. इसे ही आदर्श माना जाता है. ऐसी

स्थिति में अगर किसी महिला का विवाह इस कारण से न हो पा रहा हो कि वह जेल जा चुकी है तो उस महिला के लिए जीवन कितना कठिन हो जाता है इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है. श्वेता के खिलाफ दायर की गयी याचिका में बहुत सी कमियां थी. जिसके कारण उनके ऊपर लगे आरोप की पुष्टि नहीं हो पा रही थी. लेकिन जल्दी जमानत मिलने और दस वर्षों तक चले मुकदमें ने उनका पीछा नहीं छोड़ा. जिसके चलते उनका जीवन बुरी तरह से अस्त व्यस्त हो गया.

पायल के माता पिता की मुख्य चिंता में यह बात शामिल हैं कि उनके लड़कियों की शादी में कोई समस्या न आये. उनका मानना है कि समाज में तो हमारी बदनामी हो चुकी है उसको तो सहना ही पड़ेगा लेकिन लड़कियों की शादी अच्छे घर में हो जाती तो हमारी सारी समस्याएँ खत्म हो जाएँगी.

श्वेता के परिवार की भी बहुत बदनामी हुई. जिसके चलते कुछ समय तक उनको सामाजिक वहिष्कार जैसा माहौल झेलना पड़ा. शादियों में आना जाना, किसी पारिवारिक कार्यक्रम या मोहल्ले में किसी भी तरह के कार्यक्रमों में बुलाना बंद कर दिया गया. वो खुद भी किसी सार्वजानिक स्थान पर जाने से बचने लगीं. इस तरह की घटनाओं में सबसे पहले महिलाओं के चरित्र पर ही सवाल उठता है. महिलाओं के साथ जो सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनको अपने परिवारों में भी जगह कम मिलने लगती है. कहीं भी आने जाने कर सवाल जवाब शुरू हो जाते हैं. महिलाएं वैसे भी बहुत नियंत्रित जीवन को जीती हैं. अगर किसी महिला के जीवन में इस तरह का हादसा हो जाये तो उसके ऊपर नियंत्रण और ज्यादा कस जाता है.

श्वेता बताती हैं कि वो तीन महीने तक जेल में रही थी. लेकिन वहां से आने के बाद करीब साल भर तक वो घर में ही रही. एक तो उन्हें कहीं बुलाया नहीं जाता था, दुसरे परिवार के लोग खुद उन्हें अपने साथ नहीं ले जाना चाहते थे, तीसरा खुद उनके अंदर भी घर से बाहर जाने का भय हो गया था. उनके छोटे भाई जो उम्र में उनसे बहुत छोटे हैं, उन्होंने भी रोकना टोकना शुरू कर दिया. करीब साल भर के बाद वो अपने एक मित्र के घर गयी थी. उन्होंने बताया कि मुझे रिक्शा में बैठने पर भी डर लगता था कि कोई कुछ कह न दे. कहीं मुझे कोई पहचान न ले.

इस तरह का सामाजिक कलंक व्यक्ति को अंदर से असहज बना देता है. जिसके कारण उसके मन में हमेशा तमाम चीजों का डर बना रहता है. उसके हर तरह के व्यवहार में इसका असर देखा जा सकता है. व्यक्ति का आत्मसम्मान और आत्मविश्वास बहुत कम हो जाता है.

निष्कर्ष- 31 दिसंबर, 2019 तक 4,78,600 कैदियों में से 4,58,687 पुरुष कैदी थे और 19,913 महिला कैदी थी.[1] जेल से बाहर आने पर पुरुष समाज के भेदभाव से लड़ सकते हैं लेकिन महिलाएं नहीं. बहुत महिलाएं जेलों से बाहर ही नहीं आना चाहती क्योंकि जेल से बाहर उनके लिए कोई जगह नहीं होती है. ऐसे में पुनर्वास और मुवावजा बहुत जरुरी कदम हो जाता है खासकर महिलाओं के लिए. सुझाव के रूप में राज्य द्वारा अपने अधिकारियों के कदाचार के लिए मुआवजे का पुरस्कार भुगतान भी निर्धारित किया जाना चाहिए. गलत अभियोजन के लिए दोषी व्यक्तियों पर कार्यवाही होनी चाहिए और उनसे जुर्माना लेना चाहिए. यदि ऐसा निर्धारित किया जाता है, जिसे राज्य बाद में ऐसे संबंधित अधिकारियों से वसूल कर सकता है और कानून के अनुसार उनके खिलाफ उचित कार्यवाही भी शुरू कर सकता है. मुआवजा या तो विशेष अदालत द्वारा तय मौद्रिक पुरस्कार के रूप में वित्तीय सहायता या परामर्श, रोजगार प्रशिक्षण, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं, और अन्य ऐसी सेवाओं के रूप में गैर-वित्तीय सहायता के माध्यम से हो सकता है. यह दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के पीड़ितों की सहायता करते हैं अभियोजन और दोषसिद्धि से जुड़े सामाजिक कलंक और समाज में उनके पुनर्वास को आसान बनाते हैं. अपराध की गंभीरता और कारावास की अवधि और नुकसान और स्वास्थ्य,

[1] https://ncrb.gov.in/en/prison-statistics-india-2019(03.06.2020) 05pm

संपत्ति और प्रतिष्ठा को नुकसान कुछ ऐसे कारक हैं जिन पर मुआवजे की राशि का निर्धारण करते समय विचार किया जाना चाहिए.

संदर्भ सूची-

1. https://ncrb.gov.in/en/prison-statistics-india-2019(03.06.2020) 11pm
2. https://eji.org/issues/wrongful-convictions/(03.06.2020) 10pm
3. https://thewire.in/women/india-women-prisoners-rights(01.06.2020) 07pm
4. दोष मुक्त महिलाओं से और उनके परिवार के लोगों से विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है. यहाँ इस परिघटना को समझने के लिए विस्तृत बातचीत का बहुत ही संक्षिप्त विवरण दिया गया है.
5. Shankardass, Rani Dhavan (2016) *Of Women 'Inside': Prison Voices From India,* Routledge, India
6. https://www.law.northwestern.edu/legalclinic/wrongfulconvictions/events/documents/psychological-consequences-of-wrongful-conviction-in-women.pdf(02.06.2020) 11pm
7. https://ncrb.gov.in/en/prison-statistics-india-2019(03.06.2020) 05pm

मध्यकाल की स्त्री रचनाकारों से जुड़ी जनश्रुतियाँ

*ज्योति

हम रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों को अनुपम क़िस्सागोई के रूप में भी ले सकते हैं या मानते हैं. ठीक इसी प्रकार पंचतंत्र की कहानियाँ भी अनूठी क़िस्सागोई हैं, जिनमें एक कहानी से दूसरी कहानी के बीज उगते जाते हैं. क़िस्सागोई आदिम समाज से शुरू होकर और हम तक पहुंची है. यह हमारी स्मृति की दुनिया की धरोहर है. 'अलिफ़ लैला' अथवा 'अरबी रातें' भला कौन भूल सकता है! इन सब में एक समानता है. मूल में कथानक का धागा बना रहता है और वह लगातार दिलचस्प मोड़ों से होता हुआ नया क़िस्सा बनता जाता है. हम सब अपने मनुष्य जीवन में एक ख़ासियत रखते हैं. हम सब अपने-अपने स्तर पर क़िस्सागोह होते हैं. चाहे भले या बुरे, लेकिन हम क़िस्सा गढ़ सकते हैं और क़िस्सा आगे बढ़ा भी सकते हैं. इस पर एक छोटी ही सही सभी की सहमति हो सकती है. दादी और नानी की कहानियों में जो सहज और सरल क़िस्सागोई की शैली होती है वह रचनात्मक होती है. जब वही कहानी सुनने वाली छोटी बच्ची बड़ी होती है तब वह अपनी रचनात्मकता को जोड़कर ताज़ा कहानी बनाती है जिसका मूल वही होता है. हम सब अपने स्तर पर दास्तानगोई कर सकते हैं.

प्रस्तुत शोध लेख में मध्यकालीन समय में प्रसिद्ध दो कवयित्रियों के साथ जुड़ी जनश्रुतियों का ज़िक्र किया गया है। इन श्रुतियों ने समय के साथ लोकस्मृति में अपना स्थान बदलते स्वरुप के साथ बनाए रखा है। ये जनश्रुतियां आज तक जीवित हैं। लोगों में ये कथाएँ, क़िस्सों के रूप में कही-सुनी जाती हैं। प्रायः लोककथाओं में स्त्री चरित्र के हिस्से उतने बेहतर व्यक्तित्व के तत्व नही आते। उन्हें बदनामी के साथ जल्दी जोड़ दिया जाता है। परन्तु इन दो कवयित्रियों से जुड़ी जनश्रुतियों में स्त्री चरित्र के प्रति सकारात्मकता है।

इस लेख में दो स्त्री भक्त लेखिकाओं या कवयित्रियों के संदर्भ में लोक में प्रचलित जनश्रुति क़िस्सों पर प्रकाश डाला जाएगा जिनका साहित्य के क्षेत्र में आज भी महत्त्व है. परन्तु उन पर स्त्री दृष्टि से चर्चा और आगे ले जाने की ज़रुरत है. पहली स्त्री मीराबाई हैं. शोध लेख में उनसे जुड़ी जनश्रुतियाँ का उल्लेख होगा. दूसरी स्त्री ताज होंगी जिनके बारे में भी एक कहानी कही जाती है. ये दोनों स्त्रियाँ कृष्ण भक्त थीं और अनूठे कवित्त और सवैया लिखती थीं. हिंदी साहित्य में ताज लगभग गुमशुदा स्त्री भक्त कवयित्री हैं. दोनों ने अपने-अपने स्तर पर विद्रोह किया था.

महिला लेखन से जुड़ी मुंशी देवीप्रसाद 'मुंसिफ़' द्वारा सम्पादित एक अनूठी पुस्तक 'महिला मृदुवाणी' मीराबाई से जुड़ी एक घटना को यहाँ उद्धृत करना अच्छा होगा. पुस्तक में इस (क़िस्सा) प्रसंग से मीरा और उनके साथ जुड़ी जादुई घटना के बारे में पता चलता है. 'मीराबाई संवत् 1573 में मेवाड़ के मशहूर महाराजा साँगा जी के कुँवर भोजराज को ब्याही गई थीं परन्तु शीघ्र ही विधवा होकर भगवत भजन करने लगीं. इनके देवर महाराणा रतनसिंह, विक्रमाजीत और उदैसिंह तीनों एक के पीछे एक इनके पिता की गद्दी पर बैठे, इनमें से रतनसिंह और विक्रमाजीत, इनकी ड्योढ़ी पर साध-संतों का आना जाना देखकर चिढ़ते थे और इनको इस बात से रोकते थे. परन्तु ये भगवत भक्ति से उनका कहना नहीं मानती थीं. तब राणा विक्रमाजीत ने अपने दीवान की सलाह से इनके पास चरणामृत के नाम से विष भेजा. ये माथे चढ़ाकर उसको पी गईं. परंतु वह विष इनको नहीं चढ़ा और राणा जी का मुँह उतर गया.'[1] यह जनश्रुति इतनी

*पीएच.डी. शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, फ़ोन न. 8447782321, ईमेल: jyotijprasad@gmail.com

मशहूर है कि आम लोग भी मीराबाई के गुणगान में इसका इस्तेमाल करते हैं. मीराबाई भगवान कृष्ण की परम भक्त थीं. विष पीने के बाद भी मीराबाई का जीवित रहना एक चमत्कार तो था ही इसके अतिरिक्त कृष्ण का अदृश्य रूप और उनकी गतिविधि पृष्ठभूमि में उभरती है. सच्ची आत्मा, भक्ति या पवित्रता का उदहारण देने के लिए लोगों में यह क़िस्सा अथवा कहानी कही-सुनी जाती है. लोग आम बोलचाल में कह भी देते हैं कि भक्त हो तो मीरा जैसी, मीरा कृष्ण की बहुत बड़ी भक्त थीं, मीरा जैसा भक्त आज तक कोई नहीं हुआ. ये पंक्तियाँ जनश्रुतियों से एक तरह का जनसंवाद हैं.

अन्य जनश्रुतियों पर भी एक दृष्टि डालना ठीक रहेगा. 'मेकालिफ ने भी अपनी पुस्तक लीजेंड ऑव मीराबाई में लिखा है कि राणा ने मीरा को तलवार के घाट उतारना चाहा; पर स्त्री का वध करना महापाप होता है, अतः उन्होंने मीरा को तालाब में डूब मरने की आज्ञा दी. मीरा ने उनकी आज्ञा का पालन किया. गिरधर की सहायता का संबल ले वह निर्भय होकर पुष्कर में कूद पड़ीं, परन्तु एक दिव्य पुरुष ने उन्हें अथाह जल से निकाल, उन्हें वृन्दावन जाने की आज्ञा दी.'[2] इसके अलावा भी अन्य गुजराती, बंगीय और मराठी जनश्रुतियां हैं. उनमें मूल कथानक वही है पर वे स्थिति और स्थान के अनुसार बदल कर दूसरी कथा में परिवर्तित हो रहे हैं. जैसे 'गुजराती में जनश्रुति यह है कि जब मीरा पर विष का असर नहीं पड़ा तब राणा ने मारने के लिए तलवार उठाई. पर हाथ उठाने के साथ ही मीरा के चार रूप दिखाई देने लगे.'[3] जनश्रुतियां क़िस्सागोई के पहलू को मज़बूत कर उसे लोक में प्रचारित कर देती हैं. आज के समय में टेलीविज़न पर आने वाले विज्ञापन जिस तरह से किसी उत्पाद अथवा व्यक्ति को केंद्र में रख देते हैं ठीक इसी प्रकार जनश्रुतियां सुनने और गूंथने के क्रम में व्यक्ति और घटना को केंद्र में स्थापित कर देती हैं जिससे सभी का ध्यान उन पर केन्द्रित हो जाता है. इससे कहानी दिलचस्प बन जाती है.

जनश्रुतियों में यह अद्भुत बात जुड़ जाती है कि यहाँ लेखक का पता नहीं चलता. मुख्य कथानक के इर्द-गिर्द कुछ इस तरह की रचनात्मकता जुड़ती जाती है जिससे मूल घटना या कहानी के बारे में सटीक रूप से पता नहीं चल पाता. मूल कथानक इन क़िस्सों में कुछ इस तरह उभरकर सामने आता है जो सभी को आकर्षित करने के साथ-साथ कुछ न कुछ जोड़ने का निमंत्रण भी देता है. इनमें तथ्य और कल्पना को अलग करना मुश्किल होता है. मीराबाई से जुड़े इन क़िस्सों में मीराबाई का व्यक्तित्व बेहद मज़बूती से उभरकर सामने आता है. इसके साथ ही उनके व्यक्तित्व में दिव्य तत्व का जुड़ाव भी मुख्य घटना का हिस्सा बन जाता है. मीराबाई के एक पद में विष-कथा के अंश का ज़िक्र आता है. संभवतः कालांतर में यही मूल कथा आगे चलकर विभिन्न लोक स्मृतियों और उपकरणों के माध्यम से बदलती रही है. वह पद इस प्रकार है-

गोविन्द का गुण गास्यां
राणो जी रूसैला तो गांम राखैला, हरि रूठ्यां कुमलास्यां
राम नाम की जहाज चलास्यां, भवसागर तिर जास्यां
चरणामृत को नेम हमारो, मित उठि दरसण पास्यां
बिषरा प्याला राणो भेज्या, इमरत करि गटकास्यां
यो संसार विनास जानिकै, ताको संग छिटकास्यां
लोक लाज कुल कानिहु तजिकै, निरभै निसांण घुरास्यां
मीरा के प्रभु हरि अविनाशी, चरणकमल बलि जास्यां[4]

इस पद से यह पता चलता है कि मूल घटना संपन्न हुई है. वो कह भी रही हैं कि विष का प्याला वे अमृत समझ कर गटक गईं. इस पंक्ति के बाद की पंक्तियों में दार्शनिकता का बोध होता है. मीराबाई विष का प्याला ग्रहण करने के बाद जीवित रहीं, यही घटना या चमत्कार लोगों को उनके बारे में कई कहानियाँ गढ़ने का रचनात्मक अवसर उपलब्ध करवाता है. इन जनश्रुतियों की विशेषता यह है कि इनसे मीराबाई के व्यक्तिव का विस्तृत फलक जनसमुदाय की स्मृति में मिलता है. इस घटना के चलते लोगों में यह विश्वास भी गहराई से बढ़ा कि मीराबाई एक महान भक्त स्त्री हैं. उन पर स्वयं भगवान कृष्ण की कृपा है. विकट समय में स्वयं भगवान उनकी सहयता करने आते हैं. उनका जीवन बचा लेते हैं.

किसी संत स्त्री के नाम से इतनी अधिक जनश्रुतियों का होना क़िस्सा परम्परा के लम्बे इतिहास का इशारा ही हैं. स्त्रियों के संदर्भ में अमूमन लोक में अमंगल कर देने वाली मिथक कहानियाँ अधिक तैरती हैं. भूतनी, चुड़ैल या डायन नाम से स्त्रियों को नकारात्मक फ्रेम मुहैया होता रहा है. लेकिन ठीक यही नाम पुरुष के सन्दर्भ में कम मिलते हैं. उदहारण के रूप में भूत शब्द या भूतों की कहानियाँ मिलती हैं पर 'पुरुष चुड़ैल' या 'पुरुष डायन' शब्द नहीं बना है. विजयदान देथा की कहानी 'दुविधा' (मणि कौल ने इसी नाम से फ़िल्म बनाई थी और बाद में 'पहेली' फ़िल्म बनी थी) में भूत का बढ़िया उदहारण मिलता है. यह भूत कहानी की मुख्य स्त्री पात्र के लिए भयानक और ख़तरनाक नहीं है बल्कि वह तो उसे देखते ही उसे प्रेम करने लगता है. स्त्रियाँ भूतनी भी बनती हैं तो वे भयानक और खून की प्यासी दिखाई जाती हैं. यह बात लोकमन में भी अनुभव की जा सकती है.

मीराबाई के बाद जिस मध्यकालीन स्त्री संत और कवयित्री के साथ एक लोककथा जुड़ी है, वे भी चर्चित हैं. ताज, कृष्ण भक्त कवयित्री थीं. इनका समय मुंशी देवीप्रसाद 'मुंसिफ़' ने संवत् 1700 के लगभग माना है.[5] स्त्री कवयित्रियों के संदर्भ में यह भी देखने को मिलता है कि उन्हें हिंदी साहित्य की इतिहास संबंधी पुस्तकों में पुरुष मान लिया गया है. हिंदी साहित्य इतिहास पुस्तक 'शिवसिंह सरोज' में ताज का मामूली परिचय दिया गया है और वह भी पुरुष रूप में.[6] इनके जीवन से सम्बंधित एक क़िस्सा लोक में प्रचलित है. इसका ज़िक्र 'महिला मृदुवाणी', 'स्त्री कवि कौमुदी', 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' आदि पुस्तकों में मिलता है. इस लोक कहानी से ताज की परम स्त्री भक्त के रूप में स्थापना होती हैं. कथा में चमत्कारिक घटना के बाद उनकी पूजा, अर्चना और भक्ति में आने वाली बाधा हट जाती हैं. ताज मुसलमान स्त्री थीं और उनका मुस्लिम होना वैष्णव धर्म के कट्टर लोगों के लिए रास नहीं आता था.

'स्त्री-कवि कौमुदी' पुस्तक में गोविन्द गिल्लाभाई के ख़त को उद्धृत करते हुए ताज के बारे में उस लोककथा ज़िक्र किया गया है. सारांश में वह कथा यह कि 'ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री-कवि करौली ग्राम में हुई थीं. वे नहा धोकर मंदिर में भगवान का नित्यप्रति दर्शन करती थीं; इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थीं. किन्तु एक दिन वैष्णवों ने उन्हें विधार्मिणी समझ कर मंदिर में दर्शन करने से रोक दिया. इससे ताज उपवास करके मंदिर के आँगन में ही बैठ गईं और कृष्ण नाम का जाप करने लगीं. जब रात हो गई तब ठाकुर जी स्वयं मनुष्य के रूप में भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये और खाने का आग्रह किया. और कहा कि जब कल वैष्णव आयें तो कहना कि तुम लोगों ने मुझे कल ठाकुर जी का प्रसाद और दर्शन का सौख्य नहीं दिया, इससे आज रात को ठाकुर जी स्वयं मुझे प्रसाद दे गए हैं. और तुम लोगों को सन्देश दे गए हैं कि ताज को परम वैष्णव भक्त समझो. कभी इसकी भक्ति में बाधा मत डालो. नहीं तो ठाकुर जी नाराज़ हो सकते हैं. जब सुबह वैष्णव आये तो ताज ने यह बात उन्हें बताई. खाने की थाल देखने के बाद वे उनके चरणों में गिर पड़े. इस घटना के बाद ताज सबसे पहले मंदिर में प्रवेश कर प्रसाद ग्रहण करती थीं.'[7]

इस जनश्रुति कहानी के अन्य वर्जन खोजने पर अवश्य मिल जाएंगे. इस कहानी के द्वारा स्त्री और मुसलमान धर्म की ताज के व्यक्तित्व का चमत्कारिक रूप उभरता है. हालाँकि ताज ख़ुद से कोई चमत्कार नहीं करतीं. चमत्कार यह है कि ठाकुर जी ख़ुद उनके लिए भोजन की थाल लेकर आते हैं. ताज के साथ चमत्कार नहीं जुड़ा है पर इससे ताज की महिमा और भक्ति का पता चलता है. मीराबाई की जनश्रुति कहानियों की तरह स्वयं भगवान उन्हें बचाने आते हैं. ताज के लिखे कवित्तों में इस चमत्कार के बारे में कोई बात नहीं मिलती लेकिन उनके प्रत्येक पद में कृष्ण के बारे में ज़िक्र मिलता है. भक्तिमय ताज उन्हें अपने जीवन का आधार मानती हैं. वे उन पर भरोसा करती हैं-

काहू को भरोसो बद्रीनाथ जाय पायं परे
काहू को भरोसो जगन्नाथ जू के मान को
काहू को भरोसो काशी गया में ही पिंड भरे
काहू को भरोसो प्राग देखै वट पात को
काहू को भरोसो सेतबंध जाय पूजा करे

काहू को भरोसो द्वारवती गये जात को
काहू को भरोसो ताज पुस्कर में दान दिये
मो को तो भरोसो एक नन्द जी के लाल को[8]

निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि इन दो उदाहरणों से यह समझा जा सकता है कि लोक में प्रचलित लोक कथाओं ने स्त्री संबंधी दृष्टियों में बहुत फ़र्क लाने की कोशिश की है. 'लोक साहित्य और युग में संधि नहीं होती.'[9] इसलिए इन जनश्रुति कथाओं अथवा क़िस्सों ने काल के पार जाकर स्त्रियों के लिए वह स्थान बनाकर तैयार किया जो जीवंत हैं. इसने लोक मन में इस बात की स्थापना की, यदि किसी स्त्री का पति मर जाता है तो वह उसके शव के साथ चिता पर न जलकर कोई घोर अपराध नहीं करती. कम से कम राजघरानों की स्त्रियों को मीराबाई की इन जनश्रुतियों से आत्मिक बल मिला होगा. दूसरी ओर ताज के उदहारण से यह समझ आता है कि इस सनातन धर्म में सीमा रेखाएं अवश्य खिंची जाती रही हैं पर सच्चा हृदय और आत्मिक भक्ति इस बाधा को पार करता रहा है. यह जनश्रुतियां लोकतान्त्रिक लोकमन की उदहारण हैं. स्मृतियाँ धर्म और लिंग के परे दोनों कवयित्रियों को सम्मान की निगाह से देख रही हैं. इन स्त्रियों से जुड़ी जनश्रुतियों के अतिरिक्त भी अन्य जनश्रुतियां लोक में विद्यमान हैं. इन्हीं के चलते लोक स्मृति में ये स्त्रियाँ आज तक जीवित हैं और आज तक श्वास ले रही हैं. हिंदी साहित्य में तो ताज को बहुत कम रेखांकित किया गया है पर लोगों की कथाओं में वे रहीं और उन्हीं कथाओं से कुछ लोगों ने उनके बारे में जानकारी प्राप्त करना शुरू किया. इसलिए क़िस्सागोई, जनश्रुतियां और लोककथाएँ, स्त्री इतिहास दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं.

सन्दर्भ:

1. प्रसाद, देवीप्रसाद 'मुंसिफ़' (सं.), (1904), महिला मृदुवाणी, काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 59
2. सिन्हा, सावित्री, (1953), मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, दिल्ली: हिंदी अनुसंधान परिषद्, पृ. 113
3. वही, पृ. 113
4. सिंह, फतह (सं.), (1968), मीरा बृहत्पदावली प्रथम भाग, जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, पृ. 63
5. प्रसाद, देवीप्रसाद 'मुंसिफ़' (सं.), (1904), महिला मृदुवाणी, काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 2
6. सेंगर, शिवसिंह, (1926), शिवसिंह सरोज, लखनऊ: नवल किशोर प्रेस, सातवाँ संस्करण, पृ. 430
7. मिश्र, ज्योतिप्रसाद 'निर्मल', (1931), स्त्री कवि कौमुदी, प्रयाग: गाँधी पुस्तक भंडार, पृ. 19-20
8. सिन्हा, सावित्री, (1953), मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, दिल्ली: हिंदी अनुसंधान परिषद्, पृ. 189
9. राजे, सुमन, (2004), हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, दिल्ली: भारतीय ज्ञान पीठ, दूसरा संस्करण, पृ. 171

 ISSN: 2454-2725

नलिन विलोचन शर्मा: साहित्यिक योगदान

***अजय कुमार**

आधुनिक हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनका जन्म 18 फरवरी 1916 ई. को पटना में हुआ था और मृत्यु 12 सितम्बर 1961 ई. को हुआ। वे पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक, हिन्दी लेखक, कवि एवं आलोचक थे। नलिन विलोचन हिन्दी में 'नकेनवाद' आंदोलन के तीन प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक थे। वे दर्शनशास्त्र और संस्कृत के प्रख्यात विद्वान पण्डित रामावतार शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र थे। शर्मा जी का संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी पर समान अधिकार था। साथ ही साथ फ्रेंच एवं जर्मन भाषा के अच्छे जानकार भी थे। अंग्रेजी ज्ञान के कारण ही उन्हें पश्चिम के साहित्य और वहाँ के साहित्य दृष्टि में आ रहे बदलावों का अच्छा ज्ञान था। चित्रकला में भी उनकी गहरी रूचि थी। इसी कारण उन्हें युवाकाल में ही उनके नाम के साथ आचार्य शब्द लगाकर लोग संबोधित करने लगे। नलिन विलोचन ने हिन्दी आलोचना का नया मापदण्ड तैयार किया। वे अपने आलोचनात्मक रचनाओं, साहित्यिक टिप्पणियों और पुस्तक समीक्षाओं के जरिये हिन्दी साहित्य को नवीन रूप से आंदोलित करने में सफल हुए। वे नए-पुराने सभी लेखकों के बीच समान रूप से प्रतिष्ठित थे। कविता, कहानी, आलोचना, निबंध, जीवनी आदि विधाओं में भरपूर लेखन कार्य किये। उन्होंने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया। उनके जीवन काल में 'दृष्टिकोण' और 'साहित्य का इतिहास दर्शन' नामक दो आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हुई। मृत्यु के उपरांत उनकी तीन आलोचनात्मक पुस्तकें-'मानदंड', 'हिन्दी उपन्यास-विशेषत: प्रेमचंद' तथा 'साहित्य: तत्व और आलोचना' प्रकाशित हुई। मौलिक और नयी आलोचना दृष्टि और साहित्येतिहास विषयक चिंतन के अलावा नलिन विलोचन अपने रचनाशीलता के कारण भी जाने जाते हैं। 'हिन्दी आलोचना के विकास' में हिन्दी के आलोचक नंदकिशोर नवल ने नलिन विलोचन के आलोचक का विवेचन किया। और प्रो. गोपेश्वर सिंह ने साहित्य अकादमी के लिए उन पर एक मोनोग्राफ लिखा। साथ ही साथ नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए एक लंबी भूमिका के रूप में नलिन विलोचन शर्मा के निबंधों को संकलित किया।

नलिन विलोचन शर्मा ने हिन्दी आलोचना का नया मापदण्ड तैयार किया। वे अपने आलोचनात्मक रचनाओं, साहित्यिक टिप्पणियों और पुस्तक समीक्षाओं के जरिये हिन्दी साहित्य को नवीन रूप से आंदोलित करने में सफल हुए। वे नए-पुराने सभी लेखकों के बीच समान रूप से प्रतिष्ठित थे।

नलिन विलोचन शर्मा हिन्दी के विलक्षण कहानीकारों में से एक थे। उनका रचनाकार व्यक्तित्व कविता के साथ-साथ कहानी लेखन के क्षेत्र में भी समान रूप से सक्रिय थे। उन्होंने यौन मनोविज्ञान पर अनेक कहानियां लिखी हैं। नलिन विलोचन की कहानियों के संदर्भ में निशांतकेतु ने लिखा है कि- "नलिन विलोचन शर्मा ने 'विष के दाँत' तथा 'सत्रह असंगृहीतपूर्व कहानियां' इन दो संग्रहों के माध्यम से हिन्दी में वह प्रयोग और चमत्कार किया जो मंटो उर्दू में कैथरीन मैंसफील्ड अंग्रेजी में और बालजाक फ्रेंच में, एक साथ मिलकर करते है। शर्मा जी ने यौन-विच्युति, विकृति दंश, सूक्ष्म मनोविज्ञान और प्रच्छन्न विवेचन-दर्शन का कहानियों में, जैसा स्वरूपण किया है, वह वस्तुत: अन्यतम है। भाषा का ऐसा घनत्व और शिल्प

*शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संपर्क नं. 7065710208, ईमेल. ajay1147@gmail.com

की ऐसी तराश के धरातल पर हिन्दी में थोड़ी ही कहानियां प्रशंसित होगी।"[1] उनकी कहानियों में सामाजिकता और मनोवैज्ञानिकता का बड़ा ही सफल प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक सत्य को मनोवैज्ञानिक सत्य के साथ प्रतिष्ठित किया। "साहित्यिकता की दृष्टि से, हमें किस्से-कहानियों के घटना-वैचित्र्य, प्रवाह, नाटकीयता और मनुष्यता के अभाव खटकते है। प्रेमचंद ने साहित्य के इस उच्च और निम्न वर्ग की वैषम्य को अपनी कृतियों से दूर कर दिया था। उनकी रचनाओं में दोनों वर्गों की विशेषताओं का सफल समन्वय हुआ है।"[2]

कविता के क्षेत्र में नलिन विलोचन शर्मा ने जिस तरह मौलिकता और विशिष्टतापूर्वक प्रयोग किए, उसी तरह कहानी के क्षेत्र में भी किए। उनकी कहानियों में सामाजिकता और मनोविज्ञान का बड़ा ही सूक्ष्म प्रयोग हुआ है। भाषा, भाव और शिल्प के हर स्तर पर उनकी कहानियां ठोस हैं। वे अपनी कहानियों को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्य के साथ प्रतिष्ठित करना चाहते थे। नलिन विलोचन शर्मा के शब्दों में:-"मोपासा या प्रेमचन्द की तुलना में जैनेन्द्र घटना को बहुत कम महत्त्व देते हैं उनकी कहानियाँ बहुधा उलझनपूर्ण मनोवैज्ञानिक अध्ययन मात्र होती हैं। वे चेखव या कैथराइन मैंसफील्ड की तरह घटनाओं का उपयोग इसलिए करते हैं कि कहाँ मौका मिले और पात्रों के किसी कोने का वातायन खोल दे।"[3]

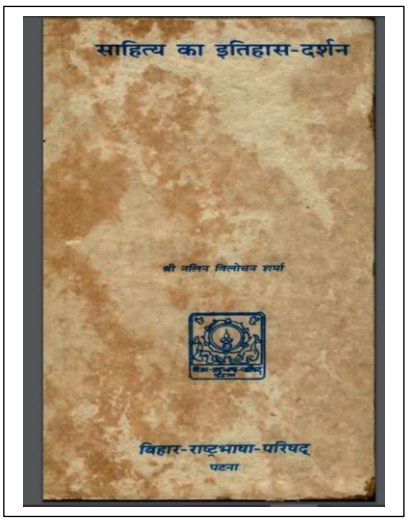

नलिन विलोचन आधुनिक-दृष्टि और प्रयोगशीलता के कारण ही 'मैला आँचल', 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'सुनीता' और 'घेरे के बाहर' जैसे उपन्यासों के पक्ष में जो कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से अलग थे। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'मैला आँचल' पर पहली समीक्षा इन्होंने ही लिखी जिसके कारण हिन्दी संसार का ध्यान 'मैला आँचल' की तरफ गया। उपन्यास संबंधी उनकी विशेषताओं की चर्चा करते हुए शिवपूजन सहाय लिखते हैं कि-"उपन्यासों की नीड़ परीक्षा में वे ऐसे परिपक्व अनुभवी हो गए थे कि कोई नया प्रसिद्ध उपन्यास पढ़ लेने के बाद, उनसे उनकी चर्चा चलने पर उनके तत्संबंधी विचार सुनकर दृष्टिकोण ही बदल जाता था।"[4]

नलिन विलोचन की कथा-आलोचना से संबंधित लेख और टिप्पणियाँ 'हिन्दी उपन्यास: विशेषत: प्रेमचंद' (1968ई.) में संकलित है। कवि रामधारी सिंह दिनकर ने इस संदर्भ में लिखा है कि- "हिन्दी उपन्यास के बारे में जो नलिन जी नहीं जानते वह कोई भी नहीं जानता।"[5] रचना प्रस्तुत करने वाली पद्धति के लिए हिन्दी साहित्य में सामान्यत: शैली, रूप आदि नाम उनके लिए प्रचलित हैं। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा को इसके लिए 'स्थापत्य' नाम प्रिय था। हिन्दी साहित्य के तीन पक्षों में से विषय और विषयवस्तु को महत्त्व देते हुए, उन्होंने स्थापत्य को अपेक्षाकृत अधिक गौरव दिया।

नलिन विलोचन उपन्यास को ही हिन्दी साहित्य का उपेक्षित अंग मानते हैं। वे प्रेमचन्द के उपन्यासों में हिन्दी उपन्यास की वे दोनों धाराएं सहसा एक हो जाती हैं। इस संदर्भ में नलिन विलोचन लिखते हैं कि-"प्रेमचन्द के उपन्यास आपातत: मनोरंजन के साधन भी हैं। और सत्य के वाहक भी। स्वयं प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी 'गोदान' इसका अपवाद है वह मात्र

सत्य का वाहक है।"[1]

उपन्यास का शास्त्र तैयार करते हुए नलिन विलोचन शर्मा ने कथा-भूमि की सभ्यता को संस्कृति से जोड़कर देखा है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि:- "हिन्दी उपन्यास का इतिहास, किसी भी देश के इतिहास की तरह हिन्दी-भाषी क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति के नवीन रूप के विकास का साहित्यिक प्रतिफलन है। समृद्धि और ऐश्वर्य की सभ्यता महाकाव्य में अभिव्यंजना पाती है, जटिलता, वैषम्य और संघर्ष की सभ्यता उपन्यास में...हमारे उपन्यास यदि आज पश्चिम उपन्यासों के समक्ष सिद्ध नहीं होते तो मुख्यत: इसलिए कि हमारी वर्तमान सभ्यता अपेक्षतया आज भी कम जटिल, कम उलझी हुई और कहीं ज्यादा सीधी-सादी है।"[2]

कविता में 'प्रपद्यवाद ' के प्रवर्तक का श्रेय इन्हीं को है। 'प्रपद्यवाद' को 'नकेनवाद' भी कहा जाता है। 'नकेन' के 'प्रपद्य' (1956ई.) और 'नकेन-2' (1982ई.) प्रपद्य के दो संकलन है। इन कविताओं में वैज्ञानिकता और बौद्धिकता की प्रधानता है, जो उस समय बिल्कुल नई बात थी। कविता के संबंध में प्रो. गोपेश्वर सिंह लिखते हैं कि-"विलक्षण शैली और सर्वथा भिन्न मन-मिजाज की अपनी प्रपद्यवादी कविताओं के जरिए उन्होंने हिन्दी कविता को आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न करने की कोशिश की।"[3]

प्रपद्यवाद की व्याख्या करते हुए केसरी कुमार लिखते हैं:-"प्रपद्यवाद प्रयोग का दर्शन है... प्रयोग के वाद से तात्पर्य यह है कि वह भाव और भाषा, विचार और अभिव्यक्ति, आवेश और आत्मप्रेषण, तत्व और रूप, इनमें से कई में या सभी में प्रयोग को अपेक्षित मानता है।"[4] इस कथन के साथ केसरी कुमार ने यह भी कहा है कि सतत प्रयोग करना ही प्रपद्यवाद है। प्रगद्यवादियों का मानना था कि कविता भाव विचार और दर्शन से नहीं लिखी जाती... वह नए विचारों एवं नए दर्शन से लिखी जाती है। नलिन विलोचन कवि के लिए 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' तथा 'विज्ञान-सम्मत दर्शन' की जरूरत पर बल देते हैं। वे मानते हैं कि कविता का उद्देश्य सत्य का संसाधन है।

नलिन विलोचन शर्मा ने सामाजिक परिवर्तनों से साहित्यकार की विमुखता और उसकी दृष्टिकोणहीनता की वकालत तो करते ही हैं, वे सामाजिक दृष्टि से साहित्य को एक प्रभावहीन वस्तु भी मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है:-"हम मानते हैं कि यदि कोई साहित्यकार किसी आंदोलन में विश्वास करता है तो उसे सीधे उसमें शामिल होना चाहिए, साहित्य की बीरबली खिचड़ी पकाने की कोशिश से होता ही क्या है!"[5]

अपनी एक पुस्तक – 'द यूज ऑफ पोएट्री एण्ड द यूज ऑफ क्रिटिसिज़्म' में इलियट ने लिखा है- मुझे लगता है कि कवि यह मानता है कि उसकी कुछ सामाजिक उपयोगिता है। लेकिन मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उसे धर्म-विज्ञान, उपदेशक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री या अन्य किसी रूप में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह कुछ भी कर सकता हैं, किन्तु जब वह कविता लिखता है तो कविता ही लिखनी चाहिए कविता जो कविता के रूप में मान्य हो, न कि किसी अन्य रूप में। ठीक ऐसी ही मान्यता नलिन विलोचन की भी है। उन्होंने अपने एक निबंध 'साहित्यकार की सामाजिक चेतना' में लिखा है- "कलाकार को पूरा अधिकार है, अगर वह ऐसा चाहता हैं कि अपने समय की सामाजिक या राजनीतिक क्रांतियों की उपेक्षा करे और अगर वह महान कलाकार है, तो वह ऐसा करके अपने अमर बन जाने की

संभावनाओं में वृद्धि कर सकता है।"[1]

1941ई. में रामचन्द्र शुक्ल 'समालोचक और निबंधकार' नामक निबंध में उन्होंने आचार्य शुक्ल की प्रशंसा की है। प्रशंसा का कारण यह था कि शुक्ल ने न तो 'प्राचीन साहित्य को समकालीन आदर्शों की दृष्टि से हास्यास्पद' माना। परंपरा की इस समझ और आधुनिकता के सम्यक बोध के साथ उन्होंने अपनी आलोचनात्मक कसौटी तैयार की।

नलिन विलोचन शर्मा का हिन्दी आलोचना में प्रवेश आ. रामचन्द्र शुक्ल के बाद होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका और स्वतंत्रता आंदोलन का पूरे विश्व पर जो प्रभाव पड़ रहा था, उससे हिन्दी साहित्य भी अछूता नहीं था। मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, अस्तित्ववाद, गांधीवाद और समाजवाद आदि जो देश-दुनिया के ज्ञान और दर्शन की प्रमुख धाराएं थी, इसका प्रभाव बुद्धिजीवियों पर पड़ना स्वाभाविक था। नलिन विलोचन पर भी इन विचारों का प्रभाव पड़ा। नलिन विलोचन ने संस्कृत की शास्त्रीय आलोचना और पश्चिम की आलोचना पद्धति का गहन अध्ययन किया था। लेकिन उन्होंने अनुसरण करने की बजाय अपने लिए नई आलोचनात्मक पद्धति की खोज की है। वे हिन्दी के पहले आधुनिक आलोचक थे। उन्हें रूपवादी आलोचक भी कहा जाता है। इस कारण उनकी रचना और आलोचना में विलक्षण नवीनता और मौलिकता प्रकट हुई है। इस आलोचना के संदर्भ में प्रो. गोपेश्वर सिंह लिखते है-"इलियट, एजरा पाउण्ड आदि को उन्होंने ठीक से पढ़ा था। भारतीय और पश्चिमी साहित्य के उनके गहरे अध्ययन और उन सबके सार्थक उपयोग को देखते हुए ठीक ही मैनेजर पाण्डेय उन्हें 'सुपड़ आलोचक' कहते है।"[2]

नलिन विलोचन शर्मा की आलोचनात्मक कसौटी के मुख्य आधार हैं-'मुक्ति और स्वच्छंदता' इन दोनों में भी मुक्ति को वे मुख्य आलोचनात्मक कसौटी मानते हैं। उनके अनुसार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और बर्नाड शॉ में स्वच्छंदता के गुण हैं, जबकि निराला और वाल्ट व्हिटमैन में मुक्ति की रचना में विषयगत नवीनता को वे रचना की मुक्ति की अपनी आलोचनात्मक कसौटी पर वे निराला को आधुनिक युग का सबसे बड़ा कवि और प्रेमचन्द को आधुनिक युग का सबसे बड़ा कथाकार घोषित करते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी इस संदर्भ में लिखते हैं कि -" रचना को शास्त्र से जोड़ने वाली प्रक्रिया के रूप में आलोचना का विकास आधुनिक काल में ही होता। यह आलोचना काव्य का शास्त्र नहीं, काव्य का जीवन है जो बार-बार रचा जाता है।"[3] जैनेन्द्र, अज्ञेय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह 'दिनकर', और त्रिलोचन आदि कथाकारों पर भी नलिन विलोचन शर्मा ने महत्त्वपूर्ण आलोचना लिखी या इन कवियों पर समीक्षा लिखी है। वे साहित्य में विषयवस्तु को उतना महत्त्व नहीं देते थे, जितना उसके शिल्प और स्थापत्य को। प्रगतिवादी आलोचकों ने उन्हें रूपवादी और कलावादी आलोचक कहा भी है।

निष्कर्षत: रूप से कहा जा सकता है कि नलिन विलोचन शर्मा का साहित्यिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे हिन्दी में 'नकेनवाद' के त्रेयी प्रवर्तकों में से एक थे। नलिन विलोचन संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी के ज्ञाता थे, साथ ही फ्रेंच एवं जर्मन भाषा के अच्छे जानकार भी। वे अपने आलोचनात्मक लेखों, साहित्यिक टिप्पणियों और पुस्तक समीक्षाओं के जरिये वे हिन्दी साहित्य को नए ढंग से आंदोलित करने में सफल हुए। वे कविता, कहानी, आलोचना, निबंध, जीवनी आदि विधाओं में भरपूर लेखन कार्य किये। कहानीकार के रूप में भी नलिन विलोचन की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है। यौन मनोविज्ञान पर उन्होंने अनेक कहानियां लिखी हैं। उनकी कविताओं में वैज्ञानिकता और बौद्धिकता की प्रधानता है, जो उस समय बिल्कुल नई थी। मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, अस्तित्ववाद, गांधीवाद और समाजवाद आदि जो देश-दुनिया के ज्ञान और

दर्शन की प्रमुख धाराएं थी इसका प्रभाव नलिन विलोचन पर भी पड़ा। वे रामचन्द्र शुक्ल के बाद और हजारीप्रसाद द्विवेदी से पहले आधुनिक आलोचक थे। इसी कारण उनकी रचना और आलोचना में विलक्षण नवीनता और मौलिकता प्रकट हुई। नलिन विलोचन शर्मा हिन्दी आलोचना के विरल ही नहीं विलक्षण पुरूष थे।

संदर्भ:-

1. कथांतर (भूमिका)- सं. निशांतकेतु, बी.टी.सी. पटना, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ-8
2. साहित्य तत्त्व और आलोचना-आ. नलिन विलोचन शर्मा, प्रकाशक-अनुपम प्रकाशन, पटना-4, प्रथम संस्करण-1995, पृष्ठ-209
3. वही, पृष्ठ-210
4. नलिन विलोचन शर्मा: संकलित निबंध- गोपेश्वर सिंह, प्रकाशक - नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली-110070, प्रथम संस्करण-2010, (भूमिका), पृष्ठ-19
5. हिन्दी आलोचना का विकास-मधुरेश, प्रकाशक-लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ-140
6. संपा.-विनोद तिवारी, पक्षधर, वर्ष:-10,अंक:-19, (जुलाई-दिसम्बर-2015), नलिन विलोचन शर्मा, लेख-'हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास' प्रकाशन-मुद्रक विनोद तिवारी, पंचशील गार्डेन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ-138
7. संपा. नम्रता कुमार,गगनांचल, वर्ष-39, अंक-6, (नवम्बर-दिसम्बर, 2016); प्रो. गोपेश्वर सिंह, लेख-'नलिन विलोचन शर्मा'; प्रकाशक- भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली; पृष्ठ-53-54
8. नलिन विलोचन शर्मा: संकलित निबंध- गोपेश्वर सिंह, प्रकाशक - नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली-110070, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-10
9. संपा. नम्रता कुमार, गगनांचल, वर्ष-39, अंक-6, (नवम्बर-दिसम्बर, 2016); प्रो. गोपेश्वर सिंह, लेख-'नलिन विलोचन शर्मा'; प्रकाशक- भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली; पृष्ठ-52
10. संपा. अशोक मिश्र, बहुवचन, अंक-52, (जनवरी-मार्च, 2017); साधना अग्रवाल, लेख-'नलिन विलोचन शर्मा: एक विरल व्यक्तित्व' प्रकाशक-महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र), पृष्ठ-52
11. नलिन विलोचन शर्मा: संकलित निबंध- गोपेश्वर सिंह, प्रकाशक - नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया प्रकाशन, नई दिल्ली-110070, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-12
12. वही, पृष्ठ-11
13. आचार्य श्री नलिन विलोचन शर्मा की आलोचना साधना-सं. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, प्रकाशक-अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-110030, प्रथम संस्करण-2003, पृष्ठ-29

डॉ. ब्रजेश वर्मा का साहित्यिक सफर

*डॉ. कुमारी उर्वशी

आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व नारी सशक्तीकरण का प्रतिमान बनती नादिरा बेगम की कहानी कहता है यह उपन्यास "नादिरा बेगम 1777"। नादिरा बेगम बिहार में रहने वाली एक मुस्लिम महिला थी जिसकी शादी शाहबाज बेग नाम के एक अफगानी व्यक्ति से हुई थी। शाहबाज बेग काबुल से भारत, ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में काम करने आया था। भारत में उसने काफी संपत्ति अर्जित की किंतु उसे कोई औलाद नहीं थी। औलाद की कमी पूरी करने के लिए शाहबाज ने काबुल से अपने भतीजे बहादुर बेग को पटना बुलाया और वह उसे अपना वारिस बनाना चाहता था। बहादुर बेग को वारिस बनाने के पहले ही शाहबाज की मृत्यु हो गई और बहादुर बेग ने षड्यंत्र करके नादिरा बेगम की संपत्ति हड़प लेनी चाही जिसके लिए उसे घर से भी निकाल दिया। जबकि उसे दत्तक पुत्र के रूप में कानूनी मान्यता भी नहीं मिली थी। हालांकि इस बात का अंदेशा नादिरा बेगम को पहले ही था कि कहीं कोई बखेड़ा न खड़ा हो जाए:-

> डॉ. ब्रजेश वर्मा पत्रकारिता के क्षेत्र में 1987 से बिहार और झारखण्ड में सक्रिय रहे हैं साथ ही हिंदुस्तान टाइम्स के साथ मेरे दिन, प्रथम बिहारीः दीप नारायण सिंह (1875-1935), राष्ट्रवादी मुसलमान (1885-1934), मुस्लिम सियासत, हमसाया (उपन्यास), राजमहल और बिहार-1911
> उपन्यास 'राज्यश्री', नादिरा बेगम 1777, सरकार बाबू, जैसी खूबसूरत रचनाओं के रचनाकार भी रहे हैं।

"नादिरा ने पान की तश्तरी को शाहबाज की तरह बढ़ाते हुए कहा आप एक बार फिर से अपने मन में विचार कर लीजिए। माना कि हमें औलाद नसीब नहीं फिर भी जीवन में सुकून सबसे जरूरी है। कहीं ऐसा ना हो कि आगे कोई बखेड़ा खड़ा हो जाए। यदि कुछ भी अनहोनी हुई जिससे आपको कोई तकलीफ होती है तो मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊंगी।" शाहबाज के एक मित्र को भी यह जल्दबाजी (बहादुर बेग को दत्तक पुत्र बनाने की) कुछ खास पसंद नहीं थी। "दीवान बहुत खुश नहीं था फिर भी उसने अपने चेहरे पर मुस्कान लाते हुए कहा शाहबाज दोस्त जिंदगी को अब आराम से जियो बहुत भागदौड़ कर ली तुमने। मेरी सलाह यह है कि बहादुर को अपना वारिस बनाने के पहले मन में थोड़ा और विचार कर लो। इतना कहते हुए दीवान मुड़ा और तेजी से अपनी बग्गी की तरफ चला गया। कोचवान उसका इंतजार कर रहा था।

शाहबाज इसका अर्थ समझ गया था। यह बहादुर की ओर एक इशारा था।दीवान के भाव से उसे लगा कि उसने बहादुर को पसंद नहीं किया।इस ठंड में भी उसके माथे पर पसीने की कुछ लकीरें उभर आईं। बग्गी आगे की ओर तेजी से बढ़ी तो ठंडी हवाएं उसके चेहरे पर आने लगी। उसका मन उदास था।" शाहबाज तय नहीं कर पा रहा था कि बहादुर को अपनाने का फैसला सही था या गलत।अब इस पर कुछ विचार करना भी वह नहीं चाहता था।उसे अपने भतीजे से लगाव था। खून का रिश्ता जो था।वह अपनी कमाई गई दौलत किसी ऐरे गैरे में नहीं बांट सकता था।वह दौलत जिसके लिए उसने बेहद मेहनत की थी, अपना वतन तक छोड़ आया था, एक पराए देश में रह रहा था।इसलिए वह चाहता था कि उसका वारिस वही हो जिससे उसका खून का रिश्ता था।

शाहबाज ने बहादुर को अपनाया था अपना समझकर जबकि बहादुर प्रारंभ में ही उसके साथ इसीलिए आता है कि वह संपत्ति के लालच में पड़ गया था। उसकी

*विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, रांची विमेंस कॉलेज, रांची, झारखंड, पिन कोड 834001, मोबाइल 9535 4365
ईमेल:- urvashiashutosh@gmail.com

साजिशें संपत्ति को हड़पने के लिए बदस्तूर जारी रहती है और 1 दिन घूस देकर वह काजी को घर ले आता है:- "अब नादिरा समझ चुकी थी कि उसके साथ अनहोनी हो चुकी है ।थक कर उसने इस बात की इजाजत मांगी कि बेशक वह किसी दरगाह में चली जाएगी और अपना सारा जीवन वही गुजार देगी किंतु उसे अपने कुछ कपड़े साथ ले जाने की इजाजत दी जाए। उसकी गुजारिश मान ली गई। वह तेजी से ऊपर अपने कमरे में गई उसने अपने लिए कुछ कपड़े चुने और इसी बहाने उसने कुछ जरूरी कागजात को अपने कपड़े में छुपा लिया । वह जान गई थी कि उसे अब एक लंबी अदालती लड़ाई लड़नी होगी जिसमें उसका साथ कोई भी देने वाला नहीं था उसका स्त्री मन इस बात के लिए और दृढ़ हो चुका था कि चाहे जो भी तकलीफ झेलनी पड़े वह इस बिन बुलाए समस्या से कभी भी पीछे नहीं हटेगी। उसने अपने अपमान के घूंट को पीकर यह बात मन ही मन तय कर लिया था कि अब आगे बढ़ेगी । उसे एक प्रकार से जबरन उसकी हवेली से निकाल दिया गया था । जहां वर्षों पहले वह अपने शौहर शाहबाज के साथ अपने अरमानों को लेकर आई थी । उसका शौहर एक मेहनती इंसान था ।उसने दुनिया देखी थी ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में शामिल होकर उसने नाम कमाया और फिर कंपनी का मुलाजिम बनकर उसने दौलत कमाई थी ।नादिरा के पास अब कुछ भी नहीं था ।हवेली से बाहर निकलते वक्त वह सोच रही थी काश उस दिन वह अपने पति को इस बात के लिए रोक लेती कि उसे कोई दत्तक पुत्र नहीं चाहिए।"

अदालत में कानूनी अधिकारियों द्वारा बेहद अनियमितता बरती गई । हिबानामा और इकरारनामा को फर्जी बता दिया गया। तथ्यों की गहराई में गए बिना अदालत ने काजी और मुफ्ती को नादिरा बेगम की सारी जायदाद जब्त करने का आदेश दे दिया। यहां तक कि उसके घर को सील करने का भी आदेश दिया गया ।शाहबाज बेग की संपत्ति को चार हिस्सों में बांटने का आदेश देते हुए अदालत ने कहा कि तीन हिस्से बहादुर के होंगे क्योंकि वह उसका भारतीय पिता था। एक हिस्सा नादिरा बेगम को देने का आदेश दिया गया। पटना के इस दीवानी अदालत के फैसले को नादिरा ने स्वीकार नहीं किया हालांकि वह बेघर हो गई थी लेकिन धीरज से काम लिया और उसने अपना घर उसी दरगाह को बना लिया। अपने पति के मित्र दीवान मनोहर लाल की मदद से वह वारेन हेस्टिंग्स को पत्र लिखती है लेकिन उसके लिए नादिरा बेगम जैसी आम महिला के ख़त की तरफ देखने का कोई समय नहीं था । नादिरा बेगम न्याय का इंतजार करते करते थक जाती है। इसके बाद वह फैजान की मदद से जो कि उसके पति का एक वफादार था , कोलकाता के सदर दीवानी अदालत में बहादुर के खिलाफ मुकदमा दायर करती है।

कोलकाता के सदर दीवानी अदालत अथवा सुप्रीम कोर्ट की सीमा बंगाल के सभी ब्रिटिश विषयों के अलावा वैसे कर्मचारी जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ जुड़े थे तक जाती थी। यह सेल्फी वाली अदालत के मुकदमों के अलावा उन मुकदमों को भी सुन सकता था जिसका मूल्य ₹500 से अधिक का हो इसके लिए अपील करने वाले को मूल्य का 5% राशि अदालत को फीस के रूप में देनी होती थी। जब अदालत खुली तब नादिरा बेगम अपने सहयोगी लाला नंद किशोर और अन्य लोगों के साथ सदर दीवानी अदालत पहुंची। नादिरा बेगम ने पटना दीवानी अदालत के द्वारा उसके खिलाफ दिए गए फैसले के विरोध में कोलकाता सदर दीवानी अदालत में जो मुकदमा दायर किया उसका मूल्य ₹600000 था। मुख्य जज ने उसकी अपील को देखते ही आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया जाहिर की और कहा कि इस अपील को मेरा कोर्ट स्वीकार करता है यह अपने आप में महत्वपूर्ण मुकदमा है जो एक बड़ी राशि से जुड़ा होने के अलावा हिंदुस्तान की किसी एक ऐसी महिला से भी जुड़ा है जिसे लगता है कि पटना की अदालत ने न्याय नहीं किया है।

जब कोलकाता सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी नोटिस बहादुर तथा काजी और मुफ्ती को पटना में मिले तो उनके होश उड़ गए । बेशुमार धन हाथ लग जाने के बाद से बहादुर बेलगाम जिंदगी जी रहा था । उसने घूस देकर पटना की

अदालत का फैसला अपने पक्ष में करा लिया था। कोलकाता की अदालत के द्वारा नोटिस जारी करने के बाद उन सब को पकड़कर कोलकाता कोर्ट में हाजिर किया गया । यह एक अनोखा मुकदमा जो एक महिला ने दायर किया था सबके लिए देखने की चीज था। सुनवाई लंबी चली और अंत में फैसला आया कि पटना की दीवानी अदालत ने न्यायिक प्रक्रिया का उल्लंघन किया। नादिरा बेगम के मुकदमे के मामले में अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया और अदालत नादिरा बेगम को ₹300000 दिलाने का हुक्म देती है । क्षतिपूर्ति के लिए 9208 रुपए अतिरिक्त देने का हुक्म भी जारी किया गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के न्याय प्रणाली के इतिहास में नादिरा बेगम का मुकदमा अद्भुत माना जाता है। कानून के छात्रों को इस मुकदमे के बारे में एक उदाहरण के रूप में पढ़ाया जाता है कि निचली अदालत के गलत फैसले को कोलकाता सुप्रीम कोर्ट ने कैसे खारिज करते हुए एक महिला को न्याय दिलाया। नादिरा बेगम वह पहली महिला थी जिसने कोलकाता सुप्रीम कोर्ट में अपने हक की लड़ाई के लिए मुकदमा दायर किया था ।यह घटना पटना केस 1777 के नाम से भी जानी जाती है।

आज संपत्ति में हिंदू महिलाओं को अधिकार देने वाले क़ानून पर सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले से क्या बदला है? ये एक ऐसा सवाल है जिससे ज़्यादातर महिलाएं जूझ रही हैं। क्योंकि भारत में महिलाओं को पिता की संपत्ति में अधिकार की माँग करने के लिए क़ानून से पहले एक लंबी सामाजिक जंग को जीतना पड़ता है। वहीं परिवार की संपत्ति में पति-पत्नी दोनों की बराबर की साझेदारी हो, इसके लिए विभिन्न महिला संगठनों ने समय-समय पर एक कानून बनाने की मांग की है। भारतीय समाज में विवाह के बाद पति-पत्नी एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं। वे मकान, गाड़ी, फर्नीचर आदि जो भी चीज खरीदते हैं, उस पर दोनों की बराबर की साझेदारी होनी चाहिए। साथ ही पति से तलाक लेकर या बिना तलाक लिए अलग रह रही महिलाओं को गुजारा भत्ता उनके उसी रहन-सहन को बनाए रखते हुए मिलना चाहिए, जो पति के साथ रहते हुए था। भारत में अकेली रह रही महिलाओं के आर्थिक अधिकार और जायदाद में मालिकाना हक विषय पर चर्चा होती रही है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होने वाली एकल महिलाओं को पति से गुजारा भत्ता पाने के लिए काफी जद्दोहद का सामना करना पड़ता है। सालों तक मुकदमा चलने के बाद नाम मात्र का गुजारा भत्ता मिलता है या अक्सर वो भी गोल हो जाता है। प्रसिद्ध वकील कीर्ति सिंह ने कहा कि अलग रहने वाली महिला को पति की आय के आधार पर तुरंत गुजारा भत्ता दिया जाना चाहिए। बाद में परिवार के रहन-सहन का मूल्यांकन कर उसे तय किया जा सकता है। एकल महिलाओं के साथ-साथ विधवाओं को भी इस श्रेणी में शामिल करना चाहिए। जहां तक गुजारा भत्ता की बात है तो इसके लिए कानून में संशोधन होना जरूरी है। महिला सेल का जिक्र करते हुए कहना चाहूंगी कि ज्यादातर सेल में पुलिस का व्यवहार महिला-विरोधी है। वे महिलाओं को ही दोष देते हैं और समझौता करने का दबाव बनाते हैं। स्त्री-धन दिलाना भी जरूरी नहीं समझते और न ही इस बारे में कभी बात करते हैं। जबकि हमारी संस्कृति में पुरुष के बिना औरत को अधूरा माना जाता है।

वहीं महिलाएं जब कुछ समय पहले सामाजिक रिश्तों को ताक पर रखकर अपने पिता की संपत्ति में हिस्सेदारी की माँग करती भी थीं तो हिंदू उत्तराधिकार संशोधन क़ानून 2005 कई महिलाओं के सामने अड़चन पैदा किया करता था।वजह ये थी कि क़ानून पास होने के बाद कई स्तर पर ये सवाल खड़ा हुआ कि क्या ये क़ानून रेट्रोस्पेक्टिवली यानि बीते हुए समय से लागू होगा?इस वजह से बीते 16 सालों में महिलाओं की एक बड़ी संख्या पैतृक संपत्ति में अपना अधिकार माँगने से वंचित रह गई।कई महिलाएं कोर्ट तक पहुंची लेकिन उन्हें निराशा हाथ लगी। ऐसे में अब तक इस क़ानून को लेकर एक भ्रम की स्थिति बनी हुई थी जो कि सुप्रीम कोर्ट की तीन सदस्यीय पीठ के फ़ैसले के बाद ख़त्म होती दिख रही है।साल 2005 में हिंदू उत्तराधिकार क़ानून में संशोधन करके ये व्यवस्था की गई थी कि महिलाओं

को पिता की संपत्ति में बराबर का अधिकार मिलना चाहिए।

लेकिन जब महिलाओं की ओर से अधिकारों की माँग की गई तो ये मामले कोर्ट पहुंचे।और कोर्ट पहुंचकर भी महिलाओं के हक़ में फ़ैसले नहीं हुए। हाई कोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट ने इस मसले पर फैसले दिए और इन फ़ैसलों में काफ़ी विरोधाभास देखा गया। साल 2015 में प्रकाश बनाम फूलवती केस में दो जजों की एक बेंच ने स्पष्ट रूप से कहा कि अगर पिता की मौत हिंदू उत्तराधिकार संशोधन क़ानून के 9 सितंबर, 2005 को पास होने से पहले हो गई है तो बेटी को पिता की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं मिलेगा। लेकिन इसके बाद साल 2018 में दो जजों की एक अन्य बेंच ने अपने फैसले में कहा कि भले ही पिता की मौत क़ानून लागू होने के बाद हुई हो तब भी बेटी को पिता की संपत्ति में बराबर का अधिकार मिलना चाहिए। अब कोर्ट ने स्पष्ट कर दिया है कि अब महिलाओं को वही हिस्सेदारी हासिल होगी जितनी उसे उस स्थिति में होती अगर वह एक लड़के के रूप में जन्म लेती। यानी लड़के और लड़की को पिता की संपत्ति में बराबर का उत्तराधिकार मिलेगा चाहें उसके पिता की मौत कभी भी हुई हो।

आज जब 2021 में भारतीय महिलाओं की संपत्ति के अधिकार को लेकर यह हालत है तो हम अंदाजा लगा सकते हैं कि 1777 में नादिरा बेगम किन मुश्किलों से लड़ी होंगी। महिला सशक्तिकरण का संबंध महिलाओ के तरक्की और पुरुष प्रधान समाज में उन्हें बराबरी का स्थान दिलाने से है। विश्व भर में महिलाओं और पुरुषो की आबादी समान होते हुए भी उन्हे बराबर का सम्मान नही मिलता और यह समस्या सिर्फ भारत में ही नही अपितु पूरे विश्व में व्याप्त है। महिला सशक्तिकरण के अंतर्गत शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना और सामाजिक सम्मान जैसे प्रमुख मुद्दे आते है, जिन पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

सवाल ही सारे ग़लत थे, तो मैं जबाव क्या देती।
आज मेरी आवाज़ को, अपने कदमों तले दबा दिया।
हम वो हैं जो रुख मोड़ दे आँधी का, तुम जरा अधिकार तो देते ॥

महिला सशक्तिकरण का मतलब सही मायने में महिलाओं को समाज में बराबरी का स्थान देना है। क्योंकि यदि समानता नहीं है तो उस परिवार, समाज व देश का विकास नही हो सकता है।

डॉ ब्रजेश वर्मा का उपन्यास 'राज्यश्री' प्राचीन भारत के प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के जीवन संघर्ष पर आधारित है। राज्यश्री अचानक राजमहल से जंगल में आ जाती है लेकिन अपना संघर्ष नहीं छोड़ती। अपने कथानक में यह उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी अपने अंत को लेकर बेहद क्रांतिकारी है । जब राज्यश्री अपने राज्य की चिंता करती है जबकि उसी की मां का चरित्र एक आम महिला की तरह दर्शाया गया है। राज्यश्री पुष्यभूति वंश के प्रतापी राजा प्रभाकर वर्धन की पुत्री थी जिसका विवाह कन्नौज के मौखरि वंश के राजा ग्रहवर्मा से हुआ था । मालवा के राजा देवगुप्त और गौढ़ (बंगाल) नरेश शशांक ने मिलकर कन्नौज पर आक्रमण किया और ग्रहवर्मा की हत्या कर दी। उन्होंने राज्यश्री को भी बंदी बना लिया तथा कारागार में डाल दिया ।किन्तु राज्यश्री कारागार से कन्नौज के एक कुल पुत्र गुप्त की सहायता से निकलने में सफल हुई।वह विंध्याचल के वन में चली गयी जहाँ उसने काफी समय तक अपने छोटे भाई हर्ष के आने की प्रतीक्षा की (क्योंकि उसके माता पिता की मृत्यु हो चुकी थी। और बड़े भाई युवराज राज्यवर्धन राज्यश्री के मुक्ति के लिए राजा देव गुप्त से लड़ने आए मगर छल से उसे शशांक ने मार डाला, इसके बाद उसका एकमात्र अवलंब हर्षवर्धन ही थे) लेकिन जब प्रतीक्षा की इंतहा हो गई तब राज्यश्री ने स्वयं को अग्नि में समर्पित करने का निर्णय किया। तब एक बौद्ध भिक्षु की सहायता से हर्षवर्धन ने अपनी बहन की रक्षा की और उसे कन्नौज वापस लाया इन्हीं घटनाओं को इस उपन्यास में दर्शाया गया है।

राज्यश्री के विवाह समारोह का उपन्यासकार ने इस तरह वर्णन किया है :- राज्यश्री मात्र 12 वर्ष की थी। किंतु उसकी परिपक्वता के सभी कायल थे।" वह अपनी माता के साथ अपने कुल के रीति -रिवाजों को पूरी तरह से सीख चुकी थी, अपने पिता के मूल्यवान कातों में अपना विचार रख सकती थी और अपने दोनों प्यारे भाइयों के साथ तर्क-वितर्क भी कर सकती थी। वह अपने गुरुओं द्वारा पढ़ाए गए, पाठ, नृत्य और संगीत में भी प्रवीणता हासिल कर चुकी थी और अंततः । ह कभी-कभी राजनीतिक मामलों में भी अपने पिता राजाधिराज प्रभाकरवर्दन से विचार-विमर्श कर लिया करती थी। जब से उसकी शादी की बात तय हुई थी तभी से अधिकांश समय तक वह अपने महल की दासियों और अपनी सहेलियों के साथ घिरी रहती। महल में सारा दिन । आवाजाही का माहौल रहता। सगे -सम्बन्धियों का आना शुरू हो चुका और दोनों राजकुमारों को सारा समय व्यवस्था को ठीक करने में बिताना पड़ता।

राज्यश्री के विवाह की तिथि के निकट आते ही पूरा राजकुल व्यस्त हो उठा था। राजा का आदेश था कि जो भी व्यक्ति इस विवाह में शामिल होने के लिए आएं उनका स्वागत कोमल कपड़े में लिपटे सुगन्धित इत्र से किया जाए और उन्हें पान का बीड़ा अवश्य दिया जाए। महल में घूमते दास दासियों को इस काम की जिम्मेदारी दी गयी थी। महलों को सुसज्जित रूप से सजाने के लिए देश विदेश से शिल्पियों को आमंत्रित किया गया था। राजा ने बहुत सारे लोगों को गाँव - देहातों की ओर रवाना कर दिया था जो वहां से ताजे फलों और सब्जियों को ला रहे थे।

पड़ोस के जो भी राजा आते वे अपने साथ कीमती उपहार ला रहे थे जिन्हें राजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन के पास पहुंचाया जा रहा था। राजा के विशेष प्रिय लोगों को आदरपूर्वक ठहराने की व्यवस्था राजकुल के रिश्तेदारों की थी। ढोल और बाजे बजाने वालों को पीने के लिए शराब दे दी गयी थी जो नशे में मग्न हो जोर-जोर से नृत्य करते हुए ढोल पीट रहे ।"

इस उपन्यास से हिंदुस्तान में चलने वाली एक और प्रथा का भी पता चलता है जिसमें हिंदू स्त्री पति को मरणासन्न जानकर आत्मदाह कर लेती है ताकि वह विधवा हो कर ना मरे। इस प्रसंग का बेहद करुणा पूर्ण चित्रण हुआ है। हर्षवर्धन चाहते हैं कि बड़ा भाई जो युद्ध पर गया है वह वापस आ जाए राज्यश्री जो अभी-अभी विवाह करके ससुराल गई है वह वापस आ जाए तब तक मां अपना निर्णय थामें रखें। लेकिन मां नहीं मानती:-

"नहीं पुत्र, राज्यश्री नहीं आ पाएगी। अभी तो उसका विवाह किया है। अभी तो उसकी हाथों के पवित्र रंग भी नहीं उतरे होंगे। अभी वह अपने घर-परिवार को सजाने-संवारने में लगी होगी। अभी तो उसने नए सुख । को देखना ही शुरू किया होगा। मुझे इस स्थिति में देख वह सहन नहीं कर पाएगी, यशोवती ने जिद की। माँ की जिद के आगे हर्ष ने अपने मन पर पत्थर रख लिया और वह अपनी माता के कमरे से बाहर नहीं निकल पाए। उन्होंने किसी भी सन्देश वाहक को नहीं पुकारा ताकि राज्यश्री को खबर दी जा सके।

महादेवी यशोवती ने हर्ष को अपने से दूर किया और अपनी सेविकाओं की ओर देखा। उनकी सभी सेविकाएँ समझ गयीं कि महारानी अब पति के जिंदा रहते ही सती होना चाहती हैं। वह जोर-जोर से विलाप करने लगीं। रानी ने फिर उनकी ओर देखा। अब कोई उपाय न देखकर उनकी सेविकाओं ने उन्हें अपने साथ लिया और सबसे पहले उनके मुख धुलवाया यशोवाती के मुख को धुलवाने के लिए चांदी का एक वर्तन को लाया गया जो राजहंस की आकृति वाला था। यशोवाती ने अपने हाथों में जल लिया और अपने ऊपर फेंकते हुए चुपचाप अपने अन्तःपुर से बाहर की तरफ निकलने लगी। हर्ष फिर रो पड़े। उन्होंने एक बार फिर महारानी को मनाने की कोशिश करते हुए कहा, भाँ, आपसे आग्रह है कि इस भयंकर प्रतिज्ञा को त्यागकर फिर से हम सभी के जीवन में लोट जाओ। यह राजमहल आपकी इस प्रतिज्ञा से

उत्पन्न दुखों को सहन नहीं कर पाएगा। यह वीरान हो जाएगा। महादेवी यशोवती की आँखें आब लाल हो चुकी थीं। अब उसमें आंसुओं के एक भी बूंद नहीं बचे थे। उनकी आंखें शून्य की ओर निहार रही थी।"

हर्षवर्धन जिनकी उम्र बहुत कम है इसी उम्र में उन्होंने अपने माता पिता बड़े भाई जमाता सब को खो दिया है वह अपनी बहन को तलाश रहे हैं:-
"भंडी को विदा करने के बाद हर्षवर्द्धन सारा दिन यही सोचते रहे कि किस प्रकार वे अपनी बहन की रक्षा करें। उनके पास कोई भी ऐसा साधन सिवा इस बात को छोड़कर नहीं था कि भंडी ने उनसे यह कहा था कि उसने सुना था कि राज्यश्री विंध्याटवी के वन में कहीं चली गयी थी। भंडी थानेश्वर साम्राज्य का एक बहुत ही विश्वासपात्र मंत्री था। उसमें सेना के प्रतिनिधित्व करने की भी क्षमता थी। उसके पास सुरक्षा की जिम्मेदारियों के अलावा नीतिगत बातों की भी जिम्मेदारी थी जिसमें उसे उन सूचनाओं को भी तैयार करना होता था ताकि राजा को पता चल सके कि उसके साम्राज्य में क्या हो रहा है। हर्ष को भंडी पर पूरा भरोसा था कि वह सैनिक अभियान से गौड़ नरेश को कन्नौज से पीछे धकेल देगा। हर्ष ने इस अभियान का नेतृत्व खुद शुरू किया था, किन्तु जैसे ही उन्हें पता चला कि उनकी दुलारी बहन राज्यश्री अभी भी जीवित है उन्होंने तुरंत सैनिक अभियान को त्याग कर राज्यश्री की खोज में अपनी ताकत लगा दी।"

एक बौद्ध भिक्षु की सहायता से जब राज्यश्री मिलती है उस प्रसंग का चित्रण बेहद शानदार है।
"वह सिर्फ इतना भर ही कह सकी, "भ्राता" और वह मूर्छित । हो गयी। भ्राता हर्ष ने उसे सहारा दिया।

इस करुण दृश्य को देख सभी भिक्षुकों की आँखें गीली हो गयीं। फिर दिवाकर मित्र ने भिक्षुकों की ओर देखा और राज्यश्री को होश में लाने का इशारा किया। रो रही सभी स्त्रियाँ अब शांत हो चुकी थी। भाई-बहन के इस प्रेम और बिछड़कर फिर एक दूसरे से मिल जाने की घटना ने उन स्त्रियों के मन को एक क्षण के लिए ठहरा दिया था। ऐसा उदाहरण उन्होंने न कभी देखा और न कभी सुना था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उनके विलाप को ईश्वर ने सुन लिया था। कुछ भिक्षुक पहाड़ी से गिर रहे झरने से बनी जंगल की पतली से नदी की ओर दौड़े और पत्ते में भरकर जल लाया। फिर राज्यश्री को होश में लाया गया।

हर्ष जंगल की जमीन पर ही बैठे थे। राज्यश्री जब मूर्छित अवस्था से वापस आयी तब उसने सहसा अपने भाई को सामने पाकर फिर से रोना शुरू किया। दृश्य इतना करुण था कि हर्ष भी मुक्त कंठ से रोने लगे। फिर हर्ष ने अपने आंसुओं को रोका और राज्यश्री के चेहरे पर अपने दोनों हाथों के पंजों को स्नेह से रखते हुए कहा,

बहिन, अब धीरज रखो। अपने को संभालो। अब सब कुशल है। अब में आ गया हूँ। ईश्वर ने कुछ मुहूर्त का तुम्हें समय देकर पुष्यभूति वंश पर बड़ा उपकार किया है। हम सभी ने जो खोया उसमें तुम्हारे मिल जाने के बाद से दुःख के घाव भरने लगेंगे।"

और उपन्यास के अंत में स्त्री सशक्तीकरण की पुरजोर कोशिश की गई है:-
"चारों ओर शांति छाई थी। सभी का मन शांत हो चुका था। राज्यश्री को ऐसा प्रतीत हुआ कि एक तूफ़ान आया और फिर समय के साथ गुजर गया। उसने जो खोया वह उसके जीवन का सदा पीछा करने वाली घटनाएँ थी, किन्तु हर्षवर्द्धन और बौद्ध गुरु दिवाकर मित्र के समझाने बुझाने के बाद वह अब बहुत हद तक उस पीड़ा से दूर हो चुकी थी जो उसे अकस्मात मिला था। अब उसके सामने एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी वापस कन्नौज लौटकर अपनी प्रजा को फिर से सुरक्षित रखना और उस शासन को फिर से स्थापित करना जिसे मौखरि वंश के कई प्रतापी राजाओं ने अपने खून से सींचा था। किन्तु अब इस वंश का कोई वारिस नहीं था।"

नम्या प्रेस, वर्धन हाउस, अंसारी रोड ,दरयागंज, दिल्ली के प्रकाशन से 2020 में प्रकाशित डॉ ब्रजेश वर्मा की पुस्तक है "बिहार 1911"। पुस्तक के नाम में ही आकर्षण है। हर बिहारी को अपने क्षेत्र विशेष के अस्तित्व और पहचान को लेकर मन में सवाल होते ही हैं । बिहार भारत के पूर्वी भाग में स्थित एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक राज्य है और इसकी राजधानी पटना है। बिहार नाम का प्रादुर्भाव बौद्ध संन्यासियों के ठहरने के स्थान विहार शब्द से हुआ, जिसे विहार के स्थान पर इसके अपभ्रंश रूप बिहार से संबोधित किया जाता है।

इस किताब से काफी सवाल जवाब लेकर आते हैं। शुरुआत सच्चिदानंद सिन्हा के प्रसंग से हुआ है। लंदन में वह पढ़ रहे हैं और नार्थ बुक इंडियन क्लब में अपने इंडियन और अंग्रेज मित्रों के साथ बैठकर राजनीतिक बहस चल रही थी जिसमें भारत का मुद्दा भी आया। उनके किसी भारतीय मित्र ने पूछा भारत में तुम कहां के रहने वाले हो ? सच्चिदानंद सिन्हा ने गर्व से उत्तर दिया 'बिहार'. इस बात पर उनके मित्र ने संदेह से पूछा और यह बिहार कहां है ? भारत के नक्शे में किस जगह पर उपस्थित है? बहस इतनी बढ़ी कि कुछ मित्रों ने क्लब से भारत का नक्शा निकाला और उसे टेबल पर रखते हुए बिहार को खोजने लगे। लेकिन उस भौगोलिक नक्शे में बिहार का कोई अता-पता नहीं था। दरअसल उस वक्त बिहार बंगाल का एक हिस्सा मात्र था। यहां के कुछ शहरों के नाम लिखे थे पर बिहार जैसा कुछ नहीं था । इस प्रश्न के बाद सच्चिदानंद सिन्हा अपने मित्रों के बीच हंसी का पात्र बन गए और यह घटना उनके दिल पर जा लगी। उन्होंने भारी मन से अपने मित्रों से कहा कि बिना पहचान का इंसान अस्तित्व हीन होता है यदि भारत के नक्शे में बिहार नाम का कोई स्थान नहीं है तो अब बनेगा ।1892 में उनकी पढ़ाई पूरी हो गई और वह वापस आने की तैयारी करने लगे। भारत आकर उन्होंने एक मुहिम शुरू की बिहार को अलग राज्य बनाने की और इसके तहत उन्होंने उन व्यक्तित्वो की ओर नजर दौड़ाई जो इस आंदोलन में आगे आ सकते थे। हरिवंश सहाय, सैयद सरफुद्दीन, शिव शंकर सहाय, राय बहादुर परमेश्वर नारायण मेहता, शेर अली इमाम हसन इमाम मजहरूल हक नंदकिशोर लाल, महेश नारायण, विशेश्वर सिंह जैसे अग्रदूतों ने उनका साथ दिया।

'द बिहार टाइम्स' साप्ताहिक अखबार जिसके संपादक महेश नारायण थे की स्थापना बिहार में पत्रकारिता की दुनिया में एक नई शुरुआत थी। जिसने पढ़े-लिखे आधुनिक सोच वाले बिहारी युवाओं को उत्साह से भरने का कार्य किया। जो दिल से बिहार को एक अलग प्रांत के रूप में देखना चाहते थे ।जहां हिंदी बोलने वालों की प्रधानता होती । हालांकि यह अखबार अंग्रेजी भाषा में निकाला गया था। बिहार में उस समय खड़ी बोली हिंदी ने अपनी स्थिति मजबूत नहीं की थी ।जब अखबार ने बिहार की समस्याओं पर लिखना शुरू किया तो उसके विरोधी उसका मजाक उड़ाने लगे ।

बंगाल में रहने वालों की तुलना में बिहारियों की स्थिति काफी खराब थी। बंगाल सत्ता का केंद्र था और वहां के लोगों ने बिहार के लोगों की समस्याओं को कभी भी प्रमुखता नहीं दी । बिहार में शिक्षा की स्थिति एकदम खराब थी। हालात यह थे कि यदि पटना के कमिश्नर यह चाहते कि किसी बिहारी को वे क्लर्क के पद पर बहाल करें तो वैसे बिहारी मिलने मुश्किल थे जिनके पास अंग्रेजी की अच्छी शिक्षा होती।

सच्चिदानंद सिन्हा ने लिखा है कि हमने इस बात पर अधिक ध्यान दिया कि किस तरह से बिहार के इस आंदोलन के समर्थन में बिहारियों को खड़ा किया जाए। बीसवीं सदी की शुरुआत में जिन मुद्दों को सबसे ज्यादा उठाया गया वह सरकारी नौकरियों में बिहारियों के साथ होने वाले भेदभाव को लेकर था ।इस आंदोलन से जुड़े सभी लोगों ने यह साफ तौर पर गौर किया कि शिक्षित बिहारी युवाओं के पास नौकरियों का घोर संकट है।लेकिन पूरी लड़ाई में बिहारियों ने कभी भी यह मांग नहीं की कि बिहार के अंदर नौकरी पाने वाले गैर बिहारी को बिहार से निकाला जाए। उनकी सिर्फ यह मांग थी कि उन्हें अपना हिस्सा दिया जाए ।यह आंदोलन बहुत ही शालीनता के साथ एक प्रबुद्ध तरीके से लड़ा गया और इस आंदोलन को तैयार करने वाले लोग काफी पढ़े

लिखे और हर चीज को एक शालीन तरीके से करने वाले थे।

एक बंगाली पत्रकार जो बिहार के इस आंदोलन के समर्थक थे उनका नाम पृथ्वी चंद राय था। बिहार विभाजन के आंदोलन का समर्थन करते हुए वायसराय लॉर्ड कर्जन को पत्र लिखते हैं कि हाल के दिनों में बिहार को एक अलग प्रशासनिक प्रांत बनाने की जो मांगे उठ रही हैं उसका शोर बढ़ता ही जा रहा है। सारी दुनिया जानती है कि बिहार के रीति रिवाज बंगालियों से अलग हैं बंगालियों के साथ उनका कोई तालमेल नहीं है ।उनका इतिहास भी अलग है ।मुगल जमाने में बिहार को एक अलग प्रांत के रूप में रखा गया था। मैं चाहूंगा कि इस संबंध में अंग्रेजी सरकार को भी मुगल नीति अपनानी चाहिए और बंगाल तथा बिहार को दो अलग अलग प्रांत बनाना चाहिए। बिहार के लोग भावनात्मक रूप से बंगाल से जुड़े हुए नहीं हैं।

अंत में बिहार के लिए वह समय आ गया जिसका हर किसी को इंतजार था। दिसंबर 1911 में दिल्ली दरबार के आयोजन की घोषणा हुई यह दिल्ली दरबार 7 दिसंबर से 16 दिसंबर तक आयोजित था। जिसमें 12 दिसंबर को सम्राट जॉर्ज पंचम की ताजपोशी घोषित थी ।सम्राट के 12 दिसंबर के इस आयोजन में 50,000 से अधिक घुड़सवारों का प्रदर्शन हुआ तथा इसी आयोजन में एक रॉयल पवेलियन बनाया गया था जहां से जॉर्ज पंचम ने भारत की राजधानी को कलकत्ता से हटाकर दिल्ली करने की घोषणा की और साथ ही बंगाल का विभाजन करते हुए बिहार तथा उड़ीसा को मिलाकर एक अलग प्रांत बनाने की घोषणा की थी। बिहार एवं उड़ीसा को मिलाकर एक अलग प्रांत बनाकर इसे लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन कर दिया था।

बिहार आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि बिहारियों ने कभी भी हिंदू मुस्लिम एकता को नहीं तोड़ा उन्होंने सभी धर्मों और रीति-रिवाजों का आदर किया बिहार के इस उदारवादी चरित्र के पीछे उसका एक सुनहरा इतिहास है जिसकी संस्कृति की छाप अब भी मौजूद है। प्राचीन तथा मध्य काल में बिहार को चंद्रगुप्त, सम्राट अशोक, गुप्त काल के शासक, शेरशाह तथा गुरु गोविंद सिंह जैसे महान शासकों ने निर्मित किया था इस राज्य का यह गौरवशाली इतिहास है।
"राजमहल" ब्रजेश वर्मा की पुस्तक है। वह कहते हैं इस पुस्तक में एक विशाल राजधानी के छोटे से शहर में बदल जाने की कहानी है। राजमहल मध्ययुग में बंगाल उड़ीसा और बिहार के अलावा वर्तमान बांग्लादेश की भी राजधानी हुआ करता था जिसे मुगल बादशाह अकबर के सेनापति मानसिंह ने बसाया था अब यह अपने गौरव को खो चुका है किंतु यहां की पहाड़ियां और गंगा नदी आज भी इस की प्राचीन सभ्यता की कथाएं दोहराते हैं।

'राजमहल' शीर्षक से लिखे गए किताब में राजमहल अब भारत में झारखंड राज्य का एक छोटा सा शहर है जो राजमहल की पहाड़ियों में स्थित है का विवरण है। गंगा नदी से 190 किलोमीटर उत्तर-दक्षिण में लगभग दुमका तक इसकी सीमा फैली हुई हैं। राजमहल पहाड़ियाँ लगभग 567 मीटर की ऊँचाई तक उठती हैं। 'सोरिया' पहाड़ी लोगों का राजमहल की पहाड़ियों में वास है। इसकी घाटियों में संथाल जनजाति द्वारा कृषि की जाती है। मध्यकालीन भारत में बंगाल के सूबेदार और मुग़ल सेनापति मानसिंह ने तेलियगढ़ दर्रे और गंगा नदी पर सामरिक नियंत्रण के लिए 1595-1596 में इस जगह को अपनी राजधानी के रूप में चुना था। 1608 में बंगाल की राजधानी 'डक्का' (वर्तमान ढाका) स्थानांतरित हो गई, लेकिन अस्थायी तौर पर 1639 से 1660 के बीच राजमहल ने अपनी प्रशासनिक स्थिति को वापस हासिल कर लिया था। राजमहल में बादशाह अकबर की ऐतिहासिक महत्त्व की 'अकबर मस्जिद' (लगभग 1600 ई.) और बंगाल के नवाब मीर क़ासिम का महल भी ऐतिहासिक महत्व का है और लोग इसे अध्ययन का क्षेत्र भी मानते हैं।

ब्रजेश वर्मा इस पुस्तक में लिखते हैं भाषा की दृष्टि से

यदि देखा जाए तो राजमहल का मतलब "राजा का महल" होता है, किन्तु इस जगह का नाम राजमहल कैसे पड़ा यह स्पष्ट नहीं है। सर यदुनाथ सरकार (1870-1958) जैसे इतिहासकार ने अब्दुल लतीफ़ की बिहार यात्रा 1608, के उदाहरण देते हुए यह साबित करने की कोशिश की है कि राजमहल शहर को पहले "आग महल" कहा जाता था। यह आम लोगों की भाषा में था। उन्होंने इसका दो कारण बताया है, एक यह कि गौड़ के सुलतानों का यह एक अग्रणी स्थान था क्योंकि उन लोगों ने यहाँ अति उत्तम टेंट डालकर यहाँ एक नगर बसा दिया था। यह टेंट वाला नगर उस समय वे बनाते थे जब वे अपनी राजधानी की ओर जाते थे। दूसरा- यहाँ पर अचानक बहुत सारे घर भीषण आग के कारण जल गए थे जिसके चलते इसका नाम आग महल पड़ा। उसी प्रकार कनिंघम के अनुसार राजमहल को कनकजोल कहकर भी पुकारा जता था। वर्तमान राजमहल के 18 मील दक्षिण में इस नाम का एक गाँव भी था।

राजमहल के इतिहास को देखते हुए उन्होंने लिखा है होजेस 1782 में पहली बार राजमहल आया था। औरंगजेब सेनापति मीर जुमला और शाह शुजा के बीच हुई भयंकर लडाई के बारे में उसने लिखा है कि राजमहल के गवर्नर शाह राजा के पराजित हो जाने के बाद तीन सौ से अधिक महिलाओं ने खुद को पूरी तरह से जला लिया था। वह लिखता है कि जैसा कि एक परम्परा यहाँ कायम थी औरतें अपनी इज्जत को बचाने के आग में कूद जाया करती थी यही राजमहल में हुआ जिसमें लगभग तीन सौ औरतों ने खुद को आग के हवाले कर दिया। (इस परम्परा को भारतीय इतिहासकारों ने जौहर कहकर बुलाया है)। राजमहल में शाह शुजा का हरम, जो मुख्य महल के पास ही था, में भारत के अनेक इलाकों से, खासकर कश्मीर से सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों को लाकर रखा गया था। शाह शुजा का हरम भारतीय वास्तुकला का एक उदाहरण था।राजमहल में आम लोगों के चलने के लिए गंगा नदी के किनारे से बहुत आगे तक सड़कें थीं जो पहाड़ों की तराई से गुजरते हुए सकरीगली तक चली जाती थी । यहां से बिहार की सीमा शुरू होती थीं।

प्राचीन राजमहल के महत्व को सबसे पहले 1807 में फ्रांसिस विल्फोर्ड (1761-1822) ने पहचाना था। वह एसियाटिक सोसाइटी का सदस्य था और इंडोलोजिस्ट तथा ओरिएन्टलिस्ट भी। वह भारत में 1781 में एक लेफ्टिनेंट कर्नल के रूप में आया था और उसने यहीं एक खानम बीबी नाम की औरत से शादी की थी। उसने बहुत सारे हिन्दू और संस्कृत ग्रंथों की खोज की। विल्फोर्ड के अनुसार, उसे उम्मीद थी कि राजमहल में पाटलिपुत्र (पटना) के कुछ अवशेष मिल सकते थे। उसके बाद बुकानन यहाँ पंहुचा था।

18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी के आरंभिक खोजकर्ताओं ने राजमहल को दरअसल अकबर से भी पुराना बताया है।राजमहल के रेलवे लाइन के निर्माण के जो ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं वे इस बात की ओर इशारा करते हैं कि राजमहल रेलवे के निर्माण का काम 1851 में ही शुरू हो गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी की दृष्टि में राजमहल का महत्व इतना अधिक था कि कंपनी के अधिकारियों ने अपने पूर्वी जोन में कलकत्ता से राजमहल रेल निर्माण का ही आदेश दिया था। इस बात के सबूत में कुछ उन कब्रों की ओर नजर दौड़ाना होगा जो वर्तमान राजमहल कचहरी के पश्चिम में एक पुराने कब्रिस्तान के रूप में जाना जाता है।

साहिबगंज जिला में धरोहरों के बचाने की लाख कवायद की गई लेकिन आज सभी की हालत जीर्ण-शीर्ण स्थिति में पहुंच गई है। जिले के राजमहल, शहर के सकरूगढ़, सकरीगली, तालझारी में कई ऐतिहासिक धरोहर देखरेख के अभाव में बदहाल हैं। राजमहल में सबसे अधिक ऐतिहासिक धरोहर हैं। जिन्हें संरक्षित रखने की कोशिश में भारतीय पुरातत्व विभाग में लगा है। राजमहल में जामी मस्जिद, मैना बीबी का तालाब, पानी का पुल, टकसाल, सिंदी दालान, सकरूगढ़ व सकरीगली में पाल वंश के भग्नावशेष मौजूद हैं।

भागलपुर रेलखंड में मिर्जाचौकी के समीप स्थित प्रसिद्ध तेलियागढ़ी का किला अपना वजूद खोता जा रहा है। देखरेख के अभाव में यह खंडहर में तब्दील हो गया है। तेलियागढ़ी पहले बौद्ध विहार था। जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था, लेकिन बाद में सेन वंश के शासकों ने इसे सैनिक छावनी के रूप में तब्दील कर दिया। सेन वंश के शासक लक्ष्मण सेन के समय जब तुर्क बख्तियार खिलजी का आक्रमण यहां हुआ तो उसे रोकने के लिए इसे सैनिक छावनी बनाया गया। बाद में शेरशाह ने हुमायुं से लड़ाई के समय इसे किला का रूप दिया। बंगाल के गवर्नर शाह शूजा (1639-60 तक) ने इसे किला के रूप में काफी समय तक उपयोग में लाया और इसे व्यापारिक रूप से प्रसिद्ध किया। उस समय राजमहल बंगाल, बिहार व उड़ीसा की राजधानी थी और तेलियागढ़ी गंगा तट पर बसा एक महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थल था। लेकिन कालांतर में किला पूरी तरह ध्वस्त होता गया। कुछ साल पहले यहां पर्यटकों के लिए भवन बनाया गया था। जो बेकार हो गया है।

राजमहल में गंगा किनारे स्थित प्रसिद्ध सिंह ए दलान अपना अस्तित्व किसी तरह अब तक बचाए हुए है। इसे आमतौर पर सिंही दलान कहा जाता है। इसे बंगाल के गवर्नर शाह शूजा ने बनवाया था। यह बंगाल के गवर्नर का दीवाने खास था। इसका उपयोग शाह शूजा अपने सचिवालय के रूप में करता था। इसी सिंह दलान में शाह शूजा अपने मंत्रियों व सिपहसलारों के साथ राजकाज चलाने संबंधी मंत्रणा करता था। गंगा की लहरों से आज भी सिंह दलान जूझ रहा है। इसे सहेजने की जरूरत है। नहीं तो हमारे सांस्कृतिक धरोहर नष्ट हो जाएंगे।

साहिबगंज-राजमहल एनएच 80 पर स्थित प्रसिद्ध जामी मस्जिद को पुरातत्व विभाग ने ऐतिहासिक धरोहरों में शामिल किया हुआ है। इसे बचाने व संवारने के लिए करीब दस वर्ष पहले पहल शुरू हुई, लेकिन आज तक इसका जीर्णोद्धार नहीं हो सका। रख रखाव के अभाव में प्रसिद्ध जामी मस्जिद संकट के दौर से गुजर रहा है। लाखों खर्च के बावजूद स्थिति नहीं बदली। इतिहासकारों के अनुसार, इसे मुगल शासक शाहजहां ने बनवाया था। हालांकि इस मस्जिद के बारे में कहा जाता है कि इसे राजा मान सिंह ने बनवाया था। लेकिन इतिहासकार इस बारे में एकमत नहीं हैं।

सन 1639 में शाह शुजा ने जब बंगाल के गवर्नर का पद संभाला था उसने बंगाल की राजधानी ढाका से हटा कर राजमहल कर दी थी और लगभग बीस वर्षों में उसने अपने राजमहल दरबार को शाहजहाँ के दिल्ली दरबार की तरह ही सजा दिया था। उसने गंगा नदी के किनारे जो महल, सुन्दर बागीचे और नहर व्यवस्था का निर्माण किया था वे सारे तोपों और बंदूकों के गोले से ध्वस्त का दिए गए और शहर में पूरी तरह से दुश्मन सेना ने लूट मार की जिससे शुजा के बनाए गए अधिकांश भवन हमेशा के लिए समाप्त हो गए।

मुग़ल बादशाह औरंगजेब को जब अपने वारिस बेटे प्रिंस मुहम्मद की कारस्तानी का पता चला तो युद्ध की समाप्ति के बाद उसने अपने पुत्र को एक बड़ा ही भावनात्मक पत्र लिखकर उसे उसकी गलतियों का एहसास कराया। उस पत्र में उसके प्यार में पड़कर अपने पिता के खिलाफ किए गए विद्रोह से अपनी नाराजगी का औरंगजेब ने जिक्र किया था।

शाह शुजा जानता था कि वह अब काफी कमजोर हो गया था। उसने अपनी काफी संपत्ति मुहम्मद को दे दी और अपनी बेटी गुलरुख बेगम से उसकी शादी करा कर उसे वापस अपने पिता औरंगजेब के पास लौट जाने की सलाह दी। मुहम्मद जानता था कि उसका पिता कितना कठोर इंसान है जो एक बार भरोसा टूट जाने के बाद दोबारा उसे कोई अवसर नहीं देता था।

वर्तमान राजमहल रेलवे स्टेशन से चार मील के पास (राजमहल-साहेबगंज रोड पर) मुगल काल में बनाए गए बंगाल की राजधानी का एक सबसे बड़ा धरोहर जामी मस्जिद आज भी अपने खूबसूरत खंडहर की अवस्था में

आकर्षण का है है। विलियम होजेस जब इस इलाके में आया था तो उसने इसकी पेंटिंग बनाई थी। यह जामी मस्जिद मान सिंह द्वारा निर्मित है जो लगभग 1598 के बाद बनाई गयी थी। इस मस्जिद के अन्दर एक बड़ा हाल और उसके बाहर एक विशाल प्रांगण जो चारों तरफ से ऊँची दीवारों से घिरा था आज भी सुरक्षित हैं। इसके तीन तरफ दरवाजे थे। यह भवन 250 फिट लंबा और 210 फिट चौड़ा है जिसमें नमाज पढ़ने की जगह 90 फिट लंबा और 49 फिट चौड़ा थी। यह भवन अभी भी सुरक्षित है किन्तु इसके उत्तरी हिस्से अब पूरी तरह से ध्वस्त हो चुके हैं।

राजमहल में मैना बीबी का तालाब कासिम बाजार इलाके में था, जो अपने ज़माने के तालाबों का एक शानदार नमूना पेश करता था। इस तालाब की ऐतिहासिकता अपनी सटीक बनावट के लिए जानी जाती है। गजेटियर के अनुसार यह तालाब 175 फिट लंबा और 175 फिट चौड़ा था जिसमें पत्थर की दीवार 30 फिट गहरी एक सीधी दिशा में खड़ी थी। यहीं पर मैना बीवी की एक मजार भी है।

राजमहल में एक आकर्षण का केंद्र अभी तक उपयोग में लाया जाने वाला मुराल पुल है जो राजमहल साहेबगंज मार्ग के पर जामी मस्जिद से थोड़ा आगे उत्तर-पश्चिम में मंगलहाट के पास है। यह पुल मुगलकाल का एक धरोहर है। इसमें ग्यारह फिट चौड़े छह मेहराब हैं। इस पुल की लम्बाई 236 फिट और चौड़ाई 24 फिट है। इसके दोनों तरफ गोल बुर्ज की चिनाई की गायी है। इसके खम्भे 28 फिट गहरे हैं जो तल पर काफी नुकीले पत्थर से बनाए गए हैं ताकि वे पानी के बहाव को काट सकें। इस पुल का इतने लम्बे समय तक टिका रहना खुद में एक आश्चर्य है।

राजमहल के एक मजार की स्थानीय लोगों में काफी चर्चा होती रहती है। यह मजार मीरन (1739-1760) का है जो मीरजाफर का पुत्र था। उसने 1757 में हुई प्लासी की लड़ाई के बाद नवाब सिराजुद्दौला को राजमहल से ही गिरफ्तार कर उसकी हत्या मुर्शिदाबाद में कराई थी। 1757 की प्लासी की लड़ाई वह लड़ाई थी जिसने ईस्ट इंडिया कंपनी की पैठ को बंगाल में और भी मजबूत कर दिया था। इस लड़ाई में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला, जिसने मात्र एक साल पहले ही अलीवर्दी खां की मृत्यु के बाद सत्ता संभाली थी, की पराजय हो गयी और वह भटकता हुआ राजमहल में गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला की हार के बाद मीरजाफर को बंगाल का नवाब बना दिया।

बीबीसी की रिपोर्ट के अनुसार झारखंड के साहिबगंज जिले में राजमहल की पहाड़ियों पर करोड़ों साल पुराने जीवाश्म (फॉसिल्स) मिले हैं। इन जीवाश्मों पर जुरासिक काल के पेड़ों की पत्तियों की छाप (लीफ इंप्रेशन) है। इसके 150-200 मिलियन वर्ष पुराने होने का दावा किया जा रहा है। माना जा रहा है कि ये जीवाश्म उन पेड़ों के हैं, जो कभी शाकाहारी डायनासोर का भोजन रहे होंगे। अब इस इलाके में जुरासिक काल (मेसोज्यायिक एज) के जंतुओं के जीवाश्म (एनिमल फॉसिल्स) मिलने की संभावनाएं फिर से बढ़ गई हैं। अगर ऐसा हुआ, तो शोधकर्ताओं के लिए उनकी रुचि के नए दरवाजे खुल जाएंगे।

राजमहल को आज भी सबसे अधिक रहस्यमय "गेट वे ऑफ़ बंगाल बनाता है जिसे लोग अब तेलियागढ़ी के नाम से पुकारते हैं। राजमहल का इतिहास भूगोल बताती यह पुस्तक वाकई बेहद दिलचस्प है।

"हिंदुस्तान टाइम्स के साथ मेरे दिन" ब्रजेश वर्मा की रचना है जिसमें उन्होंने अपने पत्रकारिता से जुड़े अनुभव को साझा किया है। इस पुस्तक को पढ़ना बिल्कुल नवीन अनुभव देने वाला है। पत्रकारिता के क्षेत्र का अनुभव लिए यह पुस्तक मेरे लिए आकर्षण का विषय है। यही वजह रही कि मैंने इसे पढ़ा। सबसे बड़ी बात है कि लेखक ने सब कुछ बहुत साफगोई से बयान किया है जरा भी अधूरापन नहीं है और कहीं भी यह नहीं लगता

कि लेखक कुछ बता कर बहुत कुछ छुपाना चाहता हो। इतनी बेबाक सच्चाई एक पत्रकार में ही हो सकती है। अपने पत्रकारिता जीवन से जुड़े कई दिलचस्प प्रसंगों को इस किताब में उन्होंने लिखा है :-

"पटना में मैंने कभी भी हिंदुस्तान टाइम्स के उन लोगों को महत्व नहीं दिया जो मुझे हीन दृष्टि से देखते थे। सन 2000 में बिहार विधानसभा का चुनाव चल रहा था भारतीय जनता पार्टी के पटना कार्यालय में एक बड़ा प्रेस कॉन्फ्रेंस होने वाला था ।उस समय तक झारखंड अलग राज्य नहीं बना था। मुझे यह रिपोर्ट उदितवाणी के लिए लिखनी थी । इसके लिए मुझे भाजपा के कार्यालय में जाना था। दोपहर का वक्त था मैं चला गया प्रेस कॉन्फ्रेंस में मेरे ठीक आगे हिंदुस्तान टाइम्स के एक सीनियर रिपोर्टर बैठे थे ।मैं चुपचाप उनके पीछे बैठ गया ।वे इस बात को नहीं जानते थे कि पटना के वह पत्रकार जो दिल्ली और बाहर के अन्य जगहों के लिए काम करते थे उनका मुझसे कैसा संबंध था । वह सारे लोग मुझे जानते थे यह मेरी नवभारत टाइम्स में की गई मेहनत की कमाई थी ।जब मैं बैठा था तो पीछे से किसी ने मुझे मेरे नाम से पुकारा ।अभी प्रेस कॉन्फ्रेंस शुरू नहीं हुई थी हिंदुस्तान टाइम्स के सीनियर पत्रकार ने पीछे मुड़कर मुझे देखा और गुस्से में कहा,
" आप इस प्रेस कॉन्फ्रेंस में कैसे चले आए आप तो पटना सिटी देखते हैं ना। "
मैंने तुरंत जवाब दिया "मैंने हिंदुस्तान टाइम्स छोड़ दी ।"
उनका मुंह देखने लायक था। " ओ कब छोड़ा "
उन्होंने पूछा मैंने जवाब दिया "अभी"
वे सन्न रह गए और बोले तब तो कोई बात नहीं और अपना मुंह फेर लिया।

इस प्रेस कॉन्फ्रेंस में आने तक मैंने पटना हिंदुस्तान टाइम्स नहीं छोड़ा था ।उनके व्यवहार से मुझे इतना गुस्सा आया कि मैंने ऐसा कह दिया। प्रेस कॉन्फ्रेंस के बाद जब बाहर निकला तो हिंदुस्तान टाइम्स द्वारा रिपोर्टिंग करने के लिए दी गई ऑफिशियल डायरी को सड़क पर फेंक दिया। फिर मैं पटना हिंदुस्तान टाइम्स के दफ्तर में कभी नहीं गया।"

"अब मैं आजाद था। मैं उस अंग्रेजी अखबार की संस्कृति और अंग्रेजी भाषा से आजाद था जिसमें दबकर जिल्लत की जिंदगी जी रहा था। पर ऐसा होने वाला नहीं था सन 2002 में मैंने फिर हिंदुस्तान टाइम्स में ज्वाइन किया ।परंतु यह पटना नहीं रांची था। 15 नवंबर 2000 को झारखंड एक अलग राज्य बन चुका था।"

"पटना मैं अंग्रेजी आउटलुक के संवाददाता अमरनाथ तिवारी थे ।वह मेरे पुराने मित्र थे। उनके साथ एक फोटोग्राफर हुआ करते थे प्रशांत रवि ।उनके साथ हमारी काफी जमती थी। 1 दिन हम लोग नवीन के पायोनियर के दफ्तर में बैठे थे ।वहां अमरनाथ भी थे उन्होंने एक प्रस्ताव रखा कहा कि उनका मैगजीन एक कवर स्टोरी "हाउस हस्बैंड " निकालने जा रहा है ।उन्हें बिहार से वैसे लोगों के बारे में लिखना है जिनकी पत्नियां नौकरी करती हैं और पति घर में बच्चों की देखभाल करते हैं ।लेकिन बिहार में कोई भी पुरुष इस पर इंटरव्यू देने को तैयार नहीं है ।

मैंने तपाक से कहा "इंटरव्यू मैं दूंगा।"
मैं तो रोज यही काम करता हूं। नवीन को यह बात पसंद नहीं आई उन्होंने कहा आपके परिवार के लोग क्या सोचेंगे ।मेरा विद्रोही मन फिर से जाग उठा। मैंने कहा मैं किसी की फिक्र नहीं करता ।यदि अमरनाथ चाहें तो कल मेरे घर आकर मेरा इंटरव्यू ले सकते हैं ।मैंने यह बात अपनी पत्नी और बच्चे से बिना सलाह लिए कह दी थी ।मैं जानता था पत्नी पसंद नहीं करेंगी पर मैं यह भी जानता था कि उसे मना लूंगा।

यह तय हुआ कि रविवार के दिन अमरनाथ अपने फोटोग्राफर प्रशांत रवि के साथ मेरे घर कृष्णानगर आएंगे। घर आकर मैंने पत्नी को बता दिया वह गुस्से में थी। मेरी बड़ी बेटी हेम नलिनी को भी यह पसंद नहीं था। छोटी बेटी पूर्वा तो बहुत छोटी थी ।बड़ा बेटा पावेल उन दिनों रांची में पढ़ रहा था ।

रविवार की शाम घर में तनाव का माहौल था । जब अमरनाथ आए पत्नी एकदम से गमगीन थी ।उसे समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है ।थोड़ी देर इधर-उधर की बातें हो जाने के बाद प्लान बना कि कैसे फोटो लेना है ।प्रशांत ने फ्रिज खोला उसमें से कोको कोला की एक बोतल निकाली उसे एक गिलास में डाला, चावल के डब्बे से थोड़ा चावल निकाल कर उसे एक सूप में रखा गया। उसने कोकोकोला के गिलास को मेरी पत्नी के हाथ में दिया वह सोफे पर बैठ गई ।मेरी दोनों बेटियों से कहा गया कि वह अपनी किताबें निकालकर पलंग पर पढ़ने को बैठ जाए और मुझसे कहा गया कि मैं पलंग के एक किनारे बैठकर चावल चुनू। फिर दर्जनों फोटो लिए गए। इसके बाद बातें शुरू हुई थोड़ी देर बाद मैंने उन दोनों को हंसते हुए विदा किया ।

कुछ दिनों बाद जब आउटलुक का वह अंक आया तो मेरा तो दिमाग ही घूम गया था। अमरनाथ ने जबरदस्त स्टोरी लिखी थी। उसमें भारत के बड़े-बड़े लोगों का इंटरव्यू था ।जिसे उन इलाकों के पत्रकारों ने किया था ।वह सारे लोग हाई सोसाइटी के थे ।मेरे परिवार पर लिखी गई रिपोर्ट एक बिहारीपन लिए हुए था। जबरदस्त रिपोर्ट थी मजा आ गया। लेकिन अब पत्नी और बेटी के गुस्से को भी झेलना था ।दोनों ने रिपोर्ट देखकर मुंह फुला लिया था।

थोड़े दिनों बाद हम लोग रांची घूमने गए ।वहां मेरी ससुराल है। हम लोग जब बैठकर आपस में बातें कर रहे थे तो एक ने मेरी पत्नी से कहा "क्या बात है आजकल तुम बहुत कोका कोला पीती हो "
मेरी सासू मां गुस्से में थीं उन्होंने कहा" मैं आउटलुक पर मुकदमा करूंगी। कितना गंदा मेरे घर के बारे में छापा गया है । लोग क्या कहेंगे।"कुछ इसी विषय पर हाल में करीना कपूर की एक फिल्म आई थी "की एंड का"।

शिक्षा विभाग की व्यवस्था पर एक संस्मरण है:-"शिक्षा विभाग पर मेरा क्रोध सातवें आसमान पर था। मैंने भागलपुर यूनिवर्सिटी से पढ़ाई की थी ।8 साल से ₹200 महीने पर एक प्राइवेट कॉलेज में काम कर रहा था ।मैं उस यूनिवर्सिटी के नस नस को जानता था ।जब मेरी रिपोर्टिंग शुरू हुई तो यूनिवर्सिटी में अचानक भूचाल सा आ गया जो टीचर मुझसे बातें नहीं करते वे सलाम ठोकने लगे ।एक दिन कुलपति ने मुझे चाय पर बुलाया कहा आप रिपोर्ट लिखते हैं तो मुझे गवर्नर से डांट सुननी पड़ती है ।प्रोफेसर एस एम हबीबुद्दीन मेरे गुरु थे ।उन्होंने मुझे पीएचडी कराई थी ।वह अब प्रति कुलपति बन चुके थे ।मेरा कुलपति से झगड़ा शुरू होते ही उन्होंने माहौल को शांत कर दिया ।मैं हबीबुद्दीन साहब की बात टाल नहीं सकता था।"

"1995 में पटना नवभारत टाइम्स ठीक उसी दिन बंद हो गया जिस दिन पटना में विधानसभा चुनाव की वोटिंग हो रही थी ।सारे लोग रिपोर्टिंग करने निकले। मैं उस दिन द स्टेट्समैन के रिपोर्टर हेमन्द्र नारायण के साथ रिपोर्टिंग के लिए पश्चिम चंपारण गया था ।वहां एक बड़े माओवादी नेता के साथ हम लोगों की बात हुई थी। वापस आए तो नवभारत टाइम्स बंद हो चुका था ।शाम को घर लौटा तो ₹22000 का एक चेक डाक से घर पर आया ।अखबार के बंद होने का मुआवजा था ।चंपारण की मेरी रिपोर्ट को उत्तम सेनगुप्ता ने टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित कर दिया मैंने उन्हें हिंदी में लिख कर दिया था उन्होंने खुद से अंग्रेजी में रिपोर्ट बना ली और मेरे नाम से प्रकाशित किया।"

"अखबार की रिपोर्टिंग क्या होती है? मेरे जैसे इस देश के सैकड़ों पत्रकार मुझसे भी खराब अनुभव और परिस्थिति में काम कर रहे होंगे, और किए होंगे ।उन से पूछिए कि पत्रकारिता का जुनून क्या होता है। इसीलिए इसे दुनिया के सबसे तनाव वाले पेशे के रूप में देखा गया है ।रिपोर्ट फाइल नहीं होने तक कुछ भी नहीं सोचता ।मामला समय का है ।यदि समय पर रिपोर्ट नहीं पहुंची तो उसे कूड़े में डाल दिया जाता है। तब मेहनत का कोई महत्व नहीं है।"

राघव और सरल की जोड़ी। ये कभी मौन प्रेम में डूबे थे। फिर विलग हो रहे। जीवन अलग अलग दिशाओं में ले गया। कालान्तर में फिर एक मोड़ पर साथ लाया है। दो बिल्कुल विपरीत स्वभाव ,परिवेश के लड़के (फुटबॉल का खिलाड़ी जिसे पढ़ने में मन कम ही लगता है)और लड़की (एक पढ़ाकू गंभीर लड़की) की कहानी कहता यह उपन्यास "हमसाया" एक साथ कई चीजों को जोड़ता है। एक प्यारी सी प्रेम कहानी के साथ खड़गपुर, भागलपुर ,पटना शहर से पाठकों को परिचित कराता हुआ यह उपन्यास 1967 के अकाल का, श्रीमती इंदिरा गांधी जी के प्रधानमंत्री रहते हुए भारत की राजनीतिक स्थिति का, जेपी के छात्र आंदोलन का भी एक वास्तविक स्वरूप पाठकों के सामने रखता है।

' हमसाया' उपन्यास में वर्णित 70 के दशक की प्रेम कहानी ,दो प्रेमियों के आत्मा के दोलन और हृदय के कम्पन को इस रंगयुक्ति से साकार कर देती है कि जैसे किसी तीव्र प्रतीति का क्षण नाटकीय आवेग से भरा हो जिसमें जीवन के आशय गुंथ जाएं।धीरे-धीरे दृश्य स्थिर होता है और मुझ जैसे पाठक के मन में यह आता है कि साहचर्य का ये पथ कभी समाप्त न होगा।

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में एक नायक के जो अनिवार्य गुण निर्दिष्ट किए हैं, उन्हीं में से एक है उसका 'धीरोदात्त' होना। धैर्य और औदात्य भारतीय नायकत्व के अनिवार्य प्रतिमान हैं और ये ही वे गुण हैं, जिनका ब्रजेश वर्मा के उपन्यास "हमसाया" का नायक राघव प्रतिनिधित्व करता है। भद्रलोक का ऐसा सुसंस्कृत युवक, जिसे लड़कियां बड़े गर्व और विश्वास के साथ अपने मां-पिता से मिलाने ले जाएं।

उपन्यास के संदर्भ में ज्यादा कहना उचित नहीं होगा इससे पढ़ने में रस कम हो जाता है।

निष्कर्ष:- डॉ ब्रजेश वर्मा पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं साथ ही कई विधाओं में लेखन कार्य भी किया है। प्रत्येक विधा में लेखन उतने ही लगन से किया है जितने लगन से पत्रकारिता का कार्य। हिंदुस्तान टाइम्स के साथ मेरे दिन, प्रथम बिहारीः दीप नारायण सिंह (1875-1935), राष्ट्रवादी मुसलमान (1885-1934), मुस्लिम सियासत , राजमहल, बिहार-1911 जैसी तथ्यपरक रचनाओं के साथ-साथ उन्होंने उपन्यास भी रचे हैं। वह हमसाया ,राज्यश्री, नादिरा बेगम 1777, सरकार बाबू (उपन्यास) जैसी खूबसूरत रचनाओं के रचनाकार भी रहे हैं

संदर्भ सूची:-

1. डॉ. ब्रजेश वर्मा -हिंदुस्तान टाइम्स के साथ मेरे दिन:- नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
2. डॉ. ब्रजेश वर्मा -प्रथम बिहारीः दीप नारायण सिंह (1875-1935):-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
3. डॉ. ब्रजेश वर्मा- राष्ट्रवादी मुसलमान (1885- 1934):-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
4. डॉ. ब्रजेश वर्मा -मुस्लिम सियासत :-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
5. डॉ. ब्रजेश वर्मा - राजमहल:-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
6. डॉ. ब्रजेश वर्मा - बिहार-1911 :-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
7. डॉ. ब्रजेश वर्मा - हमसाया :-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2020
8. डॉ. ब्रजेश वर्मा - राज्यश्री:-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2021
9. डॉ. ब्रजेश वर्मा - नादिरा बेगम 1777:-नम्या प्रेस ,उत्तर प्रदेश ,2021

 ISSN: 2454-2725

आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ

***डॉ. अरविंद कुमार**

आधुनिकता अथवा आधुनिक जीवन : 'आधुनिकता' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'अधुना' शब्द से हुई है। आधुनिक विशेष कालावधि का वाचक है, विशेषण तथा संस्कृत शब्द है। आधुनिक – आजकल का, वर्तमान काल का, नया जमाने का। "आधुनिकीकरण का अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द – 'मॉडर्नाइजेशन' है। यह शब्द अंग्रेज़ी के ही शब्द 'मॉडर्न' से बना है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'मोडो' से हुई है। लैटिन भाषा में मोडो' शब्द का अर्थ है – 'प्रचलन'। अर्थात जो कुछ प्रचलन में है वही आधुनिक है।" समाज शास्त्र में आधुनिकीकरण अथवा आधुनिकता की निम्नवत् परिभाषाएँ दी गई हैं-

> आधुनिक जीवन की विसंगतियों को हम भली-भांति तभी समझ पाएंगे जब हम आधुनिकता अथवा आधुनिक जीवन का गहन विश्लेषण करेंगे।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री बेंजामिन स्वार्टज़ का कथन है कि – "आधुनिकीकरण विभिन्न मानवीय प्रयोजनों को सिद्ध करने हेतु मानव की शक्ति, सामर्थ्य व क्षमता के व्यवस्थित व निरंतर युक्तियुक्त कार्यान्वयन के द्वारा मानव के भौतिक व सामाजिक पर्यावरण पर नियंत्रण करने का प्रयास है।" डेविड एप्टर के अनुसार – "आधुनिकीकरण चयन करने की योग्यता व अन्वेषण तथा प्रश्नात्मक धारणाओं से संबद्ध है।" डॉ. मदन मोहन भारद्वाज आधुनिकता को अलग ढंग से परिभाषित करते हैं- "आजकल आधुनिकता से जो अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह है रहन-सहन, खान-पान और बोलचाल में पश्चिम का अनुकरण। कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जितना अधिक पश्चिमी रंग में रंग गया है वह उतना ही आधुनिक है। अत: हमारे यहाँ आधुनिकता का अर्थ है- 'पश्चिमी प्रभाव'। डॉ. नगेंद्र ने आधुनिता का प्रश्न निबंध में कहा है- "आधुनिकता को मूल्य के रूप में स्वीकारना समीचीन न होगा, यह एक प्रक्रिया है, इसी रूप में इसका प्रभाव अक्षुण्ण है।" नटरंग के संपादक एवं प्रख्यात साहित्यकार नैमिचन्द जैन ने कहा है- " हमारे लिए आधुनिकता पश्चिमीकरण में नहीं, अपनी परंपरा को समकालीन जरूरतों के संदर्भ में ढालने, बदलने और जीवंत करने में हो सकती है।"

राष्ट्रीय कवि रामधारी सिंह दिनकर ने 'आधुनिक बोध' में आधुनिकता के बारे में कहा है- "जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया है।" हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री गिरिराज किशोर ने आधुनिकता के बारे में कहा है- "आधुनिकता वही होती है जो वर्तमान को स्वीकार करे और उसके अनुरूप रूढ़ियों में परिवर्तन लाए।" आधुनिकता को हमें विचारों से जोड़ना चाहिए तभी हम आधुनिक हो सकेंगे अन्यथा हम लोग आधुनिक न होकर उच्छृंखल हो जाएंगे। डॉ. भैरूलाल गर्ग ने 'आज की हिंदी कहानी' में आधुनिकता के बारे में कहा है- "आधुनिकता की कसौटी मात्र बाह्य परिवर्तन ही नहीं है अपितु जीवन मूल्य, विचारधाराएँ, दृष्टिकोण और जीवनानुभव हैं जो कि बहुत कुछ आंतरिकता से संबंध रखती है।" डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिकता को गतिशीलता मानते हुए कहते हैं कि बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा है दूसरे पैर से चलता है, यह खड़ा पैर परंपरा, चलता पैर आधुनिकता है। डॉ. इंद्रनाथ मदान के अनुसार –"यह एक प्रक्रिया है, जिसे वाद के साँचे में ढाल कर जड़ बनाने की कोशिश नाकाम सिद्ध होती रही

*पी.जी.टी. हिंदी, विद्याज्ञान स्कूल बुलंदशहर- 203202, उत्तर प्रदेश- भारत, मोबाईल 8171276433, ईमेल- dr.arvind11@yahoo.in

है, गति को स्थिति का रूप देने में असफलता का मुँह ताकना पड़ा है, आधुनिकता स्थिति को तोड़कर गति में जारी होती रही है।" विपिन अग्रवाल ने 'आधुनिकता के पहलू' में कहा है- "आधुनिकता वास्तव में एक अर्द्ध विकसित प्रक्रिया है जिसकी कोई स्थूल, पूर्वनिश्चित और अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है। मनुष्य और उसकी अर्द्ध विकसित अथवा अल्प विकसित क्रियाएँ आधुनिकता को परिभाषित करती हैं, जो जितना आधुनिक है वह उतना ही मनुष्य है।" डॉ. कुमार विमल 'अत्याधुनिक हिंदी साहित्य' में लिखते हैं- "आज की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान ही आधुनिकता का आधार है।"

आधुनिक मनुष्य के बारे में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युंग ने 'मॉडर्न मैन इन सर्च ऑफ ए सोल' में कहा है- "आधुनिक मनुष्य वह है जो संसार के अंतिम छोर पर एक ऐसी भूमि पर खड़ा है जिसके सामने भविष्य की अस्पष्टता है, ऊपर शून्य और नीचे इतिहास में लिपटी मनुष्यता जो आदिम धुंध में खो चुकी है। इस प्रकार का मनुष्य बिरला ही मिल पाता है जो वर्तमान में ही जी सके। ऐसा मनुष्य पूर्णत: अपने वर्तमान अस्तित्व के बारे में सचेत रहता है, इसके लिए व्यापकतम और गंभीर चेतना अपेक्षित है। इस तरह का मनुष्य हमेशा ही अकेला होता है क्योंकि चेतना की वृद्धि उसे निरंतर आदिम मौलिक समुदाय से काट कर अलग करती है।"

उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर 'आधुनिकता' के अनेक अर्थ उद्घाटित हुए हैं- आजकल का, वर्तमान में प्रचलन, आज की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान, पश्चिमी प्रभाव, वर्तमान को स्वीकार कर रूढ़ियों में परिवर्तन, न अतीत से सरोकार न भविष्य से, चलता पैर आधुनिकता, यह एक प्रक्रिया है, अर्द्ध विकसित प्रक्रिया, परंपरा को समकालीन जरूरतों के संदर्भ में ढालना आदि। आधुनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास होने के कारण समाज में अनेक विसंगतियों का उदय हुआ। विसंगतियों के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व विघटित हुआ है। 'विसंगति' क्या होती है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए 'विसंगति' शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है।

विसंगति (एब्सर्डिटी) : बृहत पारिभाषिक शब्द संग्रह के अनुसार विसंगति (एब्सर्डिटी) का अर्थ है- "असंगति, अनौचित्य, अयुक्ति, अर्थहीनता, विवेकशून्यता, अपार्थता आदि।" ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में 'एब्सर्डिटी' से आशय है-"फुली अनरीजनेबलनैस : एन एब्सर्ड स्टेटमेंट ऑर एक्ट।" पाश्चात्य विद्वान टी. एस. इलियट ने 'एब्सर्डिटी' को "समथिंग दैट इज़ एब्सर्ड" कहा है। इसी प्रकार 'साहित्यिक शब्दावली' में विसंगति का अर्थ – "असंगति, हास्यास्पदता" से लिया गया है। इंग्लिश और संस्कृत डिक्शनरी में 'एब्सर्डिटी' को –"दैट व्हीच इज़ एब्सर्ड, मृषार्थकं, अनर्थकं, शशविषाणम्, शशशृंग, गगन पुष्पम्, गगन कुसुम" कहा गया है। इसी प्रकार 'किमीरा' का अर्थ है – "असत्य कल्पना, असत्य पदार्थ, असत्वस्तु, शशशृंग (हॉर्न ऑफ ए रेबिट)।" 'एब्सर्डिटी' को शशशृंग कहना उचित ही है क्योंकि खरगोश के सींग लगाना कभी संभव नहीं है। इसी प्रकार अनौचित्य अथवा अयुक्ति पूर्ण कथन विसंगति के परिचायक हैं। किमीरा (असत्य कल्पना), शशशृंग (खरगोश के सींग लगाना) व एब्सर्डिटी (विसंगति), इन तीनों में अर्थ के आधार पर बहुत समानता है।

विसंगत या एब्सर्ड का अर्थ अधिक गहराई से जानने के लिए कुछ विद्वानों के विचारों को समझना आवश्यक है- डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र के अनुसार- "एब्सर्ड नाटक कहीं से भी शुरू होते हैं और अनपेक्षित ढंग से समाप्त हो जाते हैं। इनमें सब कुछ असंबद्ध, असंगत, निरर्थक, उलजलूल, बोरियत पैदा करने वाला, अविश्वसनीय एवं तर्कातीत होता है।" डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र के ही मतानुसार- "एब्सर्ड नाटक मूल्य एवं जीवन की विसंगति को रेखांकित करना चाहता है, इसलिए उसमें नायक-नायिका जैसी कोई चीज़ नहीं होती। वह चाहता है कि दर्शक अपनी पृथक सत्ता को बनाए रखकर मंच पर चल रहे उलजलूल कारनामों को देखें और अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा पिरोकर युग की सच्चाई का साक्षात्कार करें।" विसंगत या एब्सर्ड जीवन को डॉ. राम सेवक सिंह ने इस प्रकार माना है- "एब्सर्ड मंच उस विश्वव्यापी

स्वत: स्फूर्त आंदोलन का अंग है, जिसमें जीवन की अपरिहार्य विडंबनाओं तथा उसकी निरर्थकता से क्षुब्ध मनुष्य की असहाय स्थिति का चित्रण ही प्रधान उद्देश्य है।" डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र लिखते हैं- " 'एब्सर्ड' शब्द जिस अर्थ में आज प्रचलित है उसे गढ़ने का श्रेय 'कामू' को जाता है।" डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार – "असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं। इनमें परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है। जीवन की विद्रूपताओं और विकृतियों को ये अपना आधार बनाते हैं।" डॉ. भैरूलाल गर्ग विसंगतियों को निर्मित करने वाले कई पहलूओं की चर्चा करते हैं- "इन विसंगतियों के जाल को निर्मित करने वाले कई पहलू हैं, यथा : मानवीय संबंधों में टूटन और अलगाव, परिवेशजन्य त्रासदी, कुंठा, भय, संत्रास, मृत्युबोध आदि।"

सार्त्र ने कामू के उस विचार की व्याख्या की है, उनका कहना है कि कामू के दर्शन में 'विसंगति' का मूल कारण इन्सान और दुनिया का अथवा इन्सान की तार्किक मांगों और दुनिया के अतार्किक स्वरूप का संबंध है। अस्तित्ववादी विचारक कामू ने 'विसंगति' का प्रयोग तीन अर्थों में किया है- मानव जीवन की विरोधाभासी त्रासदी के रूप में, बनी रहने वाली परिस्थिति के रूप में और विद्रोह के रूप में। प्रसिद्ध विद्वान कुबेरनाथ राय ने 'क्रांति, विसंगति और कामू का विद्रोह दर्शन' में विसंगति की विस्तार से व्याख्या की है- "विसंगतियों (एब्सर्डिटीज़) के संसार में अभिशप्त अकेले मनुष्य की करुण व्यथा ही कामू के चिंतन और साहित्य का विषय है। गत महायुद्धों की विभीषिका ने मनुष्यों के तन-मन और धन को ऐसा पराजित किया कि उसे न तो सनातन मूल्यों में विश्वास रहा और न ही आदर्शों की पवित्रता और ईमानदारी में आज वह अकेला है या अकेला रहने के लिए अभिशप्त है। पुरुषार्थ, लक्ष्य, न्याय, आदर्श, ईश्वर, लोक और राष्ट्र में से कोई भी एक आधार उसके पास नहीं है, जिस पर वह खड़ा हो सके। वह त्रिशंकु है। उसके चारों ओर है- 'विसंगतियों का जगत'।" कामू के अनुसार जीवन के मामूली से मामूली क्रिया-कलापों में भी पग-पग पर हमें विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। युक्ति-युक्त ढंग से सोचने पर हम किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं और उसके अनुसार सारे ज्ञात कार्य कारणों का पालन करते हुए भी हम पाते हैं कि वास्तव में घटित कुछ और ही हुआ है, जो अति ही युक्तिहीन और तर्कहीन है। इस तरह हमारी पूर्व स्थापित युक्तियुक्तता कोई काम नहीं आती। हमार अंतर की विवेकपूर्ण माँग और बाहर की अविवेकपूर्ण घटनाएँ एवं अनुभव इन दो छोरों के बीच कोई तारतम्य नहीं है। इसी युक्तियुक्त का और तारतम्य से हीन स्थिति को ही कामू 'विसंगति' कहता है।"

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'नये साहित्य का तर्क शास्त्र' में कहा है कि – "कामू जीवन में सब कुछ को 'विसंगत' (एब्सर्ड) मानता है। 'विसंगत' का अर्थ होता है- 'विरोधाभासों से पूर्ण अथवा अर्थहीन'। अपनी पुस्तक 'मिथ ऑफ सिसिफ़स' में उसने अपना विसंगति दर्शन प्रस्तुत किया है। कामू के अनुसार हम चाहते कुछ और हैं, और करते कुछ और हैं तथा उस कर्म का फल कुछ और ही होना चाहिए पर हमें मिलता कुछ और ही है। इन चारों में कोई आपसी संगति नहीं है। 'विसंगति' का यह दर्शन किसी चरम मूल्य में विश्वास नहीं करता। इसके अनुसार कुछ भी मूल्यवान और सार्थक नहीं है। सारी स्थितियाँ अर्थहीन हैं।" लाल चंद गुप्त मंगल कहते हैं कि- " कामू के अनुसार विसंगतियों से बचने का एक मात्र मार्ग है – 'विद्रोह'। विसंगतियों के परिवेश में नए-नए मूल्यों को रचने का प्रयास किया जाता है। रवींद्र कालिया - कोज़ी कॉर्नर (एक विसंगति) में विसंगतियों को आरोपित न मानकर उन्हें भोगी हुई मानते हैं- "जीवन को खासकर महानगर के भागते हुए जीवन को देखें तो साफ़ लगता है कि हमारी सारी दिनचर्या विसंगतियों के कोष्ठ में कैद है। ये विसंगतियाँ आरोपित नहीं हैं, भोगी हुई हैं, इसलिए विसंगतियों का रूप पाकर भी प्राणवान हैं।" डॉ. इंद्रनाथ मदान 'आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य' में 'विसंगति' के बारे में लिखते हैं- "विसंगति क्या है का जवाब मानव की नियति और स्थिति क्या है के सवाल से जुड़ा हुआ है। विसंगति के नाटककारों और चिंतकों के अनुसार मानव की नियति उद्देश्यहीन है, उसके व्यक्तित्व की संगति न तो परिवेश से

बैठती है और न ही उसकी हस्ती की संगति उसके पैदा होने और मर जाने से बैठती है।

उपर्युक्त विद्वानों ने 'विसंगति' की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जिनके आधार पर विसंगति के अनेक अर्थ दृष्टिगोचर हुए हैं- असंगत, हास्यास्पदता, निरर्थक, ऊलजलूल, बोरियत पैदा करने वाला, अविश्वासनीय, मनुष्य की असहाय स्थिति का चित्रण, जीवन की विद्रूपताओं और विकृतियों से संबंध, मृत्युबोध, तर्कहीन, विरोधाभास, उद्देश्यहीन व अर्थहीन आदि।

'आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ' (स्वदेशी परिवेश) : स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश ने उन्नति की है परंतु धीरे-धीरे स्वतंत्रता की यथार्थता जब सामने आई और सत्य प्रकट हुआ कि प्रशासन में अभी तक कुछ लोग थे जो चले गए। उनका स्थान कुछ नए जेल गए देशभक्तों ने ले लिया जो साम्राज्यवादी तो नहीं हैं परंतु अपने जेल - जीवन में व्यतीत बहुमूल्य दिनों का मूल्य अपनी स्वार्थपूर्ति एवं भाई-भतीजावाद को पोषित कर करना चाहते हैं। वर्तमान में जाति और प्रजातंत्र की साँसें टूटती प्रतीत हो रही हैं। विभाजन ने व्यक्ति को व्यक्ति से अलग किया है, उसे सभी संबंध बेमानी लगने लगे। कमलेश्वर ने विभाजन से उत्पन्न मोहभंग को 'नई कहानी की भूमिका' में इस प्रकार दर्शाया है- " विभाजन, मोहभंग, यांत्रिकता, विसंगतियाँ,परिवारों का विघटन, राजनैतिक भ्रष्टाचार और व्यापक असंतोष के बीच जो व्यक्ति साँसें ले रहा था, जिसका समकालीन साहित्य जवाबदेही से कतरा रहा था। .....या जिसके आंतरिक- बाह्य संकट को अभिव्यक्ति नहीं दे पा रहा था, वह मनुष्य इतिहास के क्रम में अपने पूरी परिवेश को लिए एक अवरूद्ध राह पर संभ्रमित और चकित खड़ा था।"

वस्तुस्थिति यह रही कि स्वतंत्र भारत जितनी तीव्र गति से आगे बढ़ना चाहिए था उतना तो क्या उससे बहुत कम अंश में भी आगे न बढ़ सका। चुनाव के समय नेता वर्ग बड़े-बड़े प्रलोभन एवं वादें करते हैं। चुनाव पश्चात सब वादें भुला दिए जाते हैं। आधुनिक सत्ता संपन्न विधायक एवं मंत्री मूल रूप में तो जनसेवक होते हैं परंतु अपनी सत्ता का दुरुपयोग करके बड़े-बड़े अपराधियों, उद्योगपतियों और पूँजीपतियों को संरक्षण देते हैं। मंत्री तक अपने नातेदारों को परमिट, लाइसेंस व अन्य लाभकारी पद उन्मुक्त हृदय से प्रदान करते हैं। वर्तमान में ऐसा कोई भी लोकनायक नहीं रहा जो चारित्रिक और नैतिक दृष्टि से नागरिकों, अफ़सरों व कर्मचारियों को ऊपर उठने की प्रेरणा प्रदान करता। आधुनिक नेता वर्ग वर्तमान राजनीति का पूर्ण स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया, खद्दर व गाँधी टोपी का महत्व पहचान कर अपने स्वार्थ साधन के रूप में इनका प्रयोग किया। वर्तमान में अनेक योजनाएँ या तो फाइलों में ही दबकर रह गई अथवा जिन निर्धन व्यक्तियों के लिए योजनाएँ बनी थी वहाँ तक पहुँचने ही नहीं दी गई। इस प्रकार राजनैतिक भ्रष्टाचार ने राजनीति को 'विसंगत' बना दिया।

भारतीय समाज में धर्म महत्वपूर्ण रहा है। यद्यपि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है किंतु धर्म के नाम पर यहाँ इतनी कट्टरपंथी और अंधविश्वासी भावनाएँ प्रचलित हैं कि आज के आधुनिक समाज में उनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। हिंदू-मुस्लिम झगड़े, देवी – देवताओं के नाम पर शिशुओं की बलियाँ, छुआछूत और अस्पृश्यता की भावना तथा देव मंदिरों में आत्म-बलिदान आदि ने धार्मिक विसंगतियाँ उत्पन्न की। धर्म के नाम पर भोली-भाली जनता को गुमराह किया जाता है। दिन के उजाले में पंडित और मौलवी का जो रूप होता है, वह रात के अँधेरे में इन से अलग ही प्रकार का होता है मंदिरों में देवदासी प्रथा वर्तमान में भी प्रचलित है जो वेश्यावृत्ति का ही दूसरा रूप है। धर्म के नाम पर बनाए गए ये शरणालय आज व्यभिचार के केंद्र बनकर रह गए हैं। पश्चिमी प्रभाव ने किसी सीमा तक 'धर्म' की रूढ़ियों को तोड़ा है। नयी पीढ़ी की दृष्टि में 'धर्म' एक विनाशकारी शक्ति है जो उसे समाज से पृथक 'संप्रदाय विशेष' तक ही सीमित रखती है। धार्मिक कट्टरता व अंधविश्वास व्यक्ति में अज्ञानता तथा प्रगति की राह में बाधा उत्पन्न करते हैं। आधुनिकता ने धर्मनिरपेक्षीकरण को प्रश्रय दिया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ धर्म का महत्व था और यहाँ तक कि धर्म और राजनीति भी जुड़े हुए थे वहाँ अब लौकिक या धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण पनपने लगा।

स्वदेशी परिवेश में अनेक विसंगतियाँ पहले से ही विद्यमान थी। आधुनिक युग समाज-सुधार की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार ने रूढ़िवादी समाज के आधार को नष्ट कर दिया। देश के प्रबुद्ध लोगों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। राजा राम मोहन राय , ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद आदि ने सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों से समाज को मुक्त कराया। भारतीय समाज एक परंपरावादी समाज रहा है जिसमें परिवर्तन शीघ्रता से ग्राह्य नहीं होता। यही कारण है कि अनेक अधिनियमों के पारित होने के उपरांत भी दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह आदि कुरीतियों ने अनेक सामाजिक विसंगति उत्पन्न की। श्री गोपाल शरण सिंह 'दहेज की कुप्रथा से हानियाँ' शीर्षक में दहेज प्रथा पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं- "लोग अपनी भावी पुत्रवधू के पिता से जितना द्रव्य ऐंठ सकते हैं उतना ऐंठना आवश्यक समझते हैं, चाहे वह बेचारा तबाह ही हो जाए, चाहे उसे कर्ज़ ही लेना पड़े, चाहे घर गिरवी रखना पड़े। परंतु उसको अपने भावी समधी साहब की आज्ञा का पालन करना ही पड़ता है। जिन लोगों का घर रुपयों से भरा पड़ा है उन्हें भी दहेज के रूप में मनमाना धन लिए बिना संतोष नहीं होता, मानो ऐसा करने का धर्मशास्त्र में विधान हो।" वैवाहिक असंगतियाँ समाज में अनेक कुरीतियों को जन्म और पनपने का अवसर देती है। सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों में असंगति नहीं होनी चाहिए। औद्योगीकरण ने समाज में वेश्यावृत्ति, बलात्कार, भिक्षावृत्ति, चोरी आदि अनेक समस्याएँ उत्पन्न की। जिनके कारण मानसिक रोग, अनेक बीमारियाँ, पारिवारिक विघटन तथा व्यक्तित्व विघटन जैसी विसंगतियों को प्रश्रय मिला। समाज में विधवा प्रथा, दहेज, बहुपत्नी विवाह आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों ने नारी को 'वेश्यालय' में शरण के लिए मज़बूर किया।

बदलती हुई परिस्थितियों और नए परिप्रेक्ष्य में संबंधी और परिवार के सदस्यों के संबंधों में एक दरार पड़ गई है, उनके रूढ़ अर्थ परिवर्तित हो गए। संबंधों में परिवर्तन की प्रक्रिया ने 'संयुक्त परिवार' के स्थान पर 'एकाकी' या 'केंद्रक परिवार' को प्रश्रय दिया। पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन की प्रक्रिया ने तनाव, कलह, कुंठा, अकेलापन, अपरिचय आदि विसंगतियाँ उत्पन्न की। पिता-पुत्र अपने संबंधों को नकारकर दोस्तों जैसा व्यवहार करने लगे हैं। एक साथ बैठकर मद्यपान कराते हैं, भाई-बहन आपस में हर विषय पर बात करते हैं, पति-पत्नी एक साथ रहते हुए अलग-अलग कार्य कराते हैं, आपस में दोस्तों जैसा व्यवहार करते हैं, दोनों अपने अलग-अलग दोस्त रखते हैं व अपने पुराने प्रेम-प्रसंगों की चर्चा निस्संकोच करते हैं। पति-पत्नी दोनों आपस में अलग होने के लिए स्वतंत्र हैं।

वर्तमान में व्यक्ति समाज व परिवार दोनों से स्वयं को कटा हुआ पाता है। उसके किसी भी कार्य में निश्चिंतता न होने के कारण उसे अपना व्यक्तित्व अधूरा लगने लगता है, थोड़ा सा सुख व दु:ख उसके लिए असहनीय है। वर्तमान में व्यक्ति एक समय में अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए 'भूमिका द्वंद्व' में उलझ कर रह जाता है। संशय, अनिश्चय, कुंठा, अजनबीपन आदि विसंगतियाँ उसके व्यक्तित्व को विघटित करती हैं। जनसंख्या वृद्धि ने आधुनिक जीवन को जटिल बनाया। बेकारी, गरीबी, भूख ने व्यक्ति को आर्थिक व मानसिक स्तर पर विघटित किया। जिसके कारण नैतिकता और आदर्श उसे बेमानी लगने लगे। बेमानी आदर्शों और दिखावटी नैतिकता ने मनुष्य को 'अकेलापन' का बोध कराया। 'अकेलापन' के इस संत्रास ने व्यक्ति के अंदर मृत्युबोध का भय उत्पन्न किया। वर्तमान परिवेश में वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हुआ, जिसकी परिणति 'व्यक्तिवादी' रूप में हुई।

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वदेशी परिवेश में आधुनिक जीवन की विसंगतियों को प्रश्रय देने में विघटनकारी अनेक विद्रूपताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

(ख) - विदेशी परिवेश : उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से प्रस्फुटित वैज्ञानिक उपलब्धियों ने आस्थाशील विचार प्रणाली एवं चिंतन की स्थापनाओं को गलत प्रमाणित करके मनुष्य को अपने भविष्य के अभियान में निहायत

अकेला बना दिया है। द्वितीय विश्व युद्ध के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ उभर कर सामने आई हैं। नैराश्य, घुटन, दारिद्रय, संत्रास, अनैतिकता तथा दिन-प्रतिदिन घटते जीवन मूल्यों ने समस्त मनुष्य जाति के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। जिसकी परिणति व्यक्ति के अपने अस्तित्व के प्रति सजग होने में हुई है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने विदेशी परिवेश को बहुत प्रभावित किया है तथा पश्चिमी संस्कृति के धार्मिक दृष्टिकोण को एक नयी दिशा दी। पश्चिमी संस्कृति में पुनर्जन्म तथा कर्मवाद पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता व जाति व्यवस्था का अभाव पाया जाता है। विदेशी परिवेश या पश्चिमी संस्कृति में विवाह को धार्मिक संस्कार न मानकर एक समझौता मात्र मानते हैं, यही कारण है कि विवाह के स्थायित्व में कमी पाई जाती है। स्त्री-पुरुष के विवाह पूर्व यौन संबंधों को बुरा नहीं माना जाता, जिसके कारण यौन उन्मुक्तता होती है।

विदेशी संस्कृति ने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया को प्रश्रय दिया। औद्योगीकरण ने नगरों को तीव्र गति से और ग्रामों को धीमी गति से प्रभावित किया है। कृषि के क्षेत्र में नए-नए यंत्रों का उपयोग हुआ जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आधुनिक युग संकट के दौर से गुजर रहा है। धर्म, विज्ञान, नीति, दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में नए-नए संकट उपस्थित हो गए हैं। औद्योगीकरण ने भौतिकवाद व व्यक्तिवाद को प्रश्रय दिया। जाति व्यवस्था को शिथिल कर दिया है। औद्योगीकरण की लहर ने विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान के महत्व को स्पष्ट कर दिया है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ हमें आर्थिक रूप से समृद्ध किया वहीं समाज में ऐसे कारकों को जन्म दिया, जिनसे विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। औद्योगीकरण के कारण वायुमंडल पूर्णत: दूषित हो गया है जिससे अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। औद्योगीकरण ने 'संयुक्त परिवार' को विघटित किया जिससे अलगाव की भावना का विकास हुआ। औद्योगीकरण ने अनेक गंदी बस्तियों को जन्म दिया जिनमें अपराध पलते हैं। औद्योगीकरण ने व्यक्ति को पूर्णत: भौतिकवादी बना दिया।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया की तरह नगरीकरण की प्रक्रिया ने भी व्यक्ति को आधुनिक व भौतिकवादी बनाया। 'संयुक्त परिवार' जाति प्रथा तथा धार्मिक संस्कारों पर आधारित था, नगरीकरण ने इन मान्यताओं को परिवर्तित कर दिया। आधुनिक फैशन तथा प्रचालन नगरों में ही सर्वप्रथम अपनाए जाते हैं। होटल,रेस्तरां, क्लब, सिनेमा आदि मनोरंजन तथा भौतिक साधनों का सुख प्राप्त करने की लालसा ने व्यक्ति को ग्रामों से नगरों की ओर आकर्षित किया है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने स्त्रियों को समाज में उचित सम्मान दिलाने में महती भूमिका निभाई है। नगरीय परिवेश में शिक्षा का महत्व अधिक समझा जाता है। नगरों में अधिकांश व्यवसाय नौकरी होता है, नौकरी के लिए शिक्षा तथा प्रशिक्षण अनिवार्य होता है। नगरीय परिवार में पति-पत्नी का स्थान लगभग समान होता है तथा आपस में सहयोग और सामंजस्य पाया जाता है। परंतु कभी-कभी पति-पत्नी में आपसी तनाव और मनमुटाव के अवसर भी आते हैं। नगरों में ही विवाह-विच्छेद के कानूनों तथा तलाक के नियमों का ज्ञान अधिक होता है। भौतिकवादी संस्कृति ने व्यक्ति को तनाव से ग्रसित कर दिया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के अनुसार –"आज हमारे नगरों में सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष जितना तीव्र है, उतना अभी गाँवों में नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नए पुराने के प्रति सैंकड़ों संस्कार युद्धरत हैं। जीवन बहुत व्यस्त और मशीनी होता जा रहा है। बाहर और मन में कई तरह के प्रभाव एक दूसरे से टकरा रहे हैं।" नगरीय परिवेश में संबंध औपचारिकता मात्र रह गए हैं। सभी अपनी तनावयुक्त ज़िंदगी जी रहे हैं। इससे बड़ी सामाजिक विसंगति क्या हो सकती है कि पड़ोसी के यहाँ मृत्यु होने पर भी व्यक्ति को कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

विदेशी परिवेश या पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत यातायात के आधुनिक तीव्रगामी साधन भी विकसित हुए। इन तीव्रगामी साधनों के कारण व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना सहज हो गया। सुविधा के कारण भारत की सभी जातियों ने इन साधनों का

इस्तेमाल करना आरंभ किया। यातायात के इन साधनों (विमान, रेल, बस, टैक्सी आदि।) ने जाति प्रथा को शिथिल बना दिया है। यातायात के इन साधनों ने जहाँ व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जोड़ा, वहीं इन साधनों के शोर व दूषित धुएँ के कारण 'वायु प्रदूषण' बढ़ता ही जा रहा है। इस शोर में व्यक्ति की आवाज़ दबाकर रह गई है, वह सड़कों पर एक चींटी की भाँति दम तोड़ रहा है।

संचार के साधनों जैसे रेडियो, टेलीविज़न, टेलीफोन तथा समाचार पत्रों आदि ने भी नगरीय आकर्षण को बढ़ाया। संचार के साधनों ने औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया। इन साधनों के विकास ने ग्रामों में आधुनिकता को प्रोत्साहित किय। संचार- साधनों ने सामाजिक विघटन को भी बढ़ावा दिया। दूरदर्शन पर अनेक देश-विदेश के कार्यक्रम दिखाए जाते हैं, जिनका मानव-मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है। विदेशी कार्यक्रमों में खुलापन होता है, अश्लीलता चरमोत्कर्ष पर होती है। संचार माध्यमों से व्यक्ति को संपूर्ण विश्व की जानकारी रहती है। साहित्य भी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण तत्व है। आज का भारतीय साहित्य भी विदेशी साहित्य से अछूता नहीं है। साहित्य में रोमांसवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद जैसी नयी प्रवृत्तियाँ पश्चिम की देन है। अतुकांत काव्य, अकहानी, अकविता भी पश्चिम का प्रभाव है। डॉ. दंगल झाल्टे पश्चिमी साहित्य के बारे में कहते हैं- " आधुनिक पाश्चात्य उपन्यासों में सैक्स संबंधी बातों की एकदम खुली चर्चा की जाती है और लैंगिक जीवन के प्राय: सभी पहलुओं को वैज्ञानिक विश्लेषण के ढंग से उद्घाटित किया जाता है। स्त्री-पुरुष के सामान्य स्वाभाविक आकर्षण के बावजूद कमवासना के अनेक रूप जैसे – समलिंग सैक्स (होमोसैक्स), अतृप्ति की कुंठा (फ्रस्टेशन), अनुचित काम-प्रवृत्ति आदि को भी पाश्चात्य उपन्यासकारों ने फ्रायड आदि के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों का आधार लेकर कलात्मक प्रस्तुतीकरण में ढाल दिया है।" विदेशी साहित्य से हमने बहुत कुछ सीखा। यथार्थवाद के नाम पर अश्लील साहित्य लिखा जाने लगा। भारतीय कलाएँ भी पश्चिम के रंग में रंगी प्रतीत हो रही हैं। भारतीय संगीत और नृत्य में आज पश्चिमी विधाओं का ही अनुसरण हो रहा है। पॉप म्यूज़िक तथा तीव्र संगीत भारत में खूब लोकप्रिय हो रहा है, नृत्य के क्षेत्र में 'बाल रूप डांस' तथा 'रोक एण्ड रोल' जैसी विधाएँ पसंद की जा रही हैं। वादन के क्षेत्र में पश्चिमी वाद्य यंत्रों – गिटार, प्यानो, मैडोलीन, बैंजो, माउथ ऑर्गन का प्रभाव कौन नकार सकता है। सिनेमा पर भी विदेशी परिवेश का प्रभाव पड़ा। आज अनेक विदेशी फ़िल्मों की नकल कर हिंदी फ़िल्में बनाई जा रही हैं या उन्हें डब किय जा रहा है। ब्लू फ़िल्में विदेशी संस्कृति की देन है।

पश्चिमी सभ्यता ने हमारी जीवन-शैली को परिवर्तित कर दिया है। हमार रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान तथा वेषभूषा आदि पर पश्चिम का व्यापक प्रभाव पड़ा। हम लोग केवल तन से भारतीय हैं, अन्य सभी गतिविधियाँ पाश्चात्य रूप ग्रहण कर रही हैं। वस्तुस्थिति यह है कि सामान्य व्यक्ति भी आज कोट-पैंट पहनता है, टाई लगाता है तथा जूता-मौज़ा पहनकर स्वयं को आधुनिक बनाने का प्रयास करता है। जीवन में 'प्रदर्शन' की भावना पश्चिमी सभ्यता का परिणाम है, गृह साज-सज्जा पूर्ण रूप से प्रदर्शन का माध्यम है।

निष्कर्ष

वस्तुत: आधुनिकता का प्रमुख गुण है- 'ऊर्ध्वमुखी चेतना'। आधुनिकता में प्रगतिशीलता के तत्व अनिवार्य रूप से होते हैं। आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन और सामाजिक संबंध जटिल होते जा रहे हैं। इसलिए आधुनिकता का अभिप्राय गलत अथवा सही कार्य से नहीं है, वह तो एक प्रक्रिया है जो दोनों रूपों में होती है। आधुनिकता मनुष्य को अतीत से अलग कर वर्तमान में रह कर प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है। आधुनिकता को पश्चिमीकरण अथवा नगरीकरण समझना तर्कसंगत नहीं है। आधुनिकता परंपरा की विरोधी नहीं अपितु उससे आधार लेकर विकसित होने वाली प्रगतिशील विचारधारा है। विसंगति से अभिप्राय – जीवन की वह स्थिति जहाँ प्रत्येक धारणा का उल्टा रूप दिखाई देता

है। विसंगति को देखा जाए तो वह मानव मस्तिष्क की दुर्बलताओं की उपज है। जीवन में व्यक्ति को संघर्षों का सामना करते हुए जीना पड़ता है यही उसकी सबसे बड़ी विरोधाभास की स्थिति है की न तो वह अपने दायित्वों का निर्वाह ठीक प्रकार से कर पा रहा है और न ही दायित्वों से स्वयं को अलग कर पाया। उसकी त्रिशंकु के समान स्थिति ने उसे हास्यास्पद बना दिया। यह मानव जीवन की विडंबना ही है कि न तो आज वह अपने परिवेश से अलग हो सकता है और न साथ रह सकता है। मानव जीवन की इसी विरोधाभासी स्थित के कारण विसंगतियों का पादुर्भाव हुआ। आज व्यक्ति अपने परिवेश में स्वयं को असहाय व फालतू समझने लगा है तथा वह अपने अस्तित्व की रक्षा करने में लगा हुआ है। स्वदेशी परिवेश को आधुनिक जीवन की विसंगतियों ने प्रभावित किया है। धार्मिक अंधविश्वासी भावनाओं ने मनुष्य को अज्ञानता के गहरे कूप में धकेला, सामाजिक विषमताओं, आर्थिक समस्याओं तथा पारिवारिक कलह के कारण व्यक्ति का जीवन विसंगत हो गया। व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी सोच के कारण आधुनिक युवा पीढ़ी दिग्भ्रमित है और विसंगत जीवन-जीने के लिए अभिशप्त है। पश्चिमी संस्कृति ने हमें एक ओर विकास के पथ पर अग्रसर किया तो दूसरी ओर मनुष्य ग्लैमर की चकाचौंध में खोकर तनाव, अवसाद, अपरिचय, अकेलापन, अजनबीपन, अतृप्ति, कुंठा आदि विसंगतियों से ग्रसित है।

संदर्भ

1. डॉ. बी. बी. सिंह व बी. के. शर्मा : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन – पृष्ठ- 145 , 146
2. डॉ. मदन मोहन भारद्वाज : आधुनिक मराठी नाटकों में युगबोध - पृष्ठ – 14
3. डॉ. नगेंद्र : आलोचक की आस्था {आधुनिकता प्रश्न निबंध से } – पृष्ठ – 34
4. साप्ताहिक हिंदुस्तान: 12 अप्रैल 1981
5. नटरंग: जुलाई-दिसंबर 1990
6. रामधारी सिंह दिनकर: आधुनिक बोध – पृष्ठ 36
7. डॉ. भैरूलाल गर्ग: आज की हिंदी कहानी – पृष्ठ – 36, 23
8. डॉ. इंद्रनाथ मदान: आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य – पृष्ठ – 89
9. विपिन अग्रवाल: आधुनिकता के पहलू - पृष्ठ – 23
10. सं. डॉ. कुमार विमल: अत्याधुनिक हिंदी साहित्य – पृष्ठ- 207
11. बृहत पारिभाषिक शब्द संग्रह (मानविकी) : पृष्ठ-6
12. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ करंट (इंग्लिश एडिसन-1964)- पृष्ठ- 6
13. 'साहित्यिक शब्दावली' : सं. डॉ. प्रेमानारायणटंडन – पृष्ठ-11
14. इंग्लिश और संस्कृत डिक्शनरी (अखिल भारतीय संस्कृत परिषद लखनऊ -1957) – पृष्ठ- 3, 854
15. डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र: नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल – पृष्ठ – 126, 127
16. डॉ. राम सेवक सिंह: एब्सर्ड नाट्य परंपरा- पृष्ठ- 11
17. डॉ. केदारनाथ सिंह: हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच – पृष्ठ – 59
18. ज्ञानोदय (कुबेरनाथ राय – क्रांति, विसंगति और कामू का विद्रोह दर्शन) : अप्रैल 1965 – पृष्ठ – 28
19. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी: नए साहित्य का तर्क शास्त्र – पृष्ठ- 116
20. लाल चंद गुप्त मंगल: अस्तित्वाद और नयी कहानी – पृष्ठ – 38
21. ज्ञानोदय (रवींद्र कालिया - कोज़ी कॉर्नर (एक विसंगति) : जुलाई 1965 – पृष्ठ – 103
22. कमलेश्वर: नई कहानी की भूमिका – पृष्ठ- 15

23. कृष्ण बिहारी मिश्र: आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य – पृष्ठ - 130
24. (श्री गोपाल शरण सिंह 'दहेज की कुप्रथा से हानियाँ' शीर्षक)
25. डॉ. दंगल झाल्टे: नए उपन्यासों में नए प्रयोग : {नए उपन्यास नयी प्रणालियाँ }-पृष्ठ- 5

भाषा संवेदना और आदर्श प्रेम का आख्यान : उसने कहा था

*अनु मित्तल(अग्रवाल)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का विशेष महत्व है। भाषा और संवेदना के स्तर पर इस युग में व्यापक स्तर पर नवीनता देखने को मिलती है। संवेदनात्मक स्तर इस युग के रचनाकारों ने व्यापक समाज के हित को साहित्य के केन्द्र में स्थापित करने की दिशा में विशेष प्रयास किया , लोगों के बीच में स्वाधीन चेतना जाग्रत करने की दिशा में इस युग के प्रयासों का परिणाम हमारे स्वजागरण के रूप में देखा जा सकता है। स्वजगारण के साथ-साथ साहित्य के केन्द्र में आमजन के संवेदना के अंकन की दृष्टि से कथा साहित्य में लेखन इस काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 1850 से 1900 तक उपन्यास और कहानी में विशेष भेद नहीं देखने को मिलता है ।समस्त कथासाहित्य को उपन्यास कहने का चलन था। परवर्ती काल में हिन्दी कहानी और उपन्यास का भेद स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

> आदर्श प्रेमातिरेक की कथा के रूप में उसने कहा था हिन्दी साहित्य की बहुचर्चित और बहुपठित कहानी है। भाषा का संवेदनात्मक ढंग से प्रयोग करके एक बहुत ही आकर्षक विषय वस्तु को गुलेरी जी प्रस्तुत किया है।

हिन्दी गद्य विधाओं को समृद्ध करने की दृष्टि से दिवेद्वी युग और स्वयं महावीर प्रसाद दिवेद्वी का विशेष योगदान है। भाषा और संवेदनात्मक स्तर पर इस काल में हिन्दी साहित्य में प्रौढ़ता आयी। इस युग को जागरण सुधार काल के नाम से भी जाना जाता है। भाषा और संवेदना के स्तर जो नवीकरण भारतेन्दु ने आरम्भ किया था , उसे इस काल के साहित्यकारों ने आगे बढाया। कहानी और उपन्यास के इसका परिणाम देखने को मिलता है। हिन्दी कथा साहित्य में इस कालखण्ड में व्यापक लेखन देखने को मिलता है। जिसमें प्रमुख हैं – इंदुमती , ग्यारह वर्ष का समय , दुलाईवाली, ग्राम, रसिया बालम , कानों में कँगना और उसने कहा था।

हिंदी साहित्य के इतिहास में कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिन्हें जितनी बार पढ़ा जाये उसमें ताजगी देखने को मिलती है ।ऐसी ही एक कहानी है 'उसने कहा था'। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के साथ एक बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि उनके अध्ययन, ज्ञान और रुचि का क्षेत्र हालाँकि बेहद विस्तृत था और उनकी प्रतिभा का प्रसार भी अनेक कृतियों, कृतिरूपों और विधाओं में हुआ था, किन्तु आम हिन्दी पाठक ही नहीं, विद्वानों का एक बड़ा वर्ग भी उन्हें अमर कहानी 'उसने कहा था' के रचनाकार के रूप में ही पहचानता है। इस कहानी की प्रखर चौंध ने उनके बाकी वैविध्य भरे सशक्त कृति संसार को मानो ग्रस लिया है। उनके प्रबल प्रशंसक और प्रखर आलोचक भी अमूमन इसी कहानी को लेकर उलझते रहे हैं।

उसने कहा था हिन्दी की आरम्भिक कहानियों में से है ,लेकिन शिल्प और भाषा की दृष्टि से इसका अवलोकन करें तो यह अपने आप में बेजोड़ है ।इस कहानी के महत्व को रेखांकित करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं कि –

"इस काल की सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय कहानी 'उसने कहा था' है ।इसमें रोमैंटिक आदर्श अपनी पूरी रंगीनी में है। यह अपने परिपार्श्व (सेटिंग) ,चरित्र-कल्पना ,परिणति में रोमैंटिक है ।इसकी तकनीकी उपलब्धियां–नाटकीयता, स्थानिक रंग ,सेटिंग , जीवन्त वर्णन, फ़्लैश बैक-अभूतपूर्व हैं। हिन्दी कहानी

*असिस्टेंट प्रोफेसर, सेपिएन्ट कॉलेज ऑफ़ कामर्स एंड मैनेजमेंट, मैसूर ,कर्नाटक, ईमेल- amittal2121@gmail.com

के इतना विकसित हो जाने पर भी इसकी लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आयी है।"[1]

मानवीय संबंधों और संवेदन के अनेकानेक रूपी जगत में आदर्श प्रेम की इस कथा को पढ़कर मन में एक अजीब सा सुकून उत्पन्न होता है । कहानी के आरम्भ में लेखक कहता है कि – बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जुबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है,और कान पक गये हैं , उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबुकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थापित करते हैं , कभी-कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने तरस खाते हैं .....तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में हर-एक लद्धि वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमडाकर बचो खालसा जी हटो भाई जी ..... ।क्या मजाल कि जी और साहब सुने बिना किसी को हटना पड़े । यह बात नहीं की उनकी जीभ चलती नहीं,पर मीठीछुरी की तरह महीन मार करती हुई यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती ,तो उनकी बचानावाली के ये नमूने हैं –

हट जा जीर्ण जोगिए ,
हट जा करामावालिये,
हट जा पुता प्यारिये ,बच जा लंबी उमरावालिये ।[2]

बोली का मरहम अपने आप में इस बात को ध्वनित करता है कि कहानीकार भाषा और बोली में सहज मानवीय प्रेम के प्रति कितना सजग है ।भाषा संवेदन का इससे बेहतरीन उदहारण शायद ही कहीं देखने को मिले। इस प्रेममय परिवेश में यह क्यूट लव की कथा विकसित होती है । अमृतसर के भीड़-भाड वाले इलाके में एक किशोर जोड़ा मिलता है ,और उनके बीच संवाद होता है । लड़का रोज-रोज पूछता है तेरी कुडमाई हो गई और लड़की धत कहकर चली जाती है , अनजाने ही उनके बीच में एक रिश्ता बंध जाता है और यह रिश्ता ताउम्र निभाता हुआ हम देखटे हैं इस कहानी में। इस कहानी के माध्यम से चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी इस प्रेम कहानी को हमेशा के लिए अमर कर दिया है।

जब लड़के-लड़की बीच अमृतसर में आखिरी मुलाकात होती है और लड़के को पता चलता है कि लड़की की कुडमाई हो गई है तब वह विचलित हो जाता है , महीने भर के बातचीत के शिलाशिले के बाद जब लड़का पूछता है कि तेरी कुडमाई गई तो लड़की कहती है –

हाँ , हो गई।
कब ?
--कल ,देखते नहीं यह रेश्म से कढ़ा हुआ सालू ।[3]

इतना कहकर लड़की भाग जाती है। लड़की के जाने बाद लड़का सीधे अपने घर की ओर चल देता है ,और रास्ते में एक लड़के को नाली में ढ़केल देता है , एक छाबड़ी वाले की दिन भर कमाई गिरा देता है , कुत्ते को पत्थर मारता है .गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेलते हुए एक लड़की से टकरा कर अंधे की उपाधि पाते हुए घर पहुचता है।

हिन्दी साहित्य की आरंभिक कहानियों में शुमार यह कहानी अपने शिल्प और संवेदना में बेजोड़ है ।फ़्लैश-बैक (पूर्व दीप्ति) शैली में लिखित यह कहानी आज भी लोकप्रिय है इसका कारण इसकी भाषा और शिल्प ही है। 1915 में प्रकाशित यह प्रेम के आदर्शों को जीवन्त करते हुए आज भी प्रासंगिक बनी हुई है ।प्रेम का आदर्श तब घनीभूत हो जाता है ,जब सुबेदारिनी लहना सिंह को बुलाती है । क्षणिक मुलाकात और प्रेम अब आदर्श प्रेम में बदल जाता है ,और लहना सिंह का प्रेम जी उठता है। सुबेदारिनी लहना सिंह को बुलाती है और कहती है -

--मुझे पहचाना?
-- नहीं।
-- 'तेरी कुड़माई हो गयी? ... धत् कल हो ...
देखते नही ...गयी, रेशमी बूटों वाला सालू ...

...अमृतसर में
भावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली। करवट
बदली। पसली का घाव बह निकला।
-- वजीरासिंह, पानी पिला उसने कहा था। --

स्वप्न चल रहा हैं। सूबेदारनी कह रही है मैने तेरे --को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौक़ा आया है। पर सरकार ने हम तीमियो की एक घघरिया पलटन क्यो न बना दी जो मै भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नही जिया। सूबेदारनी रोने लगीअब दोनों जाते हैं। मेरे -- तुम्हें याद है !भाग, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ो की लातो पर चले गये थे। और मुझे उठाकर दुकान के तख्त के पास खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।[4]

लहना सिंह के समक्ष स्मृतियाँ स्पष्ट हो उठातीं हैं और यहाँ यह कहानी अपने क्लाइमेक्स पर पहुंचती है । लहना सिंह बारह वर्ष का था जब मामा के यहाँ अमृतसर गया था ,जहाँ उसकी मुलाकात आठ वर्ष की लड़की मिली और दोनों में क्षणिक संवाद और कुछ दिनों की मुलाकात हुई थी । मृत्यु के कुछ समय पहले लहना के सामने वो सारी बातें घूम जातीं हैं , जो 25वर्ष पहले उसके साथ घटित हुईं थीं। लहना सिंह दोनों के प्राणों की रक्षा करता है और कहता है -

'बोधा गाड़ी पर लेट गया ?भला । आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सुबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो, माथा टेकना लिख देना ।और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ीं थीं ।सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड कर कहा- 'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना ।उसने क्या कहा था?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ । मैंने जो कहा,वह लिख देना ,और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते लहना लेट गया ।'वजीर पानी पिला दे और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।'[5]

लहना सिंह जनता है कि उसकी जिन्दगी अब बहुत नही है ,इसी कारण वह अपना सन्देश सूबेदारनी को कहने और लिखने को बोलता है। इस तरह लहना सिंह अपना सर्वोच्च त्याग देकर इस प्रेम कथा को अमर कर देता है। उसे अंतिम समय में सब कुछ उसके समक्ष घूम जाता है –

'मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है ।जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आतीं हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुंध उन पर से हट जाती है।'[6]

यह कहानी वास्तव में हमारे मन के अन्तः में उतरने वाली कहानी है । यह अकारण नहीं है । कहानीकार चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी मूलतः संस्कृत के विद्वान् थे ,लेकिन हिन्दी भाषा में एक ऐसे विषय वस्तु को प्रस्तुत करते हैं ,जो सहज ही मन को सघनता से प्रभावित करती है। कहानी और गीत के भाषा के सन्दर्भ में आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि –

"कविता के क्षेत्र में गीत ,और गद्य में कहानी मानवीय सभ्यता के आद्य अभिव्यक्ति माध्यम कहे जा सकते हैं। ये भाषा के आरंभिक आविष्कार हैं ।भाषा ने गद्य का रूप पहले कहानी में ही धारण किया होगा।"[7]

कहानीकला की प्रौढ़ता और भाषा की परिपक्वता इस कहानी की प्रसिद्धी का आधार है। गुलेरी जी की शैली मुख्यतः वार्तालाप की शैली है जहाँ वे किस्साबयानी के लहज़े में मानो सीधे पाठक से मुख़ातिब होते हैं। यह साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली को सँवरने का काल था। भाषागत प्रयोगों की दृष्टि

से हिन्दी साहित्य का यह काल अत्यंत महत्वपूर्ण है। गुलेरी जी इस कहानी की भाषा के स्तर जो प्रयोग किये हैं ,वो कहीं भी पाठक या आस्वादक को खटकते नहीं। भाषा में पंजाबीपन कहानी के विषय-वस्तु के अभिन्न अंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऐसे प्रयोगों से कहानी में रोचकता आ गयी है। इस कहानी का समग्र अवलोकन करने के रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि-

"आरम्भ के कुछेक बरसों में ही हिंदी कहानी पूरी तरह परिपक्व दिखने लगती है ।इसका पहला महत्वपूर्ण साक्ष्य चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी उसने कहा था है , जो 1915 में सरस्वती में प्रकाशित हुई ।केवल एक कहानी के आधार पर सम्पूर्ण साहित्यिक ख्याति इस प्रसंग ही देखी जा सकती है ,जिसका समानान्तर उदहारण अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा।"[8]

'उसने कहा था' हिन्दी की भले ही आरम्भिक कहानियों में से हो लेकिन इसमें शिल्प और भाषा के स्तर पर उत्कृष्ट प्रयोग देखने को मिलते हैं। भाषा संवेदन और प्रेम के आख्यान के रूप में यह कहानी विशिष्ट है। प्रकाशन के लगभग सौ से अधिक वर्ष हो गये हैं ,लेकिन आज भी इसकी लोकप्रियता उसी रूप में बनी हुई है

सन्दर्भ

1- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास :बच्चन सिंह,322,राधा कृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली,2016

2- http://www.hindikahani.hindi-kavita.com/UsneKahaThaChandradharSharmaGuleri.php

3- http://www.hindikahani.hindi-kavita.com/UsneKahaThaChandradharSharmaGuleri.php

4- http://www.hindikahani.hindi-kavita.com/UsneKahaThaChandradharSharmaGuleri.php

5- http://www.hindikahani.hindi-kavita.com/UsneKahaThaChandradharSharmaGuleri.php

6- http://www.hindikahani.hindi-kavita.com/UsneKahaThaChandradharSharmaGuleri.php

7- हिन्दी गद्य:विन्यास और विकास:रामस्वरूप चतुर्वेदी,118,लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद,2018

8- हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास:रामस्वरूप चतुर्वेदी ,145,लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद,2001

बेरोज़गार की कसक

*डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

सच्चा कवि जीवन की सार्थकता और सच का सतत अन्वेषण हेतु जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को सूक्ष्म रूप से विश्लेषण करता है और उसके नियामक सत्तात्मक संबंधों और ऐतिहासिक शक्तियों के हस्तक्षेप को समझता है। कवि के हस्तक्षेप से मानव/समाज अपने मायावी जाल से मुक्त होता है और वह एक नया अनुभव, एक नई दृष्टि प्राप्त करता है। इस कोटि के सर्जक की वाणी में नकली अनुभूति नहीं मिलेगी, बौद्धिक दासता का अंश नहीं मिलेगा, केवल वह मानव-जीवन के यथार्थ को जनवादी आलोक में प्रत्यंकित कर जीवन के सौंदर्यात्मक पक्ष को उद्बुद्ध करती है। धूमिल इस कोटि के कवि रहे हैं जो 'कविता को भाषा में आदमी होने की तमीज़' के रूप में स्वीकार करते हैं। आपकी कविता 'अक्षरों के बीच गिरे हुए आदमी को पढ़ने के लिए विवश करती है।' 'बेरोज़गारों के तीर्थ' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है। यह बौखलाए हुए आदमी का कच्चा-चिट्ठा पेश करती है। इसके अध्ययन से मन में डर चरने लगता है, विद्रोह भभक उठता है, क्षोभ भर जाता है।

जीवन की कुरूपता को जब कविता अपनी पूरी कसक के साथ सोखती है तो कविता 'धूमिल' हो जाती है। 'बेरोज़गारों के तीर्थ' शीर्षक कविता बौद्धिक तेज़ और भावात्मक सघनता से पाठक को प्रभावित करती है।

जीवन की कुरूपता को जब कविता अपनी पूरी कसक के साथ सोखती है तो कविता 'धूमिल' हो जाती है। 'बेरोज़गारों के तीर्थ' शीर्षक कविता बौद्धिक तेज़ और भावात्मक सघनता से पाठक को प्रभावित करती है। बेरोज़गार की जिंदगी की आत्मा में पैठ कर कविता सत्ता की अमानवीयता को बेनकाब करती है। जिंदगी की आग को दिखाने वाली यह कविता स्वप्न, संकल्पना, विचार, अनुभव, संकेत, दर्शन ले आती और दिखाती है कि धूमिल जिंदगी कैसे लिखते हैं। "धूमिल की कविता प्रहार और पर्दाफाश की कविता है। वह समकालीन कविता के मिज़ाज़ की सार्थक पहचान है। हमारे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में जो मोहभंग, मूल्यहीनता और अर्थव्यवस्था गहराती गई है, उसकी हू-ब-हू नकल समकालीन कविता में आक्रोश, विद्रोह, व्यंग्य और चौंकानेवाली पंक्तियों के माध्यम से देखने को मिलती है।"[1]

रोज़गार मानव के श्रम/सर्जना के सामाजिक विस्तार का नाम है और इसके बल पर वह आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान, आत्मसंतोष, स्वतंत्रता के साथ जीवन में अपनी इच्छा को क्रियान्वित करता है। उसके पास भविष्य है, आशा है, संबंध है, विश्वास है, सम्मान है। रोज़गार जीवन का आधार है जो हर एक युवा मन की हरियाली है। जब सरकार की तरफ़ से रोज़गार कार्यालय बंद किए जाते हैं तो लाखों युवा मन के तारे गायब होने लगते हैं। इससे चारों तरफ़ 'मोहभंग' उत्पन्न होता है। उनके लिए ये रोज़गार कार्यालय सपने हैं, तीर्थ हैं, भविष्य हैं, आशा-आस्था के प्रतीक हैं। इनका बंद हो जाना जीवन के दरवाज़ों का बंद होना है, वह खतरनाक साबित होता है। जब जवान पीढ़ी रोज़गार से वंचित होती है तो 'अंध-कूप' में जा गिरती है। अंध-कूप जीवन की दिशाहीनता, दर्द, संकट, विपदा, कुंठा, निराशा आदि के साथ 'संकीर्ण मिथकीय जंगली दुनिया' को भी ध्वनित करता है जिसमें बेरोज़गार

*एसोसियट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कुसाट, कोच्चिन, केरल-682022, मोबाईल-9446661250, ईमेलः drhebbarillath@gmail.com

आदमी प्रवेश कर जाता है। वहां मानव की सामाजिकता-मानवता के लिए कोई ठांव नहीं है, वह किसी अंधी-गंदी विचारधारा का दलाल बनकर समाज में दीवारें खड़ा करता है और 'प्रदूषित सत्ता' का औज़ार बन जाता है। कविता अपनी सूझ-बूझ से जीवन के इसी दांव-पेंच को चिह्नित करती है।

कविता के आदि से समाप्ति तक जीवन की विषमता का अंधेरा छाया हुआ है। 'अंधड़ की धुंध' में फंसे हुए बेरोज़गार आदमी की जिंदगी विवशता, विपन्नता और निस्सहायता का पर्याय है। जीवन से छूट जाने का दर्द कविता अपनी शुरूआत में ही मुखरित करती दिखाई देती है। कवि यही बताना चाहता है कि रोज़गार दफ़्तरों का उन्मूलन जीवन का उन्मूलन है। इस निर्णय से आहत लोगों की हाय-हाय कोई नहीं सुनता है। बेहद दुखद बात यह है कि हमारी 'लोकतंत्रात्मक सत्ता' 'मौन' है, देश की 'संसद मौन है।' यह 'मौन' असफल लोकतंत्र की निशानी है। ऐसा माना जाता है कि किसी समाज का युवा वर्ग किसी राष्ट्र विशेष के भविष्य का प्रतीक है। विडंबना यही है कि वही युवा वर्ग व्यवस्था के आतंक का शिकार होकर बेरोज़गार हो जाता है। इसका दर्द बेरोज़गार आदमी को कुतर-कुतर खा जाता है, उसका शरीर गल-ढल जाता है, मन भारी हो उठता है। जीते-जीते वह डूब जाने का अनुभव करता है, उसका दिल-दिमाग पत्थर हो जाता है। वह अपने चारों तरफ़ दीवारों के उठते जाने का एहसास करता है, अंतर-बाहर वह कंकाल हो जाता है। जो बेरोज़गारी के दर्द से वाकिफियत है, वही उस घनीभूत पीड़ा को जान सकता है। कविता को लोकतंत्र द्वारा इस प्रकार के निर्णय लिए जाने की उम्मीद नहीं थी। कविता का भरोसा यही है कि सच्चा लोकतंत्र जन-विमुख नहीं हो सकता है, सपनों को बंद नहीं करता है। वह सदैव जन-कल्याण को, सकारात्मक सामाजिक विकास को सर्वोच्च वरीयता देता है। 'सामाजिक विकास का मुख्य सरोकार सामाजिक न्याय और विकास के लाभों का समान वितरण है। सामाजिक विकास का लक्ष्य अंततोगत्वा एक अधिक मानवतावादी समाज की प्राप्ति है, जिसकी संस्थाएं और संगठन मानवीय आवश्यकताओं के प्रति अधिक उपयुक्त ढंग से प्रतिक्रिया अदा करते हैं।'[2]

जब मानव अपने रोज़गार से वंचित होता है तो जीवन में सच्ची स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर सकता है। जटिल जीवन से उत्पन्न कुंठा, आकुलता, अधिकारहीनता, दबाव, सर्जनहीनता, अशांति, सत्ताहीनता आदि अस्वतंत्र जीवन के तत्व एक-एक करके उसे घेरने लगते हैं। इन सबके आक्रमण-अतिक्रमण से बेरोज़गार निष्क्रिय होता है, उसके मन की सृजनात्मकता, नैतिकता, आदर्श आदि धीरे-धीरे ओझल होने लगते हैं। विक्षुब्धता की आग और पूंजीवादी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की नृशंसता पर क्षोभ प्रकट करते हुए धूमिल की कविता पहचानती है कि 'आज़ादी सिर्फ थके हुए तीन रंगों का नाम नहीं है, जिन्हें एक पहिया ढोता है।' सच्ची स्वतंत्रता जीवन के समस्त बंधनों से मुक्ति का नाम है। बेरोज़गार भले ही वह शिक्षित हो या अशिक्षित, उसका जीवन परतंत्र का पर्याय बन जाता है, वही आज उद्विग्न होकर खुदकुशी के लिए विवश है। इसके लिए हमारी शिक्षा व्यवस्था भी जिम्मेदार है। शिक्षा व्यवस्था पर टिप्पणी करने वाली कविता कहती है कि "इन विश्वविद्यालयों में/जीविका के स्तर पर हज़ारों हज़ार/खानाबदोश पैदा हो रहे हैं।" मतलब यही है कि हमारी शिक्षा-पद्धति में मानव के जीवन के स्तर को उन्नत करने की कोई योजना नहीं है। इस शिक्षा-पद्धति में सबके सब कठपुतली होते-बनते जा रहे हैं। आज की शिक्षा कुछ ऐसी कृत्रिम क्षमताएं पैदा करती है, इनसे बाज़ार संपन्न हो जाए, उसे सस्ते में श्रम प्राप्त हो। शिक्षा का परम ध्येय आंतरिक क्षमताओं का सामाजिक विस्तार है। स्वस्थ शिक्षा लोकतांत्रिक समाज का सृजन करती है और वह तदनुरूप ज्ञान, मनोवृत्ति, क्षमता, मूल्य, आदर्श का विकास करती है, जिससे मानव की सर्वतोन्मुखी मुक्ति संभव हो सके। ऐसा ज्ञान मानव-मानव की सामाजिक सक्रियता को बढ़ाता है, जन-जन की सेवा का मार्ग प्रशस्त करता है। शिक्षित व्यक्ति अपने समाज की मुक्ति की कामना करता है, अधिकारों को निषेध करने वाली सामाजिक परिस्थितियों के विरुद्ध जनतंत्रात्मक लड़ाई लड़कर उनके उन्मूलन करने के लिए कटिबद्ध होता है। आशा

की जाती है कि इससे समाज मानवोन्मुख हो जाए। इससे आदमी आदमी बनता है, और उसमें जीवन से जूझने का साहस भर जाता है। शिक्षा की सीमा पर दृष्टिपात करते हुए धूमिल का कहना है- "जब मैं अपने ही जैसे किसी आदमी से बात करता हूँ,/साक्षर है पर समझदार नहीं है। समझ है लेकिन/साहस नहीं है। वह अपने खिलाफ़ चलाने वाली/साज़िश का विरोध खुल कर नहीं कर पाता।/और इस कमज़ोरी को मैं जानता हूँ। लेकिन इसलिए/वह आम मामूली आदमी मेरा साधन नहीं है/यह मेरे अनुभव का सहभागी है, बनता है।" (कविता के द्वारा हस्तक्षेप) शिक्षा की बदहालत पर विचार करते हुए 'चिट्ठी' (अखिलेश की कहानी) के त्रिलोकी की असहमति के शब्द अब मेरे दिल में दस्तक दे रहे हैं। त्रिलोकी साफ़-साफ़ कहता है कि आज की शिक्षा-पद्धति आदमी को विकलांग बना देती है। वह कहता है- "जिसके पास कोई काम नहीं होता, वह आदमी नहीं होता। हम आदमी नहीं है...इस व्यवस्था ने हमें आदमी नहीं रहने दिया। हमसे हमारा होना छीन लिया गया...।"[3] बातों से यह जाहिर होता है कि बेरोज़गार आदमी को जीने का एहसास नहीं होता है, वह मानव के रूप में जी नहीं पाता है। उसके लिए "ईश्वर, देश, धर्म, नस्ल, बिरादरी गोत्र/वाद, घेरा, इरादा, प्यार, मौसम, मानवता/मृत्यु, जीवन, शब्दों की/यह लंबी फेहरिस्त बकवास है।" जीवन की सतर्कता कविता के लिए टूटी हुई चीज़ों की असावधानी का इतिहास है। जब समाज बेरोज़गार व्यक्ति के प्रति सहानुभूति दर्शाने लगता है तो जीवन की असफलता की भावना मन में लबालब भर जाती है। जब किसी व्यक्ति के मन में जीवन की निरर्थकता-पराजय का बोध संचरित होता है तो उसके सामने आत्महत्या का रास्ता खुल जाता है। बेरोज़गार आदमी का जीवन से चला जाना एक सामाजिक विड़ंबना है। उसकी आत्महत्या स्वाभाविक नहीं है, वह सत्ता के नीति-नियमों से उत्पन्न निराशा-विवशता का परिणाम है। सत्ता की आंखों में आत्महत्या मृत्यु मात्र है, लेकिन यह अस्वाभाविक है, यह व्यवस्था द्वारा किया गया कत्ल है। बेरोज़गारों के जीवन से भाग खड़े हो जाने के लिए व्यवस्था ही उत्तरदायी है। वर्तमान भूमंडलीकृत समाज में, यहां तक कि श्रमिकों की बेरोज़गारी एक गंभीर मसला है, ऐसे क्षण में प्रस्तुत कविता को बार-बार पढ़ा-पढाया जाना चाहिए। मुनाफ़े को एकमात्र लक्ष्य के रूप में स्वीकार करने वाला पूंजीवाद जीवन के सत्यनाश का कारण बनता है। "औद्योगिक शक्तियों का सामयिक-तात्कालिक जोड़-घटाव और बाज़ार के हाथों कठपुतली की तरह श्रम-शक्ति का नर्तन एक आम घटना है। स्वाभाविक है कि पारंपरिक आदर्श, राज्य व्यवस्था, मानवीय मूल्य और श्रमिक आंदोलन का ह्रास हो रहा है... ऐसे अंधेरे समय में भूख, बेकारी, बेरोज़गारी से तबाह होते लोग धर्म, जाति और अलगाववाद की राजनीति में फंस जाते हैं।"[4] मानव को अमानवीय बना देने की जीवन स्थिति से धूमिल की कविता वाकिफ़ है- 'पशुता सिर्फ पूंछ होने की मज़बूरी नहीं है, वह आदमी को भी वहीं ले जाती है जहां भूख है।' (पटकथा) भूख ही एक मात्र सच है, वही सारे के सारे सामाजिक अंतर्विरोधों की जड़ है। हमारी व्यवस्था जीवन की ज्वलंत समस्या से मुंह चिढ़ाकर धनाढ्यों के हितों की रक्षा के लिए सिर झुक बैठती है। उनकी महत्वाकांक्षाओं को साकार करना, उनके पैरों के पसर जाने का परिवेश निर्मित करना तंत्र के उद्देश्य रह गए हैं। हमारे राष्ट्र की संपत्ति पर ताक लगाकर बैठी पूंजी की उंगली पर नाचने वाला हमारा तंत्र आदमखोर है। इसलिए बेरोज़गार आदमी की रुलाई 'सेहत की दवा' बन जाती है। शासन-पूंजी के गठजोड़ को समझने वाली कविता कहती है कि इस लोकतंत्र में "न कोई प्रजा है/न कोई तंत्र है/यह आदमी के खिलाफ़/आदमी का खुला-सा/षड्यंत्र है।" इस प्रकार के अनगिनत षड़यंत्रों से अब की जनता विश्वभर आहत होती रहती है, ऐसे कालखंड में धूमिल व्यवस्था की कूट-नीति को खोलते हैं और संघर्ष का मशाल जलाते हैं। वैकल्पिक जनतंत्र की तलाश करने वाले हमारे समाज का अंतर्मन इस मशाल की रोशनी से द्योतित हो उठता है। और कविता यह भी सिखाती है कि कवि के सर्जनात्मक हस्तक्षेप का क्या मतलब होता है।

संदर्भः

1. तिवारी, संतोष कुमार. *अज्ञेय से अरुण कमल.* भारतीय ग्रंथ निकेतनः नई दिल्ली. 2005, पृ. 19.
2. दुबे, श्यामाचरण. *विकास का समाजशास्त्र.* वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली. 2010, पृ. 88.
3. अखिलेश. *पांच बेहतरीन कहानियां.* वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली. 2013, पृ. 60.
4. खेतान, प्रभा. *भूमंडलीकरणः ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र.* सामयिक प्राकाशनः नई दिल्ली. 2014. पृ. 207-8.

 ISSN: 2454-2725

ऋता शुक्ल की कहानियों में चित्रित स्त्री-छवि

***साक्षी कुमारी**

परिवार, समाज की सबसे पहली और कई अर्थों में सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। ऋता शुक्ल की कहानियों की भावभूमि परिवार नामक संस्था पर आश्रित है। परिवार की बुनावट से लेकर उसके भीतर परिवेशगत बदलावों के साथ उपस्थित समस्याओं का जितने कोणों से उन्होंने विवेचित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। पीढ़ियों का अंतराल, उपेक्षित बुजुर्ग, संत्रास झेलती स्त्रियाँ आदि उनकी कहानियों की कथात्मक भूमि रही है। 'स्त्री-जीवन' और स्त्री-जीवन की त्रासदी को जितनी बारीकी से ऋता शुक्ल रचती और गढ़ती हैं, वह समकालीन हिन्दी-कहानी में मौजूद स्त्री-विमर्श की कोरि बहसों से दूर यथार्थ व अनुभव आधारित हैं जहाँ नारी-आंदोलनों और सशक्तिकरण के नारे प्रायः सुप्त नजर आते हैं। उनकी कहानियों में चित्रित मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय स्त्री-पात्र सहज रूप में अपनी त्रासदी और दुःख के साथ सिसकियाँ लेती उपस्थित हैं। इस रूप में उनकी स्त्री-उत्पीड़न संबंधी कहानियाँ आरोपित विद्रोह वादिता से मुक्ति और व्यावहारिक जीवन अनुभव से युक्त हैं। ग्राम और कस्बों में जीवन जीने वाली उनकी स्त्रियाँ विद्रोह या आंदोलन का झंडा भले ही हाथों में न उठायीं हों, परन्तु विद्रोह और आक्रोश को भीतर भीतर ही आग बना देने की आकांक्षा से भरी पड़ी हैं।

'स्त्री-जीवन' और स्त्री-जीवन की त्रासदी को जितनी बारीकी से ऋता शुक्ल रचती और गढ़ती हैं, वह समकालीन हिन्दी-कहानी में मौजूद स्त्री-विमर्श की कोरि बहसों से दूर यथार्थ व अनुभव आधारित हैं जहाँ नारी-आंदोलनों और सशक्तिकरण के नारे प्रायः सुप्त नजर आते हैं।

पुरुष सत्ता का दंश झेलती स्त्रियाँ आज भी अपने लिए असमान के 'चौकोर' रूप को त्याग 'गोलाकार' रूप की तलाश में जद्दोजहद करती नजर आ रही है। ऋता शुक्ल ने घर के चौखट से निकल शहर और कस्बे में अपने लिए जगह तलाशती स्त्रियों का जीवन संघर्ष्ज रूपायित किया है। आज भी 'स्त्री' को लेकर हमारा समाज भयंकर हीनता बोध से ग्रस्त है और स्त्रियों के प्रति शोषण व अत्याचार, शारीरिक व मानसिक हिंसा जारी है। हमने 'नारों' और 'योजनाओं' में भले ही 'स्त्री-शक्ति' का परचम लहरा लिया हो, व्यावहारिक धरातल पर यह अधूरा ही है। इंदिरा गाँधी ने भी कहा था- ''6सिद्धांततः नारी ने समानता के अधिकार की लड़ाई जीत ली थी आजादी के बाद उसे हमारे संविधान का अंग भी बनाया गया परन्तु व्यवहार में स्थिति पूर्णतः भिन्न है।''1

ऋता शुक्ल ने अपने कथा-साहित्य विशेषकर कहानियों में भारतीय सामाजिक व्यवस्था में 'स्त्री' की दशा, दुर्दशा और उसके संघर्षमयी जीवन-गाथा को सहृदयता के साथ वर्णित किया हैं प्रसंग चाहे पौराणिक हो या समकालीन दोनों दशाओं में स्त्री-जीवन की विडंबनाओं, उसके प्रश्नों और उसके त्रासद अवस्था का मनोवैज्ञानिक व मानवतावादी चित्रण में वे अपने समकालीन रचनाकारों से अलग और विशिष्ट हैं। उन्होंने स्त्री-जीवन को रचने में 'नारीवाद' और 'उग्रनारीवादी भावना' की जगह मानवतावादी समभाव दृष्टि को तरज़ीह दी है जहाँ मासूम सवाल मात्र ही पूरी पितृसत्ता

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

के हृदय को छलनी-छलनी कर जाने में सक्षम है।

ऋता शुक्ल ने अपनी कहानियों में स्त्री-जीवन के सभी पहलुओं पर दृष्टि केन्द्रित की है। उनकी कहानियों में एक ओर जहाँ अवला असहाय और पीड़ित स्त्री-जीवन चित्रित है वहीं दूसरी ओर संघर्ष्ज और प्रतिकार करती आधुनिक स्त्रियाँ हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री रूप में पुत्री का जन्म अभिशाप माना जाता रहा है। भ्रूण हत्या, प्रसव-पूर्व लिंग परीक्षण से लेकर पालन-पोषण में व्यापक अंतर इस तथ्य के प्रमाण हैं। 'शर्मा गति हेतु सुमति' कहानी की पात्र 'चंपावती' के द्वाराऋता शुक्ल ने इस सच्चाई को सहजतापूर्वक अंकित किया है- ''क्या कहा, रोटी चाहिए, मालपुआ नहीं। बड़ी आयी है पटरानी बनकर। खेतिहर की बेटी और घमंड सातवें आसमान का। ठहर अभी तेरा झोंटा पकड़कर....।''2 इस कहानी के कथानायक सुखदेव साहू के लिए पढ़ने-लिखने का अधिकार केवल लड़कों के लिए है, लड़कियों के लिए पढ़ना-लिखना वर्जित है। स्वंय पिता जब अन्यायकर्ता हो तो ऐसे में स्त्री-उद्धार की बात बेमानी ही हैं लेखिका कहती हैं- ''पुरुष वृति का फैलाव सारे गाँव की चेतना को ग्रसित करता जा रहा है। चंपावती अकेली है और सारा गाँव उसके सामने विरोध की मुद्रा में खड़ा है। प्रतिपक्षियों की शक्ति उनकी सदियों पुरानी रूढ़ियाँ हैं और अपनी सही मुक्ति के लिए किसी नई दिशा का संधान करती चंपावती अकेली है, निपट अकेली!''3 निपट अकेले होते हुए भी चंपावती हार मानने को तैयार नहीं है, वह जूझ रही है सदियों से पुरुष सत्ता द्वारा निर्मित बेड़ियों को तोड़ने के लिए। इसी प्रकार 'ग्राम क्षेत्रे-कुरु क्षेत्रे' कहानी में रम रतिया बलत्कृत होने के बावजूद पूरे समाज से अकेले लोहा लेती हुई खड़ी है।

ऋता शुक्ल ने अपनी कहानियों में प्रताड़ना ग्रसित स्त्रियों की मानसिक रूग्णता की अवस्था को भी संजीदगी से चित्रित किया है। दूर जाना है, शर्मा गति देहु सुमति आदि कहानियों में मानसिक विक्षिप्तता की स्थिति को प्राप्त स्त्रियों की करूण कथा वर्णित है। 'दूर जाना है' कहानी की सुनंदा की अवस्था अंकित करते हुए लेखिका लिखती हैं- ''बेतरतीबी से पहनी गई नीली बनारसी साड़ी, निहायत बेढंगा सा प्रसाधन, नकली बालों की लंबी चोटी, जुड़े की शक्ल में समेटने की असफल कोशिशों के बाद उसकी वह खोखली हँसी....।3

वास्तव में यह मानसिक विक्षिप्तता हमारे समाज की है जहाँ स्त्रियाँ क्रूर हँसी का शिकार बन आज भी दोयम दर्जे की नागरिक होने और बने रहने पर विवश है। 'चारूलता', 'चंपावती', 'सुनंदा', 'लावण्य प्रभा' आदि की स्त्री-पात्रों की शारीरिक और मानसिक विकलांगता पुरुष-प्रदत्त है न कि प्रकृति प्रदत्त। ऐसे में हमें यह सोचना होगा कि समाज के एक पहिए को विकलांग बनाकर हम किस विकास-गति को पाना चाहते हैं? ऋता शुकल की स्त्रियाँ अपनी विकलांगता से हताश निराश होकर चुप्पी नहीं साध लेती बल्कि वह समाज से तीखा प्रतिकार करती है- ''मुझे सचमुच कोई क्लेश नहीं है....। मेरे चारों तरफ अखंड आस्थाओं की एक दुनिया है। खंडित स्वप्नों की साकारता का संकल्प जिनमें है, मैं उन्हीं अबोध जिन्दगियों की नींद सोती जागती हूँ। तुम्हारे इस विकलांग समाज से लड़ने की ताकत इन्हें देनी है। मेरे इस भरे पूरे संसार को तुम्हारे सद्भाव के सिवा और कुछ भी नहीं चाहिए।''5

यहाँ कहानीकार ने साफ कर दिया है कि समाज विकलांग हो गया है, स्त्रियाँ नहीं। विकलांग नार को घृणा से देखने वाला समाज स्वंय विकलांगता का शिकार है, उसकी सोच विक्षिप्तता का शिकार है। स्त्री-समाज में आयी जागृति और उसके फलस्वरूप पैदा हुई विद्रोह भावना को भी ऋता शुक्ल ने अपनी कहानियों में स्वर दिया है। 'ह बे प्रभात ह बे' कहानी की 'प्रिया', छुटकारा कहानी की 'इमली', 'ग्राम-क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे' की

'रमरतिया फुआ' आदि पात्र विद्रोह स्वर का प्रतिनिधित्व करती है- ''केहु साथ ना दीदी न हम अकेले लड़ब, काका, आपन हक खातिर आपन कलंक मरावे खातिर....।''6

ऋता शुक्ल के स्त्री-पात्र नारीवादी आंदोलन की उग्रता धारण नहीं करती वरन् सहज नारीत्व के साथ अपना हक माँगती नजर आती है, यही कारण है कि दांपत्य जीवन के संगिनी रूप में भी वे अपना दायित्व निष्ठापूर्वक निभाती नजर आती हैं उनका मानना है कि स्त्री और पुरुष में समानता का उद्घोष तब होगा जब देनें के बीच परस्पर प्रेमपूर्ण सद्भाव और समभाव पनपेगा। 'कल्पांतर' कहानी की 'अरूणा' 'कनिष्ठा उँगली का पाप' कहानी की 'अनुराधा' 'पुनरावतरण' कहानी की 'सुलेखा' 'दंड-विधान' कहानी की 'रत्ना श्री' आदि पात्र ऋता शुक्ल के आदर्श पात्र हैं जो अपने पति के साथ समभाव के तराजू पर खड़ी नजर आती है बिना किसी प्रतिस्पर्ध के ''नारी अपने आपको मिटाकर पुरुष की उस संकल्प शक्ति को सार्थक बनाती हैं उसका दायित्व पुरुष से लक्ष गुना अधिक है।''7

ऋता शुक्ल की स्त्री-चेतना की विशिष्ट ता यह है कि वे केवल 'स्त्री' पक्ष की पैरोकार नहीं है बल्कि स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के शोषण की वास्तविकता को भी रेखांकित करना नहीं भूलतीं। 'पुरुष-सत्ता' निश्चित रूप से स्त्री-दासता का एक बड़ा कारण रहा है परन्तु इस सत्ता संरचना के पोषण-पल्लवन में स्त्रियों का भी योग कम नहीं है। इस कटु तथ्य को ऋता जी ने अपनी कई कहानियों में रेखांकित किया है जो उनकी तटस्थता और लेखकीय ईमानदारी को संकेतितकरता है। 'अमरो' कहानी की 'अमरो की दादी' 'दुभिसंधि्' कहानी की 'मिसेस प्रसाद', 'मिसेस राय', 'दंड विधान' कहानी की 'सुलक्षणा' आदि पात्रों के माध्यम से ऋता शुक्ल ने उपरोक्त समस्या को उद्घाटित किया है। दूर जाना है 'कहानी में अपनी पढ़ी लिखी बेटी सुनंदा का विरोध करने वाली माँ का चित्रण करते हुए लेखिका ने इस विरोधाभास को प्रकट किया है- ''बाभन बिसुन के धिया मुँह उधर ले उकालतखाना में बडठी, केस मुकदमा फरियाई। ना ए बचिया, गाँव-गँवार में सभे हँसी कुबोल कढाई। हम कइसे सहब?''8 खासकर शिक्षित महिलाएं उपरोक्त दंश का लगातार शिकार होती रही हैं, जहाँ उनके अपने ही उसका विरोध करते नजर आते हैं- ''यह लड़की सहर से ऊँची विधा पाकर लौटी न जाने क्या क्या लीला दिखावे।''9 इसी प्रकार 'दंड-विधान' कहानी में जबरन रत्ना श्री को उसकी भाभी द्वारा नए बनावटी दुनिया में धकेलने का चित्र अंकित है- ''इस घर के अपने तौर तरीके हैं। सोसाइटी में रहना है तो किसी पार्टी क्लब, फ्लश, हौजी, इनसे परहेज तो नहीं किया जा सकता ना.... तुम्हारा घर से निकलना बहुत जरूरी है।''10 कहानीकार ने अपनी कहानियों में नारी का विरोध करती हुई उस नारी का भी चित्र अंकित किया है जो स्वयं दुःख झेलती हुई भी दूसरे नारी के दर्द को समझ नहीं पा रही है या उसी पुरुष जालसाजी का शिकार है जिसने उसे यह मानसिक पृष्ठभूमि दी है। ऋता शुक्ल की कहानियों में ऐसी नारी पात्रों की अभिव्यक्ति समाज संरचना के एक अलग पहलू को हमारे सामने प्रकट करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ऋता शुक्ल ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विविध आयामों को यथार्थवादी मुहावरे में अंकित किया है जहाँ एक ओर पितृसत्ता का दंश और शोषण झेलती स्त्रियाँ हैं, तो कहीं आदर्श दांपत्य को संभालती हुई देवियाँ, तो कहीं विकलांगता के बावजूद प्रतिरोध और संघर्ष करती नई स्त्रियाँ हैं तो कहीं स्वयं नारी होकर नारी का ही विरोध व शोषण करती हुई अबोध स्त्रियाँ हैं।

संदर्भ सूचीः-

1. अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष 1975 के अवसर पर प्रसारित रेडियो संदेश : इंदिरा गाँधी।
2. शर्मा गति देहु सुमति : मानुस तन, ऋता शुक्ल, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999, पृ. 31
3. वही, पृ. 38
4. दूर जाना है : कायांतरण, ऋता शुक्ल, प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003, पृ. 33
5. बृहन्नला : मानुस तन, ऋता शुक्ल, पृ. 28
6. ग्राम क्षेत्रे - कुरुक्षेत्र' : मानुसतन, ऋता शुक्ल, पृ. 77
7. कनिष्ठा उँगली का पाप : ऋता शुक्ल, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994, पृ. 16
8. दूर जाना है, कायांतरण : ऋता शुक्ल, पृ. 31
9. ग्राम क्षेत्रे - कुरु क्षेत्रे : मानुस तन, ऋता शुक्ल, पृ. 84
10. दंड विधान : कायांतरण, ऋता शुक्ल, पृ. 124

'मीठी नीम' के जरिये पर्यावरण संरक्षण की अपील

*कमलेश

हिंदी उपन्यासों में पर्यावरण का विषय अत्यंत ज्वलंत प्रश्न बनकर उभरा है कई लेखक और लेखिकाओं ने पर्यावरणीय समस्या को एक गंभीर विषय के रूप में लिया है और अपने उपन्यासों में प्राकृतिक संपदा जल, जंगल और जमीन के असीमित दोहन और उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं का बखूबी चित्रण किया है तथा समाज में यह उद्देश्य प्रसारित करने का प्रयत्न किया कि जब तक मानव एवं प्राकृतिक पर्यावरण में परस्पर आदान-प्रदान परक सामंजस्य नहीं होता तब तक विकास की गति अवरुद्ध ही रहेगी और यूं ही हमारे प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास होता रहेगा जिसका खामियाजा स्वयं मानव जाति को उठाना पड़ेगा। ऐसे कई बेहतरीन उपन्यास हिंदी में लिखे गए हैं जिनमें पर्यावरण के संरक्षक को मूर्त रूप में दिखाया गया। कुसुम कुमार का 'मीठी नीम' एक ऐसा ही उपन्यास है जिसमें मानवीय क्रियाकलापों द्वारा होने वाले प्रकृति में परिवर्तनों को लक्षित किया गया है और इससे पारिस्थितिक संतुलन भी बिगड़ने लगा है जिससे ऋतुएं भी समय से नहीं आतीं, धरती से हरियाली का स्थान सीमेंट की बनी पक्की सड़कों और बहुमंजिला इमारतों ने लिया है। इसी की ओर संकेत करते हुए उपन्यास में पृथ्वी को हरा भरा बनाने की अपील की गई है।

> 'मीठी नीम' पर्यावरणीय चिंताओं और पर्यावरण की ओर संरक्षण की जन जागृति पर आधारित इक्कीसवी सदी का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। लेखिका कुसुम कुमार इस उपन्यास में कई प्रश्नों एवं परिस्थितियों से हमारा सामना करवाती है और हरे की वकालत में प्रतिबद्ध रहने वाली पात्र ओमना के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की अपील करती दिखाई देती है।

उपन्यास का आरंभ ही ओमना के हरित प्रेम से होता है, प्रयोगों की जिद, कल्पना के पंख और उसका अपना विश्वास उसके साथ है वह इसी के बल पर अपने आसपास हरे को प्रसारित करने के निरन्तर नए नए प्रयोग करती रहती है। उसका अटूट विश्वास है कि उसका हरे को विस्तारित करने का यह स्वप्न कभी तो यथार्थ में परिवर्तित होगा ही। चूँकि ओमना निरन्तर हरित हरे की ओर अग्रसर है इसलिए लेखिका ओमना के माध्यम से यही संदेश जन जन तक प्रेषित करना चाहती है कि हमें भी अपना मन हरे की ओर ले जाना चाहिए। हरा रंग ऊर्जा का प्रतीक है, स्फूर्ति - ताज़गी का प्रतीक है, जीवन का प्रतीक है और यही हरा रंग हरियाली यानी हरी भरी धरा में विद्यमान है कहने का तात्पर्य यह है कि यदि सर्वत्र हरियाली, हरित हरा फैला होगा तो जीवन भी ऊर्जा, स्फूर्ति, ताज़गी से पूर्ण होगा और इसी जीवन को सुरक्षित रखने के लिए हरे को सुरक्षित रखना अनिवार्य हो जाता है। सम्पूर्ण संसार में प्रकृति ही ऐसी है जो न ऊब पैदा करती है न ही थकाती है। उपन्यास की पात्र ओमना यही संदेश देती है कि *"मन को कहीं न कहीं रमना होता है। हरे में रमे, तो मनुष्य की तुलना में कहीं वरदा"*(२) मनुष्य में तो एक समय के बाद विरक्ति उत्पन्न हो सकती है लेकिन प्रकृति हमें सदा ही ऊर्जस्वित करती है। प्रकृति हमें हमारी क्षमताओं से परिचित कराती है और वैसे भी *'हम ऐसी दुनिया में रहते हैं जिसमें प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। जल, वायु, खनिज, तेल, घास के मैदान, सागर, कृषि और मवेशियों से मिलने वाली सभी वस्तुएं – ये सभी हमारी जीवन रक्षक व्यवस्थाओं के अंग हैं। जैसे जैसे हमारी जनसंख्या बढ़ेगी और हममें से हर एक व्यक्ति द्वारा संसाधनों का उपयोग भी बढ़ेगा, तो पृथ्वी के संसाधनों का भंडार निश्चित रूप से कम होगा।'*(३) ऐसे में आवश्यकता है

*शोधार्थी, पीएच.डी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, मोबाइल – 9958356201, ईमेल – Kamleshrajmigh@gmail.com

संसाधनों के सीमित उपयोग की जिससे हमारा ही नहीं आगे आने वाली पीढ़ियों के जीवन सुरक्षित रह सके। इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण के प्रति समाज को जागरूक कर अपनी प्रतिबद्धता भी सुनिश्चित करनी होगी। जो कि ओमना बखूबी करती है उसे दादी बनने की खुशी है लेकिन अपने पौधों को छोड़कर वह बेटे के साथ न जाने का निश्चय करती है। यही प्रकृति प्रेम उसे एक ऊँचे आसन पर प्रतिष्ठित करता है जिससे प्रेरणा पाकर एक नहीं अनेकों ओमना बन सकती है। जैसे उपन्यास में प्रीति और शांता बनी।

जनजीवन की सुविधाओं के लिए, शहरी विकास के लिए संसाधनों का कुछ प्रयोग तो अवश्य ही किया जाता है जैसे दिल्ली को ही लें, दिल्ली में मेट्रो सेवा शुरू हुई, सभी दिल्लीवासियों के लिए यह राहत की बात थी, लेकिन लेखिका की दृष्टि प्रकृति की ओर भी रही है। एक ओर ओमना के भीतर गाड़ी में बैठने की उत्सुकता है तो दूसरी ओर जिन रास्तों से होकर मेट्रो गुजरी है वह भी उसकी दृष्टि से ओझल नहीं रह सका है। यहाँ कुसुम कुमार लिखे बिना नहीं रह पाती कि *"इस गाड़ी की सफलता की पृष्ठभूमि में शहर के कुछ वयोवृद्ध वृक्षों का योगदान। यह सच्चाई सरकारों, नौकरशाहों से अधिक पैदल पथिक जानते।"*(४) चाहे मैट्रो का विस्तार हो अथवा रोड़ी तारकोल की सड़कें बनानी हों, कुछ प्राप्त करने के लिए कुछ त्याग करना आवश्यक हो जाता है, यही कारण है कि बीच में पड़ने वाले हरे भरे, छोटे बड़े वृक्ष तो काट ही दिए जाते हैं। दिल्ली के विकास की गति को देखकर ओमना कहती है *"दिल्ली नाम की राजधानी, जो निखालिस पत्थर सीमेंट का जंगल, जहाँ किन्हीं जटाधारी वृक्षों की बलि सिर्फ इसलिए चढ़ाई जाती : रोड़ी पत्थर, तारकोल की सड़कों, पुलों को विस्तार देना है।"(५)* जब विकास की गति तीव्रता से बढ़ने लगे तो समझ लेना चाहिए कि प्राकृतिक संसाधन भी तेजी से घटने लगे हैं। मानवीय क्रियाकलापों से हमारे पर्यावरण का अधिकाधिक ह्रास हो रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में असीमित प्रगति तथा नए आविष्कारों की स्पर्धा के कारण आज का मानव प्रकृति पर पूर्णतया विजय प्राप्त कर लेना चाहता है। इस कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों से मानव प्राकृतिक संतुलन को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है दूसरी ओर धरती पर जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि, औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण की तीव्र गति से प्रकृति के हरे भरे क्षेत्रों को समाप्त किया जा रहा है। उपन्यास में भी लेखिका जगह जगह टिप्पणी करती चलती है कि फलां पुल बनाने के लिए एक लाख पेड़ काट दिए गए या मेट्रो के लिए दस हज़ार वृक्षों की बलि चढ़ा दी गयी। विकास बनाम विनाश यहीं से शुरू होता है, विकास के लिए प्रकृति का विनाश स्वयं ही आरम्भ हो गया है। ओमना का चिंतित होना जायज़ है, वह सोचती है कि *"जाने अनजाने, विकास की प्रत्येक ईंट, हरियाली से बदला लिए बिना क्यों न ठुकती, जानने की इच्छा होती।"*(६) यही कारण है कि ओमना अकेली पर्यावरण संरक्षण की ओर कदम बढ़ा चुकी है और दूसरों को भी प्रेरित करती है कि ज़्यादा से ज़्यादा वृक्ष रोपो, पौधे लगाओ, उसे ऐसी लगन है हरे के प्रति कि जहाँ धूप का एक टुकड़ा, या आठ इंच जगह भी देखती है वहीं एक पौधा रोप देती है। *'जिस तरह इलाज से बेहतर विकल्प उसकी रोकथाम होती है ठीक उसी तरह पर्यावरण को हानि पहुँचाने के बाद उसकी भरपाई करने की तुलना में पर्यावरण का संरक्षण आर्थिक दृष्टि से अधिक व्यवहारिक है।'*(७) जिससे प्रकृति को संबल प्राप्त हो सके और हमें जीवन मिल सके। 'मीठी नीम' की ओमना निडर, साहसी और प्रकृति प्रेमी महिला है जो न केवल अपने पेड़ पौधों से लगाव रखती है बल्कि पूरी जी जान से उनकी रक्षा भी करती है।

पिछले कई वर्षों से मानवीय क्रियाकलापों द्वारा पारिस्थितिक तंत्र में परिवर्तन हुआ है, उसका सीधा प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ा है, पारिस्थितिक असंतुलन से मौसम में किस तरह परिवर्तन हुए हैं और निरन्तर हो रहे हैं यह किसी से छिपा नहीं है। मौसम पर अब मौसम विभाग का नियंत्रण नहीं रहा है, प्रतिवर्ष यही इच्छा होती है कि मानसून समय से आये, पानी सही मात्रा में बरसे, जाड़ा, गर्मी सभी उचित मात्रा में हों, लेकिन यह

इच्छा पिछले कई वर्षों से पूरी नहीं हो पा रही है या कहें अब आशाओं में बदलती जा रही है। सर्दी में ठंड का अहसास नहीं होता, गर्मी में अति गर्मी और वर्षा में कभी बेहिसाब बारिश या उम्मीदों पर ही पानी फिरा देती है, बाढ़, सूखा, भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाएं आम बात हो चली हैं, पूरा उपन्यास ही इन घटनाओं को केंद्रित करके लिखा गया है। ओमना कहती है *"आज सात दिसंबर, ठंड का नामोनिशान नहीं०००जाड़ा ही क्यों, गर्मी, वर्षा, वसंत सभी ऋतुएँ हमारे हाथ से जाती रहीं। हम नियम तोड़ते गए क्रुद्ध प्रकृति हमारी उम्मीदों पर पानी फेरती।०००समय पर कोई ऋतु साथ न देती। विशेषज्ञ कारण जानते निदान नहीं।"*(८) आधुनिक सुविधाभोगी जीवन शैली ने पर्यावरण पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है जिसके कारण न केवल प्रकृति से हरे की विदाई हो रही है बल्कि मौसम भी साथ नहीं दे रहे। विशेषज्ञ कारण जाने न जाने लेकिन ओमना बखूबी जानती है। वह कहती है *"और दौड़ाओ सड़कों पर बड़ी बड़ी गाड़ियां और बनाओ सौ सौ मंजिला इमारते, उसी का नतीजा है यहा।"*(९) जिस तरह की परिस्थितियां आज के समय मे उत्पन्न हुईं हैं जहां सब यंत्रवत हो जीवन की आपाधापी में व्यस्त हैं वहां प्रकृति की वकालत करने वाली ओमना निडर हो खड़ी है। एक समय ऐसा भी आता है जब ओमना वोट न देने का निश्चय करती है क्योंकि उसे लगता है वोट देने से बेहतर है जमीन में एक वृक्ष रोप देगी। ऐसा प्रतीत होता है कि ओमना राजनीति को समझ चुकी है। एक वोट से वह अपने मन का प्रतिनिधि नहीं चुनना चाहती वह नई तरह से लोकतंत्र को मजबूत करना चाहती है क्योंकि उसका मानना है कि *"पानी और हरियाली का निजाम देश के निजाम से कहीं बेहतर। बेहतर मिट्टी, पानी, बीज और दो चार ढीठ धरती के पक्ष में बोलते। देश का निजाम डेंगू, मलेरिया, पानी के गड्ढों को स्वायत्तता के झोले में डाल, किन्हीं बड़े प्रश्नों की ओर मुड़ जाता।"*(१०) 'मीठी नीम' उपन्यास में लेखिका की दृष्टि काष्ठ चोरी की तरफ भी गयी है। मतिराम के माध्यम से बेशक यह छोटे स्तर से शुरू हुई, रागमाला परिसर से नए पौधों की चोरियों से लेकिन मतिराम कुछ समय में ही इतना धन अर्जित कर लेता है जैसे वह कोई धन्ना सेठ हो। यही छोटी छोटी चोरियां बड़े स्तर तक चली जातीं हैं और वनों का अवैध कटान शुरू होता है। उपन्यास में भले ही यह सीमित स्तर पर दिखाया गया हो। स्कूल में हरा भरा वृक्ष रातों रात गिर जाता है और किसी को खबर तक नहीं लगती और अगली सुबह उसे इतनी जल्दी उठाया जाता है जैसे मरे हाथी का मोल जीवित से कहीं अधिक होता है।

कुसुम कुमार उपन्यास में अंत तक मुख्य पात्र ओमना के माध्यम से हरियाली का प्रसार करने में अग्रसर दिखाई देती हैं। हरित हरा का यह संकल्प जिस तरह पात्र ओमना ने लिया, लेखिका का उद्देश्य इसे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उजाकर करना है। उपन्यास में लेखिका ने पर्यावरणीय संकट को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है तथा यह अपील की है कि पृथ्वी को जितना हो सके हरा भरा बनाने में योगदान दें क्योंकि *"धरती के गुर्दे हरे रहेंगे तभी तो हमारे आपके गुर्दे स्वस्थ रह सकेंगे।"*(११)

निष्कर्ष

'मीठी नीम' उपन्यास में केवल समस्याओं को ही रेखांकित नहीं किया गया है बल्कि कुछ हद तक उनका समाधान भी किया है। ओमना जहाँ रहती है यानी रागमाला परिसर, उसकी साठ प्रतिशत भूमि हरियाली के लिए छोड़ दी गयी है। हरियाली की दृष्टि से ऐसा करने वाला कोई पर्यावरण प्रेमी ही होगा जिसे देश की आम जनता के स्वास्थ्य की भी उतनी ही चिंता हुई होगी जितनी खास लोगों की। इसी तरह यदि सबकी सोच परिवर्तित हो जाये, अपने आसपास हरे भरे वृक्षों के लिए स्थान बनाये जाने लगें। इसके साथ ही आधुनिक तकनीक का प्रयोग सीमित मात्रा में ही किया जाए क्योंकि सभी एक साथ एयरकंडीशनर चलाने लगें तो धरती का क्या शहर का तापमान कहाँ से कहाँ पहुँच जाएगा। इसलिए जितना आवश्यक हो उतना ही प्रयोग करना चाहिए। यह पारिस्थितिक असंतुलन से उत्पन्न प्रभावों को यथार्थ रूप में चित्रित करने वाला ऐसा अनोखा उपन्यास है जो न केवल इस असंतुलन को ही

रेखांकित करता है बल्कि यह परिस्थितियां निर्मित ही क्यों हुईं इस ओर भी इशारा करता है। 'मीठी नीम' पर्यावरणीय चिंताओ से रूबरू कराते हुए पर्यावरण संरक्षण की बेजोड़ कृति है, जिसमें यह निहित है कि पृथ्वी के गुर्दे सही सलामत रहेंगे तभी हमारा जीवन बचा रह सकता है इसलिए हरियाली को सेवा और सुकृत समझना चाहिए उसे मुसीबत की तरह नहीं देखना चाहिए। 'मीठी नीम' पर्यावरण पर चिंतन करते हुए एक ऐसे सशक्त उपन्यास के रूप में हमारे सामने आता है जो शरीर के घाव दिखाकर उसके उपचार के रूप में व्याख्यायित होता। घाव यह है कि पारिस्थितिक असंतुलन निरन्तर बढ़ रहा है और इसका उपचार यह होगा कि प्रकृति, पर्यावरण को बचाने का जिम्मा उठा लिया जाए। जब तक घाव से होने वाली समस्याओं को नहीं बताया जाएगा तब तक व्यक्ति घाव ठीक करने का सोचेगा ही नहीं। उसके मन में कहीं न कहीं यह भी आ सकता है कि शायद यह घाव स्वयं ही ठीक हो जाये। ऐसे में आवश्यकता होती है जागरूकता की जिसका बीड़ा ओमना जैसी स्त्रियां उठाती हैं और *'पर्यावरण को हानि पहुँचाने वालों के साथ साथ उसे सँवारने; संवारते, प्राण न्योछावर करने वालों को भी आमने सामने ला खड़ा करता है – मीठी नीम'*(१२)

सन्दर्भ

१. सुमेष, ए.एस, सम्पादक, समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण – २०१६, पृष्ठ संख्या – १८
२. कुमार, कुसुम, मीठी नीम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपरबैक संस्करण-२०१२, पृष्ठ संख्या - ९४
३. भरुचा, इराक, पर्यावरण अध्ययन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-२०१५, पृष्ठ संख्या – ४
४. कुमार, कुसुम, मीठी नीम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपरबैक संस्करण-२०१२, पृष्ठ संख्या – ११६
५. वही, पृष्ठ संख्या – २७२
६. वही, पृष्ठ संख्या – ११६
७. भरुचा, इराक, पर्यावरण अध्ययन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-२०१५, पृष्ठ संख्या – ७
८. कुमार, कुसुम, मीठी नीम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपरबैक संस्करण-२०१२, पृष्ठ संख्या – १२२
९. वही, पृष्ठ संख्या – ९६
१०. वही, पृष्ठ संख्या – ३९०
११. वही, पृष्ठ संख्या – १४
१२. वही, पुस्तक आवरण से

पर्यावरण की वर्तमान चुनौतियां व उनका समाधान

*अभिषेक रंजन

पर्यावरण मनुष्य जीवन का मूल आधार है। पर्यावरण का मनुष्य जीवन से सीधा और गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य को इस प्रकृति का पुत्र भी कहा जाता है। मनुष्य प्रकृति की गोद में पैदा होता है, खेलता है, वयस्क होता है तथा अंततः मृत्य की गोद में सो जाता है। पर्यावरण से तात्पर्य वनस्पति (पेड़-पौधे), जल, हवा, भोजन आदि से है। पर्यावरण ही मनुष्य जीवन को स्वच्छ, सुन्दर एवं सुखद बनाते है। पर्यावरण ही मनुष्य को साँस लेने के लिए हवा, पीने के लिए जल, खाने के लिए खाद्य पदार्थ (भोजन अर्थात् अन्न, फल एवं सब्जियाँ आदि) तथा निवास करने के लिए भूमि प्रदान करता हैं। पर्यावरण को समस्त भूमंडलीय विरासत एवं सभी संसाधनों की समग्रता के रूप में देखा जाता है। पर्यावरण के अंतर्गत सम्पूर्ण जैविक एवं अजैविक तत्व समाहित किये जाते है। ये जैविक एवं अजैविक तत्व सदैव एक दूसरे को प्रभावित करते रहते है। इस धरातल पर सभी प्रकार के जीवित तत्व जैसे- मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति (पेड़-पौधे), जलीय जीव (मछली) आदि जैविक तत्व के अंतर्गत आते है, तो वही हवा, जल, भूमि आदि अजैविक तत्व के अंतर्गत आते है।

> वर्त्तमान समय में हमारा समाज कई तरह की समस्याओं का सामना कर रहा है। उन समस्याओं में पर्यावरण से सम्बंधित समस्या सर्वाधिक गंभीर समस्या है।

पर्यावरण के तत्वों के बीच संतुलन का होना बहुत आवश्यक है। इन तत्वों में असंतुलन का होना ही पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनता है। यदि हम मनुष्य प्रकृति के बनाए नियमों को अच्छी तरह से समझकर प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग तथा उपभोग करेंगे तभी यह पर्यावरण संतुलन में बना रहेगा और हम मनुष्य जाति स्वस्थ एवं सुरक्षित रह सकेंगे।

अगर हम भारतीय सन्दर्भ में पर्यावरण की बात करते है तो पाते है कि हमारा भारत देश प्राचीन समय से ही प्रकृति की आराधना करता आया है। भारतीय संस्कृति में हम जल (नदी), वायु, भूमि आदि को देवी या देवता के रूप में प्रतिष्ठित करते आये है। किन्तु आज की स्थिति यह है की हम प्रकृति की महत्ता को भूल कर प्रतिदिन इसका दोहन करते जा रहे है। आज हम मनुष्यों ने अपने पर्यावरण को इतना अधिक दूषित कर दिया है कि यहाँ जीवन जीना दूभर होता जा रहा है। हमने संसाधनों का सर्वाधिक दुरूपयोग किया है। आज हमने विकास के दौर में कदम से कदम मिलाने के लिए अपनी हरी-भरी और सुन्दर पर्यावरण को नष्ट कर दिया है। आज हमारे चारों तरह बहुमंजिल इमारते खड़ी है। हमने अपने विकास के लिए अंकों जंगलों को नष्ट किया है। पशु-पक्षियों को हानि पहुंचाई है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व की 40 % फीसदी आबादी ऐसे स्थानों पर निवास करती है जहाँ न तो पीने योग्य पानी की व्यवस्था है और न ही उसकी आपूर्ति का कोई साधन। इसके अतिरिक्त 80 ऐसे देश है जहाँ पानी की व्यवस्था बड़ी ही मुश्किल से हो पाती है। विश्व बैंक के द्वारा यह भी चेतावनी जारी किया है कि भविष्य में अगर पानी की उचित व्यवस्था नहीं की गई तो पानी के लिए अगला युद्ध हो सकता है।

वर्तमान पर्यावरणीय समस्याएँ

मानव पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। पर्यावरण का निमार्ण प्रकृति के द्वारा किया जाता है। मानव और प्रकृति चिर काल से एक-दूसरे से संबद्ध है। 20 वी सदी

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद, संपर्क सूत्र: 9958308724, ईमेल: aranjan.in@gmail.com

के प्रारंभ से ही मानव ने भौतिक, आर्थिक और आर्थिक क्षेत्र में सर्वाधिक विकास किया। संतुलित वातावरण में ही जीवन का विकास संभव है। वर्तमान में मनुष्य ने विकास की आड़ में स्वयं को एक मशीन का पुर्जा मात्र बना दिया है जिस कारण से पर्यावरण में अनेकों समस्याएं उत्पन्न हो गयी है। पर्यावरणीय समस्याओं की वजह से मानव जीवन दिन-प्रतिदिन मुश्किल होता जा रहा है। अगर मानव अभी से पर्यावरण के प्रति सचेत नहीं हुआ तो भविष्य में इस धरती पर किसी भी प्राणी के लिए जीवन दुष्कर हो जाएगा। आज के समय के महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्याएं निम्नलिखित है –

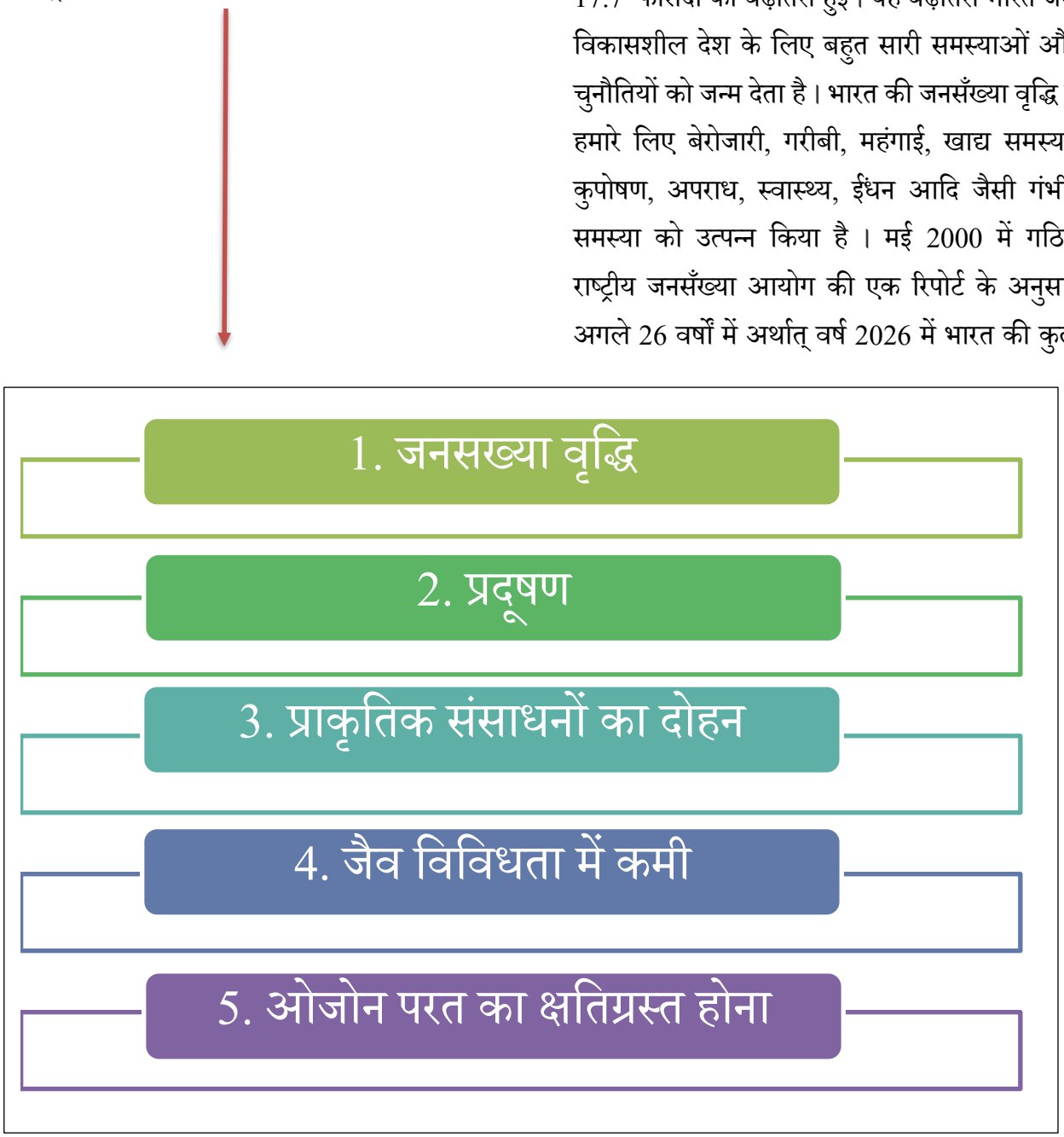

जनसख्या वृद्धि : किसी भी देश की वर्त्तमान स्थिति का आकलन उसकी आर्थिक विकास और जनसँख्या के आधार पर लगाया जा सकता है। किसी भी देश के विकास को इन दोनों कारकों के आधार पर तय किया जा सकता है। वर्तमान में भारत की जनसँख्या 121 करोड़ से अधिक हो गयी है जो कि हमारे लिए एक खतरनाक स्थिति को दर्शाता है। भारत की जनसँख्या वर्ष 2001 और 2011 की जनगणना की तुलना करते है तो हम पाते है कि इन 10 वर्षों में भारत की जनसँख्या में 17.7 फीसदी की बढ़ोतरी हुई। यह बढ़ोतरी भारत जैसे विकासशील देश के लिए बहुत सारी समस्याओं और चुनौतियों को जन्म देता है। भारत की जनसँख्या वृद्धि ने हमारे लिए बेरोजारी, गरीबी, महंगाई, खाद्य समस्या, कुपोषण, अपराध, स्वास्थ्य, ईंधन आदि जैसी गंभीर समस्या को उत्पन्न किया है। मई 2000 में गठित राष्ट्रीय जनसँख्या आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार अगले 26 वर्षों में अर्थात् वर्ष 2026 में भारत की कुल

जनसँख्या 140 करोड़ हो जाएगी। इसका अर्थ यह होगा की भविष्य में भारत जनसँख्या के मामले में चीन को पीछे छोड़ देगा और विश्व में सर्वाधिक जनसँख्या वाला देश बन जाएगा। भारत जैसे देश में जनसँख्या वृद्धि के निम्नलिखित कारण है-

जन्म और मृत्यु दरों में अंतर : अगर हम पिछले कुछ दशकों को देखे तो पाते है कि जन्म और मृत्यु दरों में कमी आई है। भारत में 2001 में हुए जनगणना के आंकड़ों को देखे तो हम पाते है कि जन्म दर 24.8 (प्रति 1000) तथा मृत्यु दर 8.0 (प्रति 1000) है। जन्म दर और मृत्यु दर में कमी होने के बावजूद दोनों में अंतर अधिक है तथा जन्म दर अधिक है। यही कारण है कि लगातार जनसँख्या में वृद्धि होती जा रही है।

गरीबी : भारत में जनसँख्या वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण गरीबी है। गरीबी और पर्यावरण आपस में एक-दूसरे से जुड़े हुए है। 1970 के दशक में में स्टॉकहोम में प्रथम विश्व पर्यावरण सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने अपने भाषण में कहा था कि "गरीबी स्वयं सबसे बड़ा प्रदूषण है"। हमारा भारत प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है किन्तु यहाँ गरीबी भी उतनी ही जटिल समस्या के रूप में खड़ी है। देश की आधी से ज्यादा आबादी गरीब है और इनका जीवन यापन प्राकृतिक वनस्पति पर निर्भर करता है। जीवन यापन के लिए जब प्राकृतिक वनस्पति का अंधाधुंध उपयोग होगा तब स्वाभाविक रूप से पर्यावरण की समस्या बढेगी।

अशिक्षा : अशिक्षा भी जनसँख्या वृद्धि में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जब तक देश का हरेक व्यक्ति शिक्षित नही हो जाता और अपने पर्यावरण के प्रति संवेदनशील नही हो जाता तब तक जनसँख्या वृदि पर नियंत्रण संभव नहीं है। आज भी देश के बहुत हिस्से ऐसे है जहाँ लोगों में परिवार नियोजन सम्बन्धी जानकारी नही है और जिन्हें इसकी जानकारी है वे इसे ईश्वर और धर्म से जोड़ कर देखते है।

प्रदूषण

भारत जैसे विशाल देश के लिए जनसँख्या वृद्धि एक गंभीर समस्या है। जनसँख्या वृद्धि की इस समस्या के कारण भारत में प्रदूषण की समस्या भी बढ़ी है। हवा, पानी और मिट्टी के प्रदूषित हो जाने के कारण सामान्य जनजीवन पर प्रभाव तो पड़ा ही है साथ ही साथ इसका प्रभाव जीव-जंतु और वनस्पति पर भी उतना ही पड़ा है। प्रदूषण बढ़ने के कारण हमारे आसपास कई प्रकार की गंभीर मानसिक और शारीरिक समस्या ने जन्म ले किया है। प्रदूषण एक गंभीर पर्यावरणीय मुद्दा है। हाल के कुछ वर्षों पर गौर करे तो हम पाते है कि प्रदूषण बहुत तेजी के साथ बढ़ा है क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ सीधे हवा, पानी और मिट्टी में मिल जा रही है। प्रदूषण कई प्रकार के है– जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनी प्रदूषण और मृदा प्रदूषण।

जल प्रदूषण : जल प्रदूषण से तात्पर्य है जल में किसी भी प्रकार का अवांछित तत्व के मिल जाने से जल का दूषित या गन्दा हो जाना और पीने योग्य नहीं रहना। जल के दूषित होने में प्रमुख कारण है: कल-कारखानों से छोड़े जाने वाली गन्दगी, नाले और सीवर के गंदे पानी का नदियों में छोड़ा जाना, कृषि कार्यों में उपयोग की जाने वाली रासायनिक खाद आदि।

वायु प्रदूषण : जब हवा में अवांछित एवं जहरीली गैसे तथा धूलकण आदि मिल जाते है और प्रकृति तथा मानव को हानि पहुंचाते है तब ऐसी स्थिति को वायु प्रदूषण की स्थिति कहा जाता है। वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण है वाहनों से निकलने वाला धुआं, कल-कारखानों के चिमनी से निकालने वाला धुआं और रसायन, पेड़-पौधे के जलने तथा मरे जानवरों से निकलने वाली गंध आदि।

ध्वनि प्रदूषण : वातावरण में अत्यधिक तीव्र और असहनीय ध्वनि में लाउडस्पीकर आदि के उपयोग से ध्वनि प्रदूषण फैलता है। ध्वनि प्रदूषण के फैलने के निम्नलिखित कारण है पर्व-त्योहार या किसी भी प्रकार

के उत्सव में लाउडस्पीकरों का अनियंत्रित उपयोग किये जाने से, अकारण वाहनों के हार्न बजने से, जेनरेटर तथा डीजल पम्पों के ध्वनि से आदि।

मृदा प्रदूषण : मृदा प्रदूषण से तात्पर्य है भूमि में जहरीली, अवांछित एवं अनुपयोगी पदार्थों के फेंके जाने से भूमि की उर्वरता एवं गुणवत्ता में कमी आना। मृदा प्रदूषण के निम्नलिखित कारण है कृषि कार्यों में उर्वरकों, रसायनों तथा कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग किया जाना, प्लास्टिक की थैलियों को भूमि में दबाया जाना आदि।

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

पर्यावरण प्रदूषण आज विश्वव्यापी समस्या बन गयी है। प्रदूषण के कारण केवल पर्यावरण के ह्रास नही होता अपितु इससे स्वास्थ्य समस्या के साथ-साथ राष्ट्रीय अर्थतंत्र को भी क्षति पहुँचती है। प्राकृतिक संसाधनों पर जनसँख्या वृद्धि का दबाब निरंतर बढ़ता जा रहा है। हम मनुष्यों की एक आदत है कि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का बड़ी ही निर्दयता के साथ दुरूपयोग करते है जिसके फलस्वरूप भूमि में जहरीले एवं विषैले पदार्थों की वृद्धि, जल स्तर में गिरावट के साथ-साथ वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि जैसी गंभीर समस्या उत्पन्न हो गयी है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट कहती है कि वर्ष 2080 तक लगभग 3 अरब 20 करोड़ लोगों को पीने के लिए पानी उपलब्ध नहीं हो पाएगा जिसकी वजह से महामारी में तीव्रता के साथ वृद्धि होगी और उस समय हमारे पास उनसे निजात पाने के लिए संसाधन नहीं होंगे।

जैव विविधता में कमी

मानव एक विकासशील प्राणी है। हमारे चारों तरफ प्राकृतिक संसाधन भरपूर मात्रा में विद्यमान है। मानव अपने विकास हेतु इन संसाधनों का अत्यधिक दोहन करता जा रहा है। मानव अपने रहने के लिए घर बनाने हेतु जंगलों एवं वृक्षों की कटाई करता जा रहा है। साथ ही अपने भोजन के लिए पशुवध अधिक मात्रा में तथा पशुपालन में कमी किया है। इस तरह के कार्यों की वजह से पारिस्थितकीय तंत्र में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसका सीधा प्रभाव जीव-जंतु तथा वनस्पति पर पड़ा है। इस वजह से बहुत सारी जीव-जंतु की प्रजातीय समाप्त हो गयी है और बहुत सारी समाप्ति की तरफ अग्रसर है। ऐसे जीव-जंतु में काला हिरन, गौरैया, शेर, कस्तूरी हिरन, चीता आदि है।

ओजोन परत का क्षतिग्रस्त होना

ओजोन एक प्रकार का प्राकृतिक गैस है जो हमारे वायुमंडल में बहुत ही कम मात्रा में पाई जाती है। वायुमंडल में पाई जाने वाली ओजोन परत सूर्य की पराबैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करती है। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप ओजोन परत में रिक्तिकरण अर्थात् छिद्र हो गया है। ओजोन परत में छिद्र होने में सबसे बड़ा योगदान मानव निर्मित रसायन क्लोरो फ्लोरो कार्बन तथा मीथेन आदि गैसों का है। ओजोन परत में छिद्र होने से सूर्य की पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर आ रही है जिससे कई प्रकार के शारीरिक और मानसिक विकार जैसे चर्म रोग, पेड़-पौधे और जंतुओं में अनेकों रोग आदि उत्पन्न हो रही है।

समाधान

बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए एक इंसान के रूप में हमे अपने पर्यावरण को दूषित होने से बचाना चाहिए। स्टॉकहोम में हुए मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट सम्मलेन के बाद भारत का संविधान संसोधित किया गया और संरक्षण को संवैधानिक आदेश के रूप में शामिल किया गया। संविधान के 42 वें संसोधन के नियम 1976 के अनुच्छेद 51(A) (छ) के अंतर्गत प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसमें सुधर को एक मुलभूत कर्त्तव्य बना दिया गया – "*भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और अन्य वन्य जीव हैं, रक्षा करें और संवर्द्धन करें तथा प्राणीमात्र के प्रति दया भाव रखे*।

अगर हम संविधान के इस मूल कर्तव्य को अलग रख कर भी सोचे तो इस धरती पर निवास करने वाले प्रत्येक

मनुष्य का प्रथम और एक मात्र कर्तव्य पर्यावरण का संरक्षण करना होना चाहिए। एक नागरिक के रूप में हमें अपने पर्यावरण को सुरक्षित रखने में निम्नलिखित क़दमों को उठाना चाहिए और साथ ही अपने आस-पड़ोस को भी इसके लिए जागरूक करना चाहिए।

- जनसँख्या वृद्धि पर रोक लगा कर लोगों को यह समझाया जाना चाहिए कि हम दो हमारे दो के सूत्र को अपनाए।
- लोगों को परिवार नियोजन के विषय में जागरूक करते हुए यह बताया जाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को दो बच्चों के बाद परिवार नियोजन करवाना चाहिए।
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करके लोगों के अधिक बच्चों को जन्म देने के दृष्टिकोण को परिवर्तित किया जाना चाहिए।
- लोगों में यह जागरूकता फैलानी चाहिए कि वे प्राकृतिक संसाधनों का सीमित रूप में प्रयोग करें और इसका दुरूपयोग नहीं करें।
- वनों एवं जंगलों का विकास वृक्षारोपण के द्वारा किया जाए तथा वन प्रबंधन को बढ़ावा दिया जाए।
- पशुपालन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- कृषि हेतु जैविक खाद का उपयोग किया जाना चाहिए।
- विद्यालय से प्रारंभ करके महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय तक 'पर्यावरण शिक्षा' को अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।
- वैसे पदार्थों का अधिक उपयोग किया जाना चाहिए जिनका पुर्नचक्रण और पुर्नउपयोग किया जा सके।
- निजी वाहनों का कम से कम उपयोग किया जाना चाहिए।
- सौर उर्जा और पवन उर्जा के उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए।

निष्कर्ष

वर्तमान समय की अगर बात की जाये तो हम देख रहे है कि हमारे आस-पास विभिन्न प्रकार की गंभीर समस्याओं का जन्म हो रहा है । आज की सदी की सबसे बड़ी समस्या कोविड -19 महामारी है। इन गंभीर रोगों के जन्म में कहीं न कहीं हम मनुष्यों का अहम योगदान है। अगर समय रहते हमने इनका समाधान नहीं किया तो इसका बुरा प्रभाव वनस्पति, जीव-जंतु और मानव आदि सभी पर पड़ेगा और एक समय ऐसा आएगा कि डायनासोर की भांति इस संसार से सभी वनस्पति, जीव-जंतु और स्वयं मानव भी विलुप्त हो जाएगा। इस पर्यावरण को सुरक्षित और स्वच्छ रखने की प्रथम नैतिक जिम्मेदारी हमारी है।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, दामोदर एवं व्यास, हरिश्चंद. (2004). *"आधुनिक जीवन और पर्यावरण"*. दिल्ली. प्रभात प्रकाशन.
2. त्रिपाठी, दया शंकर. (2005). *"पर्यावरण अध्ययन"*. दिल्ली. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स.
3. सिंह, अरुण कुमार. (2008). *"समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा"*. दिल्ली. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स.
4. आस पास, कक्षा 4, (2017), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली.
5. हमारा पर्यावरण, कक्षा 7, (2018), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली.
6. प्रभा साक्षी. इ-न्यूज़ पेपर, दिसंबर 25, 2019

7. अस्तित्व: गरीबी – असमानता और पर्यावरण, Retrived form 17th June 2020 https://www.drishtiias.com/hindi/loksabha-rajyasabha-discussions/poverty-inequality-and-environment
8. राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006, Retrived from 17th June 2020 http://www.sikkimforest.gov.in/docs/NEP2006/nep2006h.pdf

A COMPARTIVE STUDY OF PROFESSIONAL DEVELOPMENT OF SENIOR SECONDARY SCHOOL BETWEEN MALE & FEMALE TEACHERS

***Dr Rajkumari**

Professional Development in Education

In education the term professional Development may be used in reference to a wide variety of specialized training, formal education or advanced professional learning intended to help administrators, teachers and other educators improve their professional knowledge, competence, skill and effectiveness. When the term issued in education contexts without qualification, specific examples or additional explanation, however, it may be difficult to determine precisely what Professional Development is referring to.

In Practice, professional development for educators encompasses an extremely broad range of topics and formats. For example, professional development experiences may be funded by district, school or state budgets and programs or they may range from a one-day conference to a two-week workshop to a multiyear advanced degree programme. They may be delivered in person or online, during the school day or outside of normal school hours. And through one on one interactions or in group situations and they may be let and facilitated by educators within a school or provided by outside consultants or organizations hired by a school or district. And of course the list of possible format could go on.

The score of the private senior secondary school teacher is higher than govt. senior secondary teacher. It shows that the private school teacher was more proficient than govt. senior secondary school teacher. The score of the male teachers of private senior secondary school was higher than the govt. female teachers. So, it shows the male teachers of senior secondary school were more proficient than the female teachers of senior secondary school. The score of male teachers of private school was higher than the private female teacher. It shows that private school male teachers were more talented than female teachers.

Qualities of an Effective Teacher

Merely choosing a profession and undergoing the necessary training does not make an individual an effective teacher. Certain desirable personal qualities combined with professional competence of a teacher make one an effective and successful teacher. The teacher spends most of the day in close association with the students and as a result his/her basic attitudes and actions, his/her tastes and mannerisms have great influence on them. The teacher creates the right emotional climate in the

*Assistant Professor, BPS Institute of Teacher Training & Research, BPSMV, Khanpur Kalan, Sonipat, Email- rajkumaridrrajkumari@gmail.com

classroom by being friendly, tolerant, generous and calm. The personality of the teacher is important outside as well as inside the classroom. The teacher's ability to plan and work with equals, as well as superiors, determines the individual's quality as a good teacher. The natural impulses, urges and drives in students have to be refined, modified, properly developed and directed in desirable channels so that the lamp of humanity continues to burn. The will or conscience of the students must be developed. In the words of Butler "education has to feed the conscience by nurturing it in the desired direction". The primary aim of all educational efforts, according to T.P. Nunn, should be "to help boys and girls to achieve the highest degree of individual development to which they are capable of". It implies that it is the responsibility of the teachers to develop the physical, mental, social, emotional, intellectual and aesthetic aspects, that is, the total personality of the students. In the words of Vivekananda "it is man-making education, all-round that we want. "The responsibility of the teacher is to see that the potentialities within the student are properly developed so that they become creative and progressive. Their minds have to be constantly bombarded with new ideas and concepts.

Most Desired Personal Qualities in Teachers

The traits that a teacher should possess are scholarship, sense of humor, cooperation, spirit of service, professional integrity, impressive appearance, emotional stability, leadership, open-mindedness, rationalism, determination, impartiality, sobriety and self-esteem. In addition to these traits, the teacher should also possess an accurate perception of reality, openness to new experiences, ideas and information, ability to develop harmonious relations, ethical behaviour based on moral principles and capacity to work hard. Some other personal qualities which are helpful for the teacher to play his role effectively are the ability to communicate, understand and to relate, patience, ability to be firm and fair, friendliness, dedication to teaching profession and the ability to inspire and motivate the students.

REVIEW OF RELATED LITERATURE

Steven J. Amendum & Meghan D. Liebfreund (2018) examine on situated learning, professional development and early reading intervention: A mixed methods study the purpose of the present mixed methods study was to investigate a model of situated professional development and classroom – based early reading intervention implemented by the K-2 teaching teams from the one school in a large urban/suburban school district in the southeastern United States. Twenty-nine teachers participated along with 125 students (74 interventions, 51 comparisons). Student level data sources included letter word identification, work attack, spelling of sounds, and passage

comprehension measures. Teacher level data sources included semi-structured interviews with each teacher, planning/recording documents and pre-post questionnaires to gather information about teacher's self-efficacy and demographics. The main conclusions were the following: (a) struggling readers eligible for intervention made significant gains, (b) struggling readers eligible for intervention made significantly greater gains than their non-struggling peers did, (c) teachers' reflections on the intervention and the situated professional development were generally positive and (d) teachers' self-efficacy for instructional strategies positively changed across the year.

JUSTIFICATION OF THE STUDY

Professional Development of teacher has always been in place. But today it has got a renewed command under Teacher Education Mission. The question is how critically it is being pursued and with what results. We only need to look at the results to decide what processes need to be put in place. Anything that we do needs to be goal oriented. Our present efforts are giving us the results in terms of the goals. They do not and yet we continue with them, it smacks of ritualism.

DATA COLLECTION

We do the same things over and over; we only get the same results. So if we want different results, we need to change our actions. It ensures that we and our knowledge stay significant and up to date. We are more aware of the changing trends and instructions in our profession. It helps we continue to make a meaningful contribution to our team.

OBJECTIVES OF THE STUDY

1. To compare the professional development of male and female teachers of private senior secondary school.
2. To compare the professional development of male and female teachers of Government senior secondary school.

HYPOTHESES

1. There is no significance difference between Professional Development of private senior secondary school teachers on the basis of gender.
2. There is no significance difference between Professional Development of government senior secondary school teachers on the basis of gender.

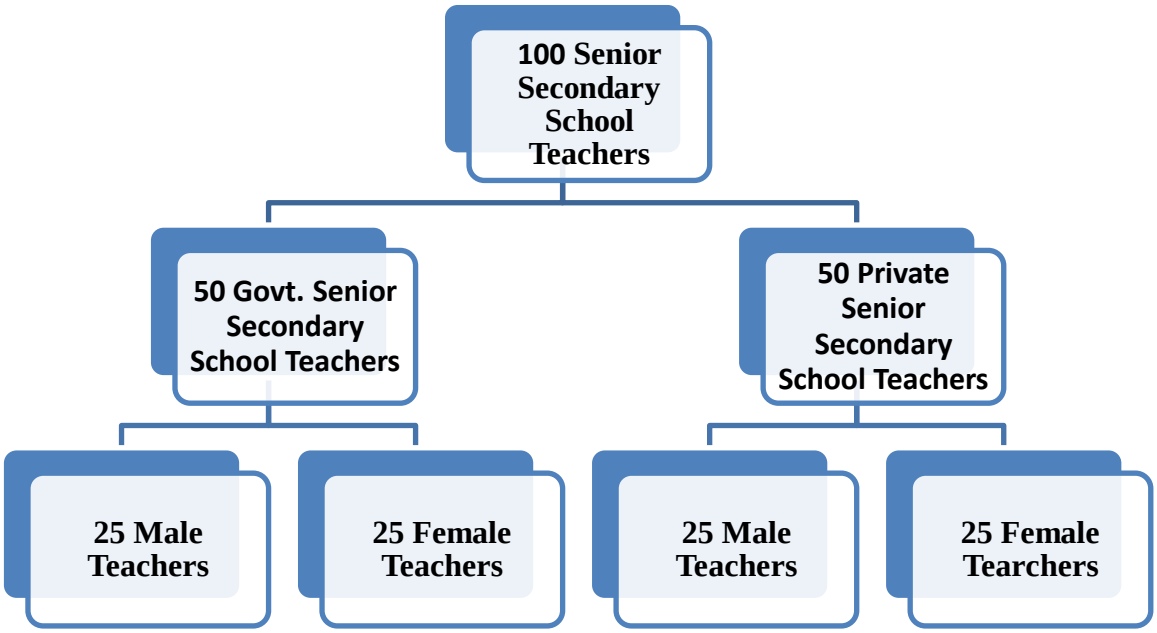

Statistical Techniques to Be Used:- The techniques were used for analysis in the present study:-

1. Mean
2. Standard deviation
3. t – test

TOOL

Tools to be used:- Teacher Professional Development Scale by (TPDS) Dr. Yodida Bhutia (2014)

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF THE DATA

Objective 1

To Study the Professional Development of Male and Female Teachers of Private Senior Secondary School Teachers.

Table 1.1 Comparison of Professional Development of Male and Female Teachers in Private Senior Secondary School

STUDENT	MEAN	SD	t'VALUE
Male	**166.32**	**19.18489**	
Female	**162.32**	**21.72502**	**0.246743**

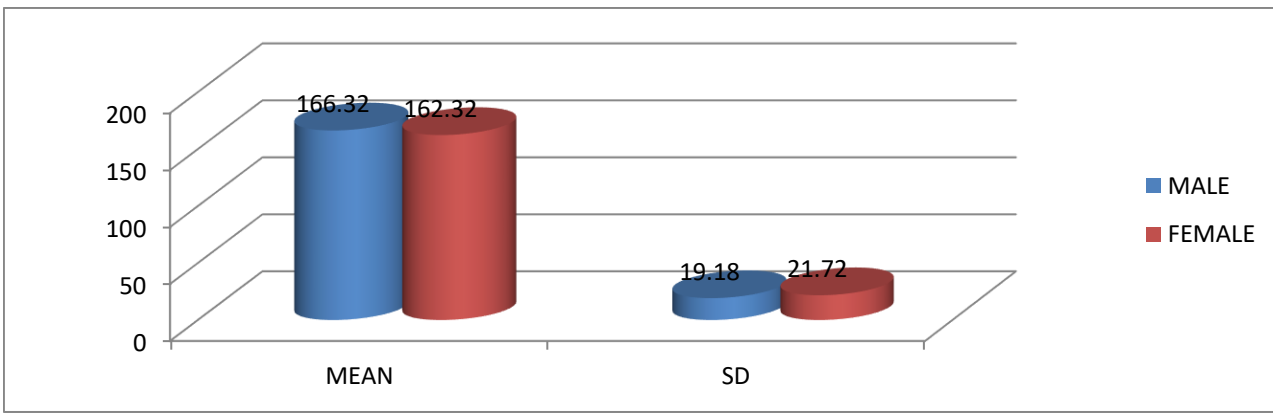

Table no 1.1 shows that the mean score of the professional development of private school male teachers is 166.32, SD is 19.184 and female mean score is 162.32, SD is 21.7502. Mean score of the private school teachers is higher than the mean score of government school teachers. It shows that private school male teachers are more talented than private female school teachers .The calculated value was found 0.24 at 0.05 significance level which is greater than table value i.e. 0.168. So, t he null hypothesis" There is no significant difference between male and female government teacher" was accepted.

Objective 2

To find difference between male & female Govt. Senior Secondary School teacher on their professional development

STUDENT	MEAN	SD	t'VALUE
Male	166.72	26.64507	
Female	160.52	17.75322	0.168896

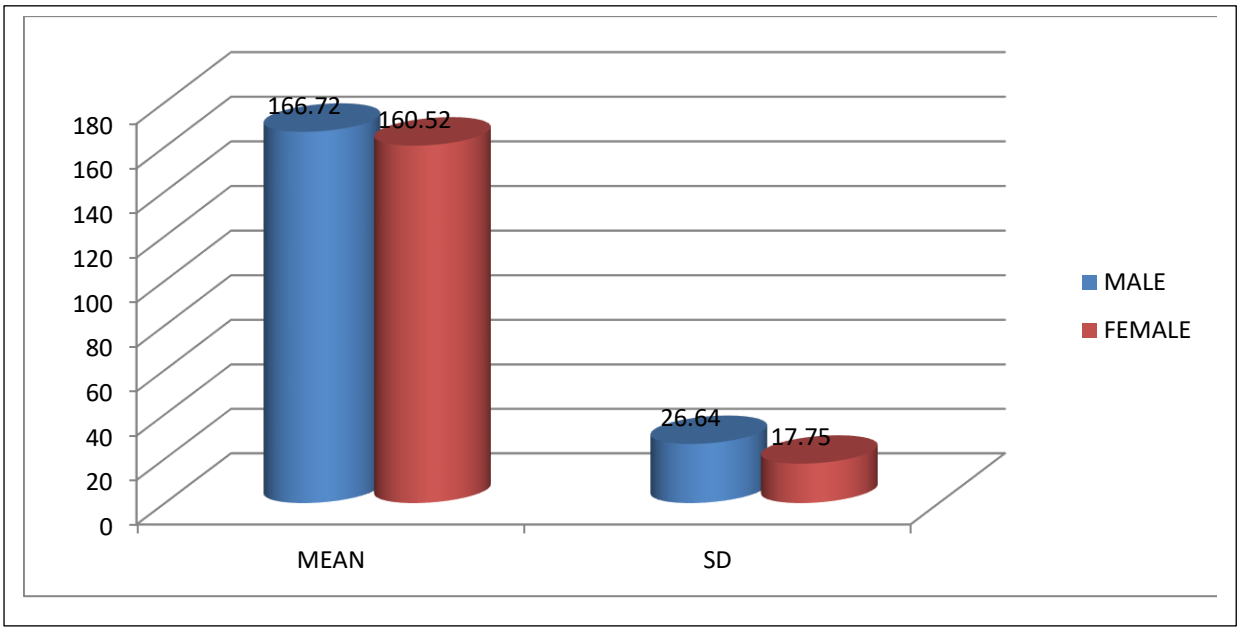

Table no 1.2 shows the mean score of the professional development of private school teachers and government school teachers is respectively i.e. government male is 166.72 , 26.64 and private female teachers mean score is 160.52 , 17.75. Mean score of the private school teachers is higher than the mean score of government school teachers. It shows that private school teachers are more proficient than government school teachers. The calculated value was found o.16 at 0.05 significance level which is greater than table value i.e. 0.168. So, the null hypothesis "There is no significant difference between

male and female government teacher" was retained.

MAIN FINDING OF THE STUDY

- The score of the private senior secondary school teacher is higher than govt. senior secondary teacher. It shows that the private school teacher were more proficient than govt. senior secondary school teacher.
- The score of the male teachers of private senior secondary school was higher than the govt. female teachers. So, it shows the male teachers of senior secondary school were more proficient than the female teachers of senior secondary school.
- The score of male teacher of private school was higher than the private
- female teacher. It shows that private school male teachers were more talented than female teachers

BIBLIOGRAPHY

1. Gore J.,Llyod L., Smith M.& Lubans D. (2017) studied on '' Effects of professional development on the quality of teaching : results from a randomized a controlled trial of Quality teaching rounds ''.Article October 2017
2. Velayudhan T.K. M. & Yameni M.D (2017) studied on the '' this research is to investigate and identify the significance of work environment towards the performance and aiso to study the effectiveness of the QWL in the organization'' . IOP Conference series: materials science and engineering. Quality of work life-a study.
3. Professional development concept &effective professional development : http://www.cori.umd.edu/research project / real/research/06-08.pdf
4. http://www.cambridgeinternational.org/image/271194-professional development.pdf
5. Chpoudhary, S.V.S. (2006). Quality Improvement in Elementary Education-ICT Initiatives. New Delhi Indira Gandhi National Open University.
6. Dash, B.N. (2004). "The teacher and Professional Growth", In Theories of Education and Education in the Emkerging Indian Society. New Delni: Dominant Publishers and Distributors Publishers and Distributors.

 ISSN: 2454-2725

Worship Śiva in Śaivacintāmaṇiḥ

***Swati Sucharita Pattanaik**

Introduction

The text Śaivacintāmaṇi was taken up for editing in the year 1969 by Odisha State Museum. At the outset as an auspicious beginning of the 'Orissan Oriental Text Series (in Sanskrit) with a view to editing all the rare and valuable manuscripts of Orissan authors Preserved in the Orissa State Museum, presently called Śrī Jayadeva Orissa State Museum, Bhubaneswar. In addition, Bhubaneswar being the cathedral city and famous seat of *Śaivism*, it was considered necessary to edit the *Śaivacintāmaṇi*, followed in the performance of worship & rituals in *Liṅgarāja* temple as an authoritative guide book. The palm-leaf manuscripts of the *Śaivacintāmaṇi* are locally available in plenty of the manuscripts collected from different areas and preserved in the Orissa State Museum, and were selected a dozen manuscripts for the purpose of editing. The editing was completed by Śrī Dukhisyam Pattanaik and it was published in the year 1994 from the Directorate of Culture, Government of Odisha, Bhubaneswar-751014. The *Śaivacintāmaṇi* was written by Lakṣmidhara Miśra, who was also the author of the *Śaivakalpadruma.* Lakṣmidhara's *Śaivakalpadruma* (Dh.33) preserved in the *Dharmaśāstra* section of the Odisha State Museum. This was found to be copied in 38th *Aṅka* of Vīrakeśari Deva I (1766 AD) seems to have been composed towards the last quarter of 17th century during the rule of Gajapati Mukundadeva. It is known that Lakṣmīdhara Miśra, an ardent devotee of the then Śiva of Svarṇādri i.e. Bhubaneswar was an inhabitant of Bhubaneswar.

Śaivacintāmaṇi seems to be a work of Lakṣmīdhara at his ripe age, when he was sorrow sticken through his growing experience in this world of miseries and worries. As such it may probably be a work of the last decade of the 17th century as decided by the editor.

> The *Śaivacintāmaṇi* text is fully devoted to the rituals and glorification of Lord Śiva in this text there are descriptions related to the glorification as the Lord of the Universe. He is supposed to give full protection and blessings to the devotees in Śiva tradition.

Śaivism is one of the major traditions with Hinduism that reverse Śiva as the Supreme Being. Worship lord Śiva on Monday, devotees should visit Śiva temple on every Monday with a clean mind and body and should prayers. After taking a bath, one should offer milk and honey to Lord Śiva. It is believed that doing this, the problems related to livelihood job or business gets eliminated.

After that, devotees should perform *Abhiṣeka* of Śiva *liṅga* by *bhasma* and water. After *abhiṣeka* of Śiva *liṅga,* one should offer sandalwood. The nature of sandalwood is cold and it's believed that by doing so, life becomes peaceful and full of happiness. One should keep on chanting this mantra- "*Om mahā Śivay somay namḥ.*"

The devotees should offer flowers and fruits

*Ph.D Scholar,P.G Dept. Of Sanskrit, Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar, Odisha,751004,
Email.id- swati94sucharita@gmail

to Lord Śiva and also should perform Śiva ārati. The prayers should be offered with pure heart and faith. Later, devotees should accept *caraṇa*mṛt, which is offered by the priest as a *prasāda*. Lord Śiva, is considered to be the most divine among all Hindus gods. "Mahādev" which means greatest god is another name given to him. In the Hindu religion, Lord Śiva is also considered to be the father of the whole universe.

Some of the common items used for Śiva abhiṣeka are

Curd,Milk/ water,Honey,Tender Coconut water, *Vibhūti* (holy ash), *Paṅcāmṛta* (curd based delicacy consisting of *paṅcha* items:(Milk, Sugar, Ghee(clarified butter) Honey, curd),Bananas,Sandalwood paste,Ghee (clarified butter),Haldi, Fragrant oils,*Bilva* leaves (vital importance).

While selecting *Bilva* leaves make sure the cakra and the *Brajra* should not be there. The *cakra* is white mark made by the insects on the *Bilva* leaves while the *bajra* is thick portion towards the stalk. The *Bilva* leaves used in *Pūja* should be 3 leaves let's even if one of the leaves gets detaches of three leaves then it is of no use.

Flowers offered

There are many flowers offered in the ritual of worshiping Lord Śiva. Out of those some flowers are very common and special at the time of offering. Dhatura became Lord Śiva's favourite flower. Hence, Dhatura is offered to Lord Śiva during worship to get rid of the poision of ego, rivalry, envy and hatred. Some other flowers like *akand, sevati*[1]*, malī*[2]*,yūthī*[3]*, mālatī, karavīrak, palāśa, pāṭalī, campā, mandāra*, Blue lotus[4] (or pink lotus/ white lotus) flowers are auspicious.*Ketakī* flower is never used in the worship of Śiva.

Fruits offered

There are many fruits offered in the ritual of worshiping Lord Śiva. Some fruits are very common and special at the time of offering. *Sāla*[5]*, tālaka,hintāla, piyāla, saralāmalai, nārikela*[6]*, āmra, panasa, Śrī guvāka, kapitthakai*.

Worship in Śaivacintāmaṇi

The devotee of Śiva to be pure in mind and also in body by bathing daily in the water of *Śiva-Gaṅgā*[7] and then besmearing one's body with the sacred ashes and by putting the three-line mark on the fore-head and by wearing a necklace of *rudrākṣa*[8] as a sign of devotion. An area with one mile in radius from an established *liṅgaṃ* is called '*Īśa-kṣetra*[9]' and all the reservoirs of water therein towards the north, may it be well or a pond or a river, whatsoever is considered sacred 'Śiva-*Gaṅgā'for* the sake of purification through bath.

(i) Liṅga Worship

Pūjā seems to have been the main-or perhaps the only form of worship in respect of the *liṅga*. It may be mentioned in this connection that the *pujā* of the *liṅga* did not differ from other types of *pūjā*.

Different types of *liṅgaṁ* and their importance in the worship of Śiva. Of all, the *Bāṇa-liṅgaṁ*[10] is egg-shaped and does not require any invocation (*āvāhana*)[25] or installation (*pratiṣṭhā*) in a ritualistic manner. Then description of liṅgaṁ made of crystal and gems etc. is given for knowledge of the readers. Ritualistic worship of different *liṅgaṁ* for the fulfillment of six desires through the *Ṣat-karma* viz.*Vaśikaraṇa*[11] (winning over),

Mohana[12] (fascinating), *Stambhana*[13] (arresting), *Uccātana*[14] (explusion), *Vidveśana*[15] (causing enmity) and *Māraṇa*[16] (causing death) by tantric manner is also prescribed. Guru one may write a particular Mantra on a palm-leaf or on a silver plates on the thirteenth lunar day of a bright fortnight and place it on a pedestal and worship '*Dakṣiṇaliṅgamūrti-liṅgaṁ*[17]'.

(ii) Dakṣiṇaliṅgamūrti-liṅgaṁ worship

Dakṣiṇaliṅgamūrti-liṅgaṁ by offering rice boiled in milk . The place, the food, the seat that are required for the divine practice of *japa*[18] or recitation of a mantra are mentioned in detail in the verses. It also speaks of the rosaries and their use in this connection.

Daily divine practices of devotee (*nitya kṛtya*)

This practice is called as *nitya kṛtya* as described in the text of *Śaivacintāmaṇi*. It is described in the following manner. A devotee of Śiva should get up early in the morning with his mind on Śiva, rinse his mouth out with the repeat of the letter '*va*[19]' symbolizing ambrosia for ten times, putting his sacred thread on the right ear go out for passing the urine and stool facing towards the north, clean his anus first with grass and then in water, wash his teeth and then bathe by invoking the sacred rivers like the Ganges and others in the water for the purpose, put on an under-garment tucked into the waist band at three places (*tri kacchā*) and also an upper garment, put on mark sandal(*Tilaka*) over the three lines of ashes (*Tri puṇḍra*) on the forehead and other places of the body, sip water with '*aghora mantra*[20]' for the sake of internal purification, pray the mother earth to hold him prayer by sitting on a comfortable position, perform the *pūjā* (worship) of Śiva in the order prescribed in the text.

Śiva's five form of worship

The forms are described in different ways according to the influence of different *Purāṇas*. The figure and form Lord Śiva is sometimes in *Liṅga* worship along with *Śakti*. The height is small or big depending on the cases of the *purāṇic* legends. His form with five faces viz. *Īśāna*[38], *Tatpuruṣa*, *Aghora*, *Sadyojāta* and *Vāmadeva* is indicated for worship. *Īśāna, Tatpuruṣa, Aghora, Sadyojāta* a nd *Vāmadeva* were themselves regarded as possessing the character and authority of mantras. In the ritual texts they designated as *Pañcabrahma-mantras* or saṁhitā-mantras. The mantras which constitute a complement of these five and which refer to the six parts of the body, namely the *hṛdaya, śiras,śikhā, kavaca, netra* and *astra,* are called the *Ṣaḍaṅgamantras*.

Pāśupata worship

The text Śaivacintāmaṇi's fifth paṭala describes the 'Pūjā' (or worship) beginning with the invocation (*āvāhanaṁ*) of the Lord to the ending in giving send off (*visarjanaṁ*) to the lord invoked. Here again detailed prayer to each of the five faces of the lord mentioned above substantiate the prevalence of '*Pāśupata' system* of worship over others in the state of Orissa. The description of '*āvāhana pūjā'* again in this *paṭala* is a strong point.

Mantra and Japa

The worship of Lord Śiva involves various invocations for purification of mind and cleansing of all kinds of impurities. It is said

that one should be one with this spirit of surrendering oneself to the lord completely. One should worship the great god Maheśvara, with concentrated mind, having became Bhava, with mantras, *Rudragāyatrī, Oṁ, Īśāṇa, Rudra, Tryambaka* with flowers. Leaves, water, sandal etc. After saying '*namaḥ Śivāya*' with this mantra one should do a recitation. Then one should do a circumambulation…. One should meditate.

The *pañcākṣaras* are the five sacred syllables which express obeisance to Śiva, and in the *Purāṇas* they are regarded as superior even to Veda. It is the *mūla mantra*, the most fundamental of all the mantras associated with Śiva. It is only on becoming properly initiated by means of these rites that a devotee can engage himself in the *pūjā* of *Śiva*.

The term *mantra* was originally applied to a *Ṛgvedic* prayer, an *atharvaṇic* incarnation or a ritualistic formula. In Śaivism, it denotes all utterances which possess the characteristics of one or more of these three: prayer, incantation or ritualistic formula. Generally speaking, the Śaivites regard as mantras all utterances- whether Vedic or non-Vedic which relate to the god and the vocalization of which helps the worshipper to meditate upon course of worship. The Vedic *mantra* s are no doubt given great prominence, and they generally gain precedence over other kinds of *mantras*, except the *pañcākṣara-mantra*, which according to the Śaiva view point actually represents the very quintessence of the Vedas. The five *mantras* relating to the five aspects of Śiva, being Vedic in origin, are also assigned a prominent place in the worship of Śiva.

But as indicated above, the five syllables *Śi-vā-ya-na-maḥ* form the *mantra* par excellence of the Śaivites. This *mantra* is often called *pañcākṣara*. This is the *mūla-mantra* of the god, and is invariably employed when rites of high significance such as *āvāhana* or *prānapratiṣṭhā* are performed. The *mūla mantra* is repeated by way of *japa*.The *Kurma Purāṇa* narrates how Nandin once became over powered with a strong longing to recite japa of the *pañcākṣara*. The desire was granted in this manner Nandin accomplished five rounds of *japa*, after which Śiva stopped him from the continuation of his strenuous penance and elevated him to higher ranks.The most famous six syllable mantras of Śiva very powerful. Who read everyday six syllable *mantras*[21] fulfill all wishes.

The sacred syllable *oṁ* may be ranked next to the Vedic *mantras* and the *pañcākṣara*. The *Upaniṣads* identify oṁ with the higher self. The ritual texts and the *smṛtis* refer to it as the sacred syllable which is always to proceed the recital of the Vedas and the repetition of the *gāyatrī*

Prayer related to six letters of the mantras of Śiva. It gives emphasis on the japa of the five- lettered mantra of Śiva. The '*Oṁ-kāra*' or '*praṇava*' added to the ' *Śiva -paṅcākṣara*' becomes a six –lettered mantra of Śiva. 7th *paṭala* the sacrifice with the kindling of '*Śivāgni'* is described. In the end of the author remembers the names of twelve devotees of Śiva with respect as follows, viz. *Bāṇa,Bhīma,* Pṛthvī,*Rāmachandra, Parśurām, Kārtikeya, Śrīkṛṣṇa, Upamanyu, Śatamukha, Asita, Rāvaṇa and Taṇḍi*.

Puja

The Epics and the *Purāṇas* speak for the first time of *pūjās* a form of worshipping gods. Generally speaking, this form of worship seems to have been originally restricted only to the great gods, with the exception of Brahmā. The Sun god is sometimes identified

with Śiva and sometimes with Viṣṇu; probably on account of this identification this god also is offered Pūjā. Thus the *pañcāyatanapūjā*, that is to say, the worship of the five gods Gaṇeśa, Sūrya, Viṣṇu, Śiva and Śakti has been widely prevalent all along. This *pañcāyatanapūjā* must be dated back to fire early times, for the god Śiva himself is said to have started it. In as much as the *Śiva-pūjā* itself is concerned, its popularity becomes quite evident from the many references to it occurring in the epics and the *Purāṇas*.

By and large, *pūjā* as reflected in the Epics and the *Purāṇas* may be equated with *upāśanā, saparyā, āradhanā*, or *arcanā*. This form of worship involves the employment of a variety of *pujopakaraṇas* and *pūjāsaṁbhāras*. These many kinds of utensils, flowers, sandalwood, *dhupa, dīpa*, and various articles of *upacāra* like *darpaṇa, chatra, cāmara, vyajana, patāka* and *tālavṛnta*. *Śaṅkha* and *ghaṇṭā* are also mentioned as accessories of the *pūjā*. Over time, the *pūjā* rituals came to be further elaborated. The idol of the divinity constitutes the essential basis of all *pūjā* rites. Vedic mantras were often recited to accompany these rites. For instance, Vedic *Mantras* were recited when the idol was bathed or when the *naivedya* was made and *upacāras* were offered to it. Thus, the same kind of connection was attempted to be maintained between the *pūjā* and the Vedic chanting.

The *pūja* form of worship which in its initial stages was pre-sum ably more or less simple became more and more elaborate, particularly in the case of Śaivism. The *Āgamas* seemed to have paved the way for such an elaborated system of worship. Stating that Śiva could be conceived and worshipped in various ways. The main *Āgamas*, namely, Kāraṇa, Kāmika, Suprabheda, Raurava and Ajita, have described in detail the various images of Śiva. They also describe the rituals relating to the installation (*pratiṣṭhā*) of these images. These *Āgamas* concern themselves for the most part with the rituals relating to these images. Such rituals are of two kinds, those which are to be performed daily (*nitya*) and those which are to be performed on special occasions (*naimittika*). The process of elaborating upon the *Śaiva pūjā* ritual which seems to have been stated in the *Purāṇas* may be said to have reached its culmination in the *Āgamic* Śaiva rituals. In these works we only see the *pūjā* ritual in its early development and growth. As a matter of fact, the epics make but very curt references to this worship.

On the other hand, the importance of *pūjā* is fully realized and frequently proclaimed in the *Purāṇas*. In the following statement from the *Liṅga purāṇa*. Viṣṇu is described to have worshipped Śiva with flowers to the accompaniment of the recital of the one thousand names of Śiva. The importance of *upāsanā* in general is pointed out in the *Liṅga Purāṇa*, but special emphasis has been placed there on the Śiva *pūjā*. The *Skanda Puraṇa* gives a detailed description of the Śiva *pūjā*. The advantages of worshipping Śiva and the disadvantage of not worshipping him are often recounted.

One should worship gods with his own mantras, with flowers, leaves and water, *Brahmā Śankara*…"

Flowers, *dhūpa, dīpa* and *naivedya* are often specially mentioned as the requisites of the *pūjā*. *Pujā* with *gandha, Puṣpa* and *akṣta* is found in the Śiva *Purāṇa*. Various other aspects of the *pūjā* such as *namaskāra, pradakṣiṇa* and *nyāsa* are found in the *Purāṇas*[22]. *Bhūtaśuddhi* and *nāḍīśodhanā* are

among the rites mentioned in the *Devīgavata-Purāṇa*.

In this chapter, such as *yajña*, *tapas*, *tīrthas*, *stotras*, *dhyāna* and *vrata*, are harmoniously blended into the *pūjā* ritual, and we find a reflection of all with the fully developed form of that ritual, best recorded in the *Āgamas*. It is this fully developed form of *pūjā* which is prevalent in the temples of the South. As mentioned elsewhere, the *Āgamas*, regarded as the principal authoritative texts dealing with the *pūjā* ritual, are 28 in number. The *Āgamas* have given rise to several manuals or *paddhatis* which help the worshipers with many practical details in connection with these rituals.

The worship of Śiva an indication of some of these has already been describe. A few more may be referred to at this stage. The *bilva* tree, for instance, is represented in the *Purāṇas* as being sacred to Śiva, the triploid leaves of the tree are therefore offered to the god in pūjā. Similarly, *bhasma* (holy ash) is mentioned in the *Purāṇas* being of high significance to Śaivites.

Worship of Śiva in LiṅgrājaTemple

Odisha is famous for Śiva worship since many centuries. In Bhubaneswar only there are more than five hundred Śiva temples in which Śiva liṅga is being worshiped.According to the traditional accounts of *Mādalā Pāñji* the temple of *lingarāja* was built by Yajāti Keśari, Ananta Keśarī and Lalāṭendu Keśarī. Some consider the last two names to be two other names of Udyota Keśarī Caṇḍihara *Yayāti-II*(C.1020-1040) began to build the *Liṅgarāja* temple, which was completed by his son Udyota Keśarī (C.1040-1065). The temple of Brahmeśvara was built just before the construction of the temple of *Liṅgarāja*. Accumlated and crystallized experience of several Centuries of preparation to put up temples of Śiva under the *Śailodbhavas*, the Bhaumakaras and the Somavaṃśīs resulted in the culmination of the *Liṅgarāja* temple.

Liṅgarāja is called the king of *liṅgas*, not because of the reason that it was huge or big in size but because it is worshipped according to the *śāstras* in a great grand temple built in an artistically excusite style. We do not find a huge temple of 148ft. in height. The reason for this the *Śaivacintāmaṇi* offer is that the *liṅgaṁ* found in the shape of some pebbles is a '*svayambhu-liṅgaṁ'* that has appeared on the spot of his own accord. The *liṅgaṁ* in brilliance at base is like the crystal, at the middle it is deep blue and at the top it is red like the ruby Hence, it is called the ' *Trī- Bhubaneśvara*' or the lord of the three worlds.

In the temple, everyday the idol of *Pañca-Vaktra-Śiva* is worshipped.Still then, every temple maintains its own tradition of worship and *Śaiva-cintāmaṇi* is the authoritative text to keep up the tradition of *pūjā* of *Liṅgarāja* in the temple in Bhubaneswar.

If one worships Lord Śiva everyday, then he attains peace, happiness, good health, wealth and prosperity in one's life. Lord Śiva is considered to be the father of whole world in Śaivite tradition. He is accepted as the most divine among all gods and Goddesses. The devotees called Him as 'Mahādeva'.

The eighth *Paṭala* gives a vivid description of the tradition and practice involved in having a *darśana* of Śiva in the temple of *Lingarāja* in Bhubaneswar. As regards the circumbulation, A Yati or *Sanyāsin* should move in right direction by keeping the Lord to his left, a *Brahmacārin* or celebrate should move in the

left direction by keeping the God to his right side and the house-holders should move in the left direction first by keeping the god towards their right side and go upto the outlet for water of the main temple on the northern side and then again return by keeping the Lord in the temple towards their left side and thus perform the circumbulation. In the end it adds beautiful prayers of Śiva in simple language. It also mentions to offer different kind of flowers to the god in different lunar months. Then it attaches importance to the observance of the '*Śiva- caturdaśī-vrata*[23]' and describes it. Then the author with his own introduction in a secretive tantric manner in the end completes the book '*Śaivacintāmaṇi'* for the firm devotion of the devotees towards Lord Śiva.

Conclusion

The *Śaivacintāmaṇi* text is fully devoted to the rituals and glorification of Lord Śiva in this text there are descriptions related to the glorification as the Lord of the Universe. He is supposed to give full protection and blessings to the devotees in Śiva tradition. Starting from the Vedic age *Rudra* is known as main power house of knowledge and wisdom. Many *Purāṇa* have glorified lord Śiva in various manner from time to time. This style of Worship is sometimes different and considered to be unique in local importance. This is because of local customs and traditions so also it happened exactly in that manner. In case of Liṅgarāja of Bhubaneswar.

In this text the uniqueness of Lord Śiva is described through local mode of worship following *Purāṇic* tradition of Śaiva tradition

References

1. *sevantīmaliyūthībhirmālatīkaravīrkaiḥ*
2. *Ibid sloka-7 Śaivacintāmaṇiḥ*
3. *Ibid*
4. *nīlatpalābjakumudairūrdhvā līdhamadhuvrataiḥ/*
5. *śālatālaka hintālapiyālasaralāmalai/*
6. *nārikelāmrapanasaśrīguvākakapitthakaiḥ/*
7. *nityaṁ snāyadatha śivamanāḥ śaivagaṅgā jaleṣu/*
8. *rudrākṣāntrai hyaghakulabhidaḥ śambhubhaktyā dadhīta/*
9. *liṅgotkośārdhaka mapi bhavet kṣetramaiśaṁ svayambho/*
10. *tatsānnidye himakaraśirastatra nāvāhanaṁ hi /*
11. *vāṇaṁ liṅgaṁsakala sukhadaṁ kukkuṭasyāṇḍavadya/*
12. *Śaivacintāmaṇiḥ sloka-20*
13. *Ibid sloka-23*
14. *Ibid*
15. *Ibid*
16. *Ibid*
17. *datveśaṁ pāyasamapi śataṁ dakṣīṇamūrtiliṅgāt/*
18. *sthānaṁ vakṣe japaphaladakaṁ cātha karturjapasya/*
19. *mukhaṁ va kāraṁ daśaḍhātha japtvā/*
20. *aghoramantraṁ daśadhātha japtvā/*

21. *Śaivacintāmaṇiḥ sloka-104,105,106, 107,108, 109*
22. *Cf .MatsyaP., 54.8-23*
23. *Śaivacintāmaṇiḥsloka-37*

Bibilography

1. Bhatt,N.R.,(2008), "Śaivism in the Light of Epics,Purāṇas and Āgams", Indica Books D40/18 Godowlia, Varanasi.
2. Chakrobarti, Haripad,(1970), " Pāśupata Sūtram (Eng. Translation), Academic Publishers, Calcutta.
3. Pattanaik, Dukhisyama, (1994), "*Śaivacintāmaṇi*", Directorate of Culture, Orissa, Bhubaneswar- 751014
4. Pattanaik, Devdutt,(2017), "*Śaiva to Śaṅkara*," Harper element,An imprint of Harper Collins Publishers and Indus Source Books.
5. Pattanaik, Devdutt,(2017), *"7 Secrets of Śiva"* west land publications ltd.
6. Mishra, K.C.,et.al, (1993), "*Sudies in Śaivism*", *Institute of Orissan Culture* Vivekananda Marg, Bhubaneswar – 751002, Orissa.
7. Kumar,Brothers, (1990), Phallism in Ancient Worships Westropp and Wake", Delhi.
8. Shastri,L.J., (1990, rpt.), "*Liṇga-Purāṇa*(*Ancient Indian Tradition And Mythology*)," Translated by A Board Of Scholars,(Vol.5,p-1), Motilal BanarasiDass Publishers Private Limited, Delhi (1st ed- 1973)
9. Shastri, L.J., (1996),"*Śiva Purāṇa* (*Ancient Indian Tradition And Mythology*)", Translated by A Board Of Scholars,(Vol.1,p-1), Motilal BanarasiDass Publishers Private Limited, Delhi (1st ed- 1970)

Role of Chance and Fate in Hardy's novel

Rajni

Hardy himself classed "Far From the Madding Crowd" among his 'Novels of Character and Environment'. It recreates the English countryside of the early 19th c. in which Hardy grew up. Weatherbury is an English village before the coming of railways – a village where life has gone on unchanged for hundreds of years, carrying on its old traditions not only in farming but in social traditions in dress, local habits, and superstitions.

Hardy shares the immense creative energy of the great Victorians, but his imaginative world is entirely his own. His vision is almost wholly tragic. The Victorian critics and public attracted him continually for his pessimism. Hardy replied that he held no pessimistic philosophy, a novel was not an argument but 'simply an endeavour to give shape and coherence to a series of seemings or personal impressions.' With his dark vision goes a deep human sympathy.

> In Hardy's novel, fate appears in a great variety of forms – chance and coincidence, nature, time, woman, and convention. All of these are manifestations of the Immanent Will and not the fate itself.

Many Victorian authors used the technique of chance and coincidence as a means of furthering the plot but Hardy moulds it in a form that affects the lives of the characters. Bathsheba Everdene, his heroine, is a capable but wilful and egotistical young woman, who owes her farm. Her faithful lover is Gabriel Oak, who has lost his flock of sheep by a stroke of fate and is engaged by her as her bailiff. She involves herself first by her folly with farmer Boldwood, a middle-aged neighbor whom she cares nothing about, but later falls in love with the swagging Sergeant Troy, the illegitimate son of one of the 'gentry'. He has seduced and promised marriage to Fanny Robin, one of Bathsheba's servant girls, but he forsakes her and marries Bathsheba. The marriage proves disastrous. By accident, Bathsheba discovers Troy's treatment of Fanny, who has died in childbirth. He leaves Weatherbury and is believed to be drowned. Bathsheba makes a half – promise to marry Boldwood if her husband doesn't return in seven years. A little over a year later, Boldwood is giving a Christmas party when Troy breaks in to claim his wife. Boldwood shoots him and tries to shoot himself. He is declared insane and condemned to life imprisonment. This leaves the way open for a quiet union between Bathsheba and Gabriel Oak.

"Far From the Madding Crowd" is the only one of the Wessex novels which is allowed a happy ending. Yet the tragic elements outweigh the final reconciliation. Like tragedy, it leaves us face to face with the mystery of human evils and sufferings. As Hardy sees it, the personal fate of the individual is largely at the mercy of impersonal forces over which he has no control, or at the mercy of minor mistakes which prove to have incalculable major consequences. The innocent and guilty alike are struck down by these forces and errors.

Fanny Robin mistakes the church where she is to meet Troy for their wedding. He is so angry that he postpones the date. Meanwhile, he meets Bathsheba and deserts Fanny that leads to the death of Fanny and her child and the ultimate ruin of Bathsheba's marriage. Bathsheba sends a silly valentine to Boldwood, in a moment of thoughtless bad taste and the chain of events set up that leads to the murder of Troy and the imprisonment of Boldwood.

The development of Hardy's plots depicts the frequent use of chance and circumstances. When one reflects on Hardy's fatalistic view of life, it is seen to be fluctuating between fatalism and determinism. On the one hand, fatalism is a view of life that one acknowledges being controlled by fate which is a great, impersonal, primitive force existing through all eternity, absolutely independent of human wills and superior to any god created by man. On the other hand, determinism acknowledges that the human will is not free and human beings have no control over their destiny.

Hardy portrays his attitude towards the individuals caught in the baffling circumstances which are deeply humane and compassionate. What he emphasizes as the most remarkable quality in men are his courage and dignity. His heroes and heroines, though so often defeated, are never abject, they go on fighting. We see it in the symbolic picture of Fanny Robin, the simple, ignorant farm servant, seduced and deserted by her lover. Alone and penniless, she drags herself, mile by mile and finally yards by the yard, along the road to the workhouse. Nobody supports her but sheer determination helps her to reach a shelter.

A struggle between men and an omnipotent and indifferent fate is Hardy's interpretation of the human situation. It imposes a pattern on his picture of human scenes. It determines the character of his novels. Man and woman in Hardy's novel are ranged against impersonal forces. His characters are not aware of this. Bathsheba looks at Troy as the author of her misfortunes. In Hardy's scheme, chance plays a hide and seek game with the characters. Hardy himself says 'When two persons make a program, Fate is the invisible third partner.'

It is clear that everything is not under the control of individuals by exploring the moral choices faced by various characters and the consequences of those choices. Fate rules many of the characters and they seem unable to escape from certain experiences or events. At the start of the novel, Gabriel Oak has made all the right decisions to advance his career but he loses everything through a single ill-fated event. Reversals of fate are also experienced by Bathsheba, as she goes from being financially destitute to being a wealthy heiress. The characters are brought together by various chance encounters such as the accidental meetings of Gabriel Oak and Bathsheba, and Bathsheba and Troy. Fate suggests that human lives play out amidst larger forces that they cannot control or predict.

Hardy sees life as a struggle against the circumstantial forces. For example, an incident plays a vital role in causing joy or pain, and often an act of behavior that is not careful or polite and that might cause embarrassment or offense in early youth which can wreck one's chances for happiness. Fateful incidents, for example, overheard conversations and undelivered letters are the forces against a mere man in his efforts to control his destiny. Additionally, Fate is

endowed with varying moods that affect the lives of the characters when it appears in the form of nature. In Hardy's novel, fate appears in a great variety of forms – chance and coincidence, nature, time, woman, and convention. All of these are manifestations of the Immanent Will and not the fate itself.

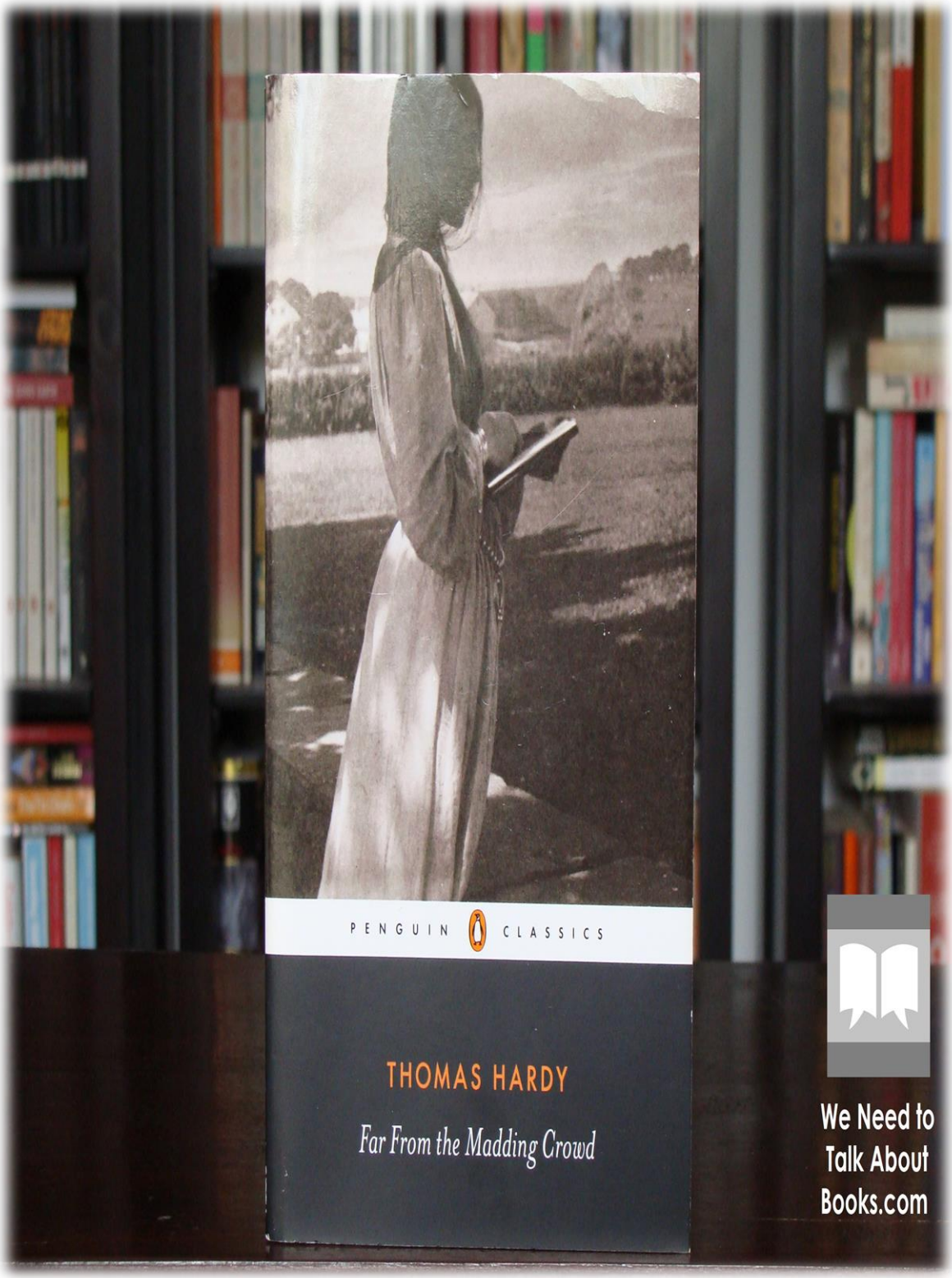

आलेख

कामकाजी महिला : संघर्ष की कहानी

डॉ. सरोज कुमारी

सामान्यतया कामकाजी महिला शब्द को सुनकर हमारे मन मस्तिष्क में नौकरी करने वाली महिला की छवि उभरती है। जो एक निश्चित समय पर नौकरी करने के लिए घर से बाहर जाती है और काम करने के पश्चात निश्चित समय सीमा के भीतर घर वापस आ जाती है ?ऐसा क्यों?कामकाज से क्या तात्पर्य होना चाहिए ?कामकाजी महिला किसे कहा जाना चाहिए ?यह एक विचारणीय प्रश्न है। समाज की सामान्य धारणा के अनुसार घर से बाहर किसी ऑफिस या किसी संस्था में काम करने वाली महिलाएं कामकाजी महिला मानी जाती है। खेतों में काम करने वाली मेहनत मजदूरी करने वाली दूसरों के घरों में झाड़ू पोछा करके धन कमाने वाली और घर के भीतर ही विभिन्न हस्तकला सिलाई कढ़ाई बुनाई या फिर ट्यूशन पढ़ाने वाली महिलाओं को भी कामकाजी महिलाओं की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। एक सामान्य स्त्री जो घर में 16 घंटे काम करती है ,वह कामकाजी महिला क्यों नहीं ?यह एक गंभीर प्रश्न है ।वास्तव में कामकाजी महिलाओं का वर्गीकरण किया जाए तो 4 तरह के वर्ग मिलते हैं । पहला -दफ्तर या संस्था में काम करने वाली महिलाएं, दूसरा- घर के बाहर मेहनत मजदूरी करने वाली महिलाएं तीसरा -घर के अंदर विभिन्न हस्तशिल्प के माध्यम से धन कमाने वाली महिलाएं चौथा -औद्योगिक जगत फिल्म राजनीति या अन्य उच्च पदों पर काम करने वाली महिलाएं । कुल मिलाकर समाज के लगभग हर वर्ग की स्त्री चाहे वह ग्रामीण वर्ग हो या शहरी वर्ग किसी ना किसी रूप में परिवार की आर्थिक स्थिति के सुधार हेतु अपना योगदान देती है। खेती और किसानी करने वाले परिवारों में स्त्रियां खेतों और घर दोनों में अपना अहम योगदान देकर परिवार को आर्थिक बल देती हैं ।, मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के 148 वें श्लोक में स्त्री की आजादी को लेकर अनेक तरह की हिदायतें दी गई । जो हमारी समाज और संस्कृति का स्थाई रूप से हिस्सा आज तक बनी हुई है। उसमें साफ कहा गया है कि स्त्री बाल काल में पिता की, युवावस्था में पति के और बाद में पुत्रों के अधीन होकर रहना चाहिए। हमारे सामाजिक स्थिति को विश्लेषण करने के लिए कुछ तयशुदा सिद्धांत है जिन्हें मनु स्मृति से लेकर केट मिलेट , जर्मन ग्रियार और सिमोन द बरुवा की किताबों में भी हम पढ़ते हैं। किताबें कुछ और कहती हैं? निजी जिंदगी में सच अलग ही है। जो एक कामकाजी स्त्री सदियों से झेल रही है । कहीं उससे टकराकर चूर चूर हो रही है तो कहीं समाज में नई व्यवस्था को गढ़ रही है। नौकरी पेशा या घर के भीतर अपनी क्षमता से अधिक

> भारतीय समाज के मध्यवर्गीय ढांचे में हमने स्त्री आधुनिक और आत्मनिर्भर तो बनाया पर उसको वह माहौल देने में असमर्थ रहे जहां उसे बराबर का सम्मान और हक मिल पाता। आर्थिक आजादी ने स्त्रियों को दोहरी और तिहरी जिम्मेदारी में जकड़ लिया है। इसका प्रमुख कारण है पुरुषों के भीतर शंका की भावना और गैरजिम्मेदारी ।

*वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, विवेकानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

कार्य करके स्त्री को कभी न्यायोचित दर्जा नहीं मिला प्रायः नौकरी पेशा स्त्रियों को विवाह के बाद कई बार नौकरी छोड़ने का दबाव भी झेलना पड़ता है या फिर अपमानजनक जीवन जीने को मजबूर होना पड़ता है या फिर परिवार और पति की उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है ?स्त्री सदियों से इन सब समस्याओं को झेल रही है जिसका विपरीत प्रभाव उसके परिवार और समाज पर पड़ता है। कामकाजी महिलाओं की आजादी की पहली शर्त है आर्थिक आत्मनिर्भरता मेरे स्वयं के सर्वे के अनुसार 90% कामकाजी स्त्रियां अपने द्वारा कमाई गई धनराशि को और अपने पति के हाथों में सौंप देते हैं और फिर पूरे महीने एक एक रुपए के लिए पति के आगे अपना भिक्षा पात्र फैलाती रहती हैं। यही कारण है कि ना तो वे किसी तरह के शौक पूरे कर पाती ना ही सम्मान पूर्ण जीवन जी पाती हैं। नौकरी पेशा औरतों की जिंदगी में कुछ बदलाव अवश्य आया है, उसका साक्षात्कार एक बाहरी बड़े स्पेस से हुआ है। उसका अपना समाज बन रहा है। अब वह केवल पाककला तक सीमित नहीं है, किंतु आर्थिक रूप से आज भी कमजोर है ।वह रसोई की दुनिया से बाहर एक बह विकसित समाज का हिस्सा बनी है। कामकाजी स्त्री आज भी दुर्गा की तरह अष्टभुजा रूपी परिवार समाज और अपने कार्यस्थल की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाने में समर्थ है । सुधा अरोड़ा जी का आलेख "आर्थिक आत्मनिर्भरता: स्त्री मुक्ति नहीं पुरुष मुक्ति का दरवाजा" यह संकेत करता है कि पति पुरुष की अधीनता में ही सुख है इस मूलमंत्र को सत्य मानते हुए आपसी अनबन या मनमुटाव का पहला और अहम कारण जरूरी तौर पर लड़की का हाथ में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर मान लिया गया है। भारतीय समाज के मध्यवर्गीय ढांचे में हमने औरतों को आधुनिक और आत्मनिर्भर तो बनाया पर उसे वह माहौल देने में असमर्थ रहे हैं जहां वे बराबर का हत्या सम्मान आप आती इस संबंध में सुशीला टाक भौरें की आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" एक कामकाजी स्त्री के संघर्ष की ऐसी कहानी को उजागर करती है जिसके कुछ अंशों को पढ़कर हरदय थर्रा जाता है ।वहां पर एक कामकाजी स्त्री का ऐसा संघर्ष हमें दिखाई देता है जो कि किसी स्त्री के साथ अन्याय की चरम सीमा को पार कर देता है. उनका पति जब उनके साथ मार पीट करता है और फिर खुद ही गुस्से में खाना नहीं खाता है और जब वे खाना खाने को कहती है तो कहता है कि जब तक मेरे पैरों में गिर कर माफी नहीं मांगेगी तब तक मैं खाना नहीं खाऊंगा। इसी तरह जब उनकी ही कमाई से घर खरीदने का प्लान बनाया जाता है तब सभी घरवाले मिलकर कहते हैं कि हमारे समाज में स्त्रियों के नाम घर नहीं खरीदा जाता, हमारा समाज इसे अच्छा नहीं मानेगा। इस तरह स्त्री अस्मिता पर कई पैने सवाल सुशीला टांक भौरे खड़े करती हैं।

भारतीय समाज के मध्यवर्गीय ढांचे में हमने स्त्री आधुनिक और आत्मनिर्भर तो बनाया पर उसको वह माहौल देने में असमर्थ रहे जहां उसे बराबर का सम्मान और हक मिल पाता। आर्थिक आजादी ने स्त्रियों को दोहरी और तिहरी जिम्मेदारी में जकड़ लिया है। इसका प्रमुख कारण है पुरुषों के भीतर शंका की भावना और गैरजिम्मेदारी । कामकाजी स्त्रियां जब इस स्तिथि से टकराती है तो वे न ही अपने कार्यस्थल के साथ न्याय कर पाती हैं और न ही घर के साथ ,इस सबके बीच वे शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ भी हो जाती है। फलस्वरूप आपसी वैमनस्य ,मनमुटाव ,झगड़ा, ईर्ष्या ,अवांछित दबाव उसके व्यवसायिक जीवन में दखल घरेलु हिंसा आदि समस्याएं उसका जीवन नरक बना देती है। हमारे समाज में साधारण ही नहीं परतिष्ठित महिलाओं ने इस दबाव को झेला हैं। दमयंती जोशी, सोनल मानसिंह तीजन बाई जैसी महिलाओं भी इस देश

को झेला है। कुछ ऐसे नाम भी है जो अपने पतियों के असहयोग के चलते उनसे अलग हुई फिर अपना कैरियर बनाया,जिनमें मेधा पाटेकर एक ऐसा ही नाम है। कुलमिलाकर यह कहना तर्कसंगत होगा कि पति से अलग होकर भी कुछ महिलाएं अपना नाम बना सकी हैं। सवाल यह उठता है कि कामकाजी महिलाएं आखिर काम काज की ओर उन्मुख क्यों हुई??मुझे सीधे सीधे इसके दो कारण नजर आते है,पहला कारण है - आर्थिक स्वतंत्रता और दूसरा कारण है आर्थिक सहयोग। स्वतंत्रता के पूर्व स्त्रियों को पुरुषों के समान रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं थे डॉक्टर अध्यापिका या नर्स यहीं तक उनका रोजगार सीमित था दफ्तर में पुरुष सहकर्मियों की बगल में बैठकर क्लर्क का काम करना महिलाओं के लिए अपमानजनक माना जाता था खास तौर से उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग की महिलाओं के लिए। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारंभिक वर्षों में कामकाजी महिला के रूप में निर्बल वर्ग की महिलाएं ही परित्यक्ता तथा विधवा महिलाएं ही कामकाज के लिए बाहर निकलती थी। प्रेमचंद के हिंदी उपन्यासों को कामकाजी महिलाओं के उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है । 1923 में सबसे पहले उन्हें कानून में नौकरी दिए जाने के अवसर मिले लेकिन वे वहां पर न्यायाधीश का पद गरहण नहीं कर सकती थी अधिकाधिक नियुक्ति अवैतनिक मजिस्ट्रेट के स्थान पर ही उनको सकती थी। 1935 में भारत सरकार द्वारा पारित कानून में स्त्रियों के लिए प्रतिबंधित नौकरियों का उल्लेख भी कर दिया था । स्त्री भारतीय प्रशासनिक सेवा ,पुलिस सेवा ,वन सेवा रेल सेवा, न्याय सेवा आदि में भी नौकरी नहीं कर सकती। इस सब के पीछे बहुत से कारण गिनाए गए जैसे स्त्री शारीरिक रूप से मजबूत नहीं होती इसलिए वह पुलिस सेवा वन सेवा जैसी नौकरियों में नहीं आ सकती स्त्रियां बौद्धिक रूप से पुरुष के समकक्ष नहीं होती वह गणित व आंकड़ों का लोक लेखा जोखा रखना नहीं जानती ,इसलिए वे अर्थ से जुड़ी हुई नौकरियों में नहीं जा सकती । स्त्रियां प्रकृति से भावुक होने के कारण किसी भी पद पर बैठकर तटस्थ विश्लेषण करके निर्णय नहीं ले सकती ,इसलिए वे न्याय सेवा में नहीं जा सकती इन सबके बीच 1940 में भारतीय न्याय सेवा के अतिरिक्त सभी सेवाओं से यह प्रतिबंध हटा लिया गया। इस शर्त के साथ की निसंतान ,विधवाएं अविवाहित महिलाएं ही इन। नौकरियों को करने की पात्रता रखती हैं। यही कारण है कि 1960 तक के हिंदी कथा साहित्य में कामकाजी स्त्रियों के चित्र ना के बराबर मिलते हैं। बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र में भी स्त्रियों की नौकरी को लेकर विवाहित महिलाओं पर ठीक इसी तरह प्रतिबंध लगाए गए हैं । शनै शनै 1940 के बाद संविधान लागू होने के बाद विवाहित अविवाहित स्त्री पुरुषों में भेद किए बगैर सरकारी और गैर सरकारी हर क्षेत्र से स्त्रियों पर लगा हुआ प्रतिबंध हटा लिया गया। अनेक समाजशास्त्रियों ने धन अर्जन करने के लिए वर्ग भेद का आधार भी माना है । उनका मानना है कि निम्न वर्ग की स्त्रियां प्रायः आर्थिक कारणों से घर के बाहर निकलती है और परिवार में रोजी रोटी की व्यवस्था में अपना योगदान देती हैं। मध्य वर्ग की महिलाएं सामाजिक कारणों से घर के बाहर निकलती हैं और परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत कर के समाज में परिवार के महत्व को बनाए रखने में अपना सहयोग देती हैं। उच्च वर्ग की स्त्रियां व्यक्तिगत एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से घर से बाहर निकलती हैं। जिसमें पहला कारण है स्वयं को स्थापित करना और दूसरा कारण है खाली समय व्यतीत करना । रोहिणी अग्रवाल ने अपने आलेख " कामकाजी महिलाएं: कामकाजी क्यों" में स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियों के कामकाजी होने में लैंगिक भेद ,वर्ग जाति,धर्म ,वर्ण आदि समान रूप से सामने आते हैं। उन्होंने कामकाजी महिलाओं के कामकाज करने के प्रमुख रूप से तीन

कारण उजागर किए हैं। पहला कारण है आर्थिक विषमता जैसे महंगाई भौतिक सुख साधन और आर्थिक स्वतंत्रता जिनकी वजह से महिलाएं घर के बाहर निकलती है। दूसरा कारण है शिक्षा पर प्रभाव ।यदि शिक्षित स्त्रियां ऊंचे और प्रतिष्ठित पदों पर पहंचेंगी तो वह शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए स्त्रियों के हित में अधिक काम कर सकेंगी। तीसरा कारण है समाज का विकसित दृष्टिकोण यदि स्त्रियां बाहरी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ मिलकर कार्य करेंगी तो वे अपने आसपास के या उनसे जुड़े हुए समाज का दृष्टिकोण विकसित करने में भी मदद कर सकेंगी। साठोत्तर भारत में आर्थिक परिदृश्य में एक नया आयाम जुड़ा जिससे शिक्षा के प्रसार के रूप में देखा जा सकता है । शिक्षित महिलाएं अधिक से अधिक संख्या में धन उपार्जन करने के लिए आगे बढ़ी तथा स्त्रियों ने पुरुषों के समान शिक्षा के अवसर जुटाए, शिक्षा नीति में बदलाव हुआ तथा स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा व रोजगार के अवसर मिले? समाज का दृष्टिकोण भी विकसित हुआ । देश की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव के कारण निश्चित ही स्त्री की स्थिति में भी बदलाव आया है। परमिला कपूर का एक सर्वेक्षण है कि 46% पतियों को स्त्री के नौकरी करने पर कोई आपत्ति नहीं है। इसके विपरीत गोल्डस्टीन का सर्वे कहता है कि 50 से 75% पतियों के प्रेरित करने पर ही स्त्रियां नौकरी कर रही हैं । रानाडे रामचंद्रन का सर्वे कहता है कि दिल्ली के 88% वृद्धि लोग स्त्रियों के नौकरी करवाने के पक्ष में हैं। इसका मूल कारण आर्थिक आधार ही है। यदि आज कामकाजी महिलाओं के समाज पर विहंगम दृष्टि डालें तो पता चलता है कि ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां स्त्रियां नहीं है , सेना ,पुलिस, कस्टम ,पत्रकारिता ,वायु सेना जैसे चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में भी कार्यरत हैं । विमान चालक इंजीनियर उच्च अधिकारियों के रूप में वह अपनी योग्यता सिद्ध कर रही हैं ।रानी जेठमलानी ,नीलोफर भागवत ,रजनी महाजन जैसे महिलों वकीलों को कौन नहीं जानता जो न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहे हैं। हमारे चारों तरफ ऐसी बहुत सी प्रतिष्ठित महिलाएं हैं जो देश के उच्च पदों पर कार्यरत हैं किरण बेदी पुलिस अधीक्षक, मृणाल पांडे संपादक ,अमिता मलिक पत्रकार के रूप में खासी लोकप्रिय रही हैं फिल्मी जगत में स्त्रियां पुरुषों से कहीं आगे निकल गई हैं और अब भारत ही नहीं भारत के बाहर भी भारतीय मूल की स्त्रियां व्यवसायिक जगत में पुरुषों से आगे बढ़कर अपना परचम लहरा रही हैं। प्रोफ़ेसर कुमुद शर्मा अपने आलेख "कामकाजी स्त्रियों का संघर्ष" में कहती हैं कि स्त्रियों के घर से बाहर निकलने पर उनके भीतर महत्वाकांक्षा की भावना उजागर हुई है। जीवन वृति के विकास के लिए वह नए-नए सोपानो को तलाश रही है और परिवार समाज तथा देश के प्रति अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए आत्मनिर्भर बन रही हैं। उनका मानना है कि इन सबके बीच स्त्रियों का शोषण और उनका संघर्ष भी नए-नए रूप में अपनी जड़ें मजबूत कर रहा है ।दोहरी जिम्मेदारी से जूझती कामकाजी महिलाओं को आज भी आर्थिक स्वतंत्रता नहीं मिल पाई। उनके व्यक्तिगत संबंधों में लगातार टकराहट बढ़ रही है । शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार हो रही है तथा तनाव और दबाव झेल रही है। पुरुष वर्ग ने शोषण के नए नए हथियार अपना लिए हैं ।वह अपना मनचाहा कार्य भी चुन नहीं सकती तथा कहीं-कहीं पति ही उन से प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं । उन पर लगातार सामाजिक दबाव भी बढ़ रहा है। मिल मजदूरों और खाद्यान्नों में काम करने वाली महिलाओं का संघर्ष बेहद असहनीय है। मिल मजदूरों के द्वारा ही मिलों में काम करने वाली महिलाओं का शोषण किया जाता है और मिल मालिकों के द्वारा भी उनका शारीरिक और मानसिक शोषण किया जाता है। यही कारण है कि कामकाजी महिलाओं से यौन

उत्पीड़न के मामलों में लगातार वृद्धि हो रही है। कुल मिलाकर कामकाजी महिलाओं का संघर्ष निरंतर बढ़ता ही जा रहा है जिस आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक सरोकारों को लेकर वे घर की चारदीवारी से बाहर निकली वह उद्देश्य सर्वथा विफल होता नजर आ रहा है । अपने संघर्ष को समाप्त करने के लिए इन कामकाजी महिलाओं को ही आगे आना होगा और अपने विषम परिस्थितियों के बीच ही समस्याओं का समाधान निकालना होगा परिवार समाज और देश के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए उन्हें स्वयं के प्रति भी जिम्मेदारियों को निभाना होगा तभी समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण होगा जिससे स्त्री समाज ही नहीं बल्कि संपूर्ण पुरुष समाज भी एक समरसता पूर्ण समाज का निर्माण कर सकेगा। कामकाजी महिलाओं के जीवन दूसरे पहलू पर बात करें तो महिला सशक्तिकरण का मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण दिखाई देता है। समाज में हम नौकरी पेशा या आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं के कई वर्ग देखते हैं कहीं-कहीं पर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं का उनके परिवार में ठीक तरह से तालमेल बैठता नहीं दिखाई देता वह दम है आर्थिक उन्माद में इतना विलीन हो जाती है कि परिवार के परति अपने दायित्व को ही भूल जाती हैं समाज में ऐसे अनेक उदाहरण हमारे चारों ओर बिखरे पड़े हैं आर्थिक आत्मनिर्भरता के इस दौर में स्त्री और पुरुष समान रूप से परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने की उम्मीद रखते हैं लेकिन कहीं स्त्री तो कहीं पुरुष अपनी कामकाजी बिजी जिंदगी के कारण अपनी अपनी भूमिकाएं निभाने में विफल हो रहे हैं जिससे समाज का ढांचा गड़बड़ा रहा है। समाज से नैतिक मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं और आत्मनिर्भरता एवं सशक्तिकरण के आसमान को छूने की प्रतिस्पर्धा के कारण स्त्री और पुरुष दोनों ही परिवार और समाज की जिम्मेदारियों के प्रति अपनी भागीदारी निभाने में सफल नहीं हो पा रहे। उच्च मध्यवर्गीय समाज में आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण भौतिक समस्याएं भी उत्पन्न हो रही हैं । पूर्व में पुरुष ही घर की आर्थिक जिम्मेदारी को निभाते थे , स्त्री का उसकी द्वारा कमाई गई धन राशि पर पूरा अधिकार था किंतु वर्तमान समय में जब से स्त्रियों ने कामकाज की दनिया में प्रवेश किया और वे एक निश्चित पूंजी की अधिकारिणी तो बनी किन्तु उस पर उसके पति का कोई अधिकार नहीं। इससे पति-पत्नी के बीच भावनात्मक रिश्ता दरकने लगा है। धन कमाने की अंधी दौड़ में पति और पत्नी दोनों ही 10:00 से 5:00 तक की नौकरी के अलावा देर रात काम में जुटे रहते हैं। युवा दंपत्ति परिवार बढ़ाने की बात भी सोचना पसंद नहीं करते कारण उनकी व्यक्तिगत निजी जिंदगी में इतना समय ही नहीं कि वे बच्चों का ठीक ढंग से पालन पोषण कर सकें। संस्थानों में अस्थाई रूप से काम करने वाली कामकाजी महिलाएं के साथ बच्चों को जन्म देने संबंधी एक नई दुविधा उत्पन्न हो गई है ।अस्थाई पदों पर काम करने वाली महिलाओं को किसी भी तरह की प्रसवकालीन अवकाश की व्यवस्था संस्थानों के द्वारा नहीं है, जिससे इस मोड़ से होकर गुजरती है तो कई बार उनको अपने करियर को दांव पर लगाना पड़ता है और नौकरी छोड़नी पड़ती है या फिर बहुत सी कामकाजी महिलाएं अपनी नौकरी चले जाने के डर से बच्चों को जन्म देने की बारे में नहीं सोचती, वे या तो निसंतान जीवन जीने को मजबूर होती है या फिर एक बच्चे को जन्म देने के बाद आगे कभी नहीं सोचती। सरकारी और गैर सरकारी तंत्र की व्यवस्था के कारण सामाजिक ढांचा पूरी तरह चरमरा गया है। इस तरह के अनेक उदाहरण हमारे चारों तरफ बिखरे पड़े हैं हमें उन कामकाजी महिलाओं की इस मनहा स्थिति को भी समझना होगा तभी वह अपने परिवार

और अपने कार्यस्थल पर अपनी बहुमुखी जिम्मेदारी निभा सकेंगी। समाज स्त्री और पुरुष की समान भागीदारी

से ही मजबूत बन सकता है । यह सत्य है कि स्त्री और पुरुष समाज की स्वस्थ नीव का वह मजबूत आधार हैं जिसके ऊपर परिवार की सुंदर इमारत खड़ी होती है ।आर्थिक आत्मनिर्भरता ,महिला सशक्तिकरण जैसे विषयों में फंसकर स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने अपने अहम के टकराव के कारण एक दूसरे की भावनाओं को समझने में असमर्थ है। यही कारण है कि कामकाजी महिलाओं के जीवन का संघर्ष और अधिक गहन होता जा रहा है। यदि पुरुष एक कामकाजी नौकरी पेशा स्त्री के साथ मिलकर परिवार के पालन पोषण या दूसरे जिम्मेदारियों में मदद करें तो निश्चित ही घर का वातावरण खुशनुमा और शांत रहेगा। परिवार का विकास भी त्वरित गति से हो सकेगा तथा स्त्री और पुरुष दोनों का समृद्ध जीवन समाज को नई दिशा देने में सफल होगा

प्रकृति सरंक्षण और लोकपर्व 'हरेला'

*प्रिया कुमारी

पृथ्वी पर जीवन के लालन-पालन के लिए पर्यावरण प्रकृति का उपहार है। हमारा पर्यावरण धरती पर स्वस्थ जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। हमारा दायित्व है कि हम पर्यावरण को मनुष्य के रहने के लिए उपयुक्त बनाएं। हमारे त्योहार किस तरह प्रकृति के संरक्षण व उसके महत्व को बनाए रखते हैं इसका जीता जाता उदाहरण है उत्तराखंड का सांस्कृतिक विरासत लोक पर्व- 'हरेला'। उत्तराखंड को देवताओं की भूमि कहा जाता है।अपनी मनोरम सुंदरता, शांत वातावरण व प्रकृति के खूबसूरत दृश्यों की वजह से वह देश-विदेश के सैलानियों को अपनी और खींच लेती है। पहाड़ों की वादियां देख इसे धरती का स्वर्ग कहना गलत नहीं होगा। उत्तराखंड के पहाड़ों की सादगी यहां के लोगों के व्यक्तित्व में भी झलकती है।

> यह हरेला एक सूचक है कि इस वर्ष की खेती किस गुणवत्ता की होगी हरेली को लेकर मान्यता यह है कि जिसका हरेला जितना बड़ा होगा उसकी खेती उतनी ही अच्छी होगी क्योंकि इसमें खेत की मिट्टी व उन अनाजों को बोया जाता है जिनकी उत्तराखंड में सामान्यतः खेती होती है।

देवभूमि उत्तराखंड में प्रकृति अपना समग्र रूप लिए है। आकाश चुंबी पहाड़ों के साथ धरती मां की गोद से निकलती नदियां व चारों ओर फैली घाटियां देखते ही बनती है मानो प्रकृति अपने जीवंत रूप में प्रकट हो गई है। जितनी विविधता यहां के सौंदर्य में है उतनी ही यहां की परंपराओं में भी है।मनुष्य और प्रकृति के बीच का अभूतपूर्व जुड़ाव यहां के त्योहारों में भी दिखाई देता है। प्रकृति पूजा व उसका संरक्षण करना यहां के संस्कारों व पूर्वजों की देन है। पूर्व में बनाई गई परंपराएं व तीज त्यौहार केवल आस्थाओं पर आधारित नहीं थे, बल्कि उनका संबंध संबंध जीवन की व्यवहारिकता व विज्ञानता सके भी था।

हरेला,हरेऊ या हरियाली त्यौहार मूल रूप से उत्तराखंड राज्य के गढ़वाल व कुमाऊं क्षेत्र में अलग-अलग समय मनाया जाता है। जहां अन्य त्यौहार वर्ष में केवल एक बार आते हैं।वही हरेला त्यौहार वर्ष में तीन बार आता है-चैत्र माह, श्रावण मास और अश्विन मास। उत्तराखंड में भगवान शिव कई धार्मिक मान्यताओं के मूल में हैं इसीलिए श्रावण मास को अधिक मान्यता प्राप्त है। इस दिन परिवार का कोई एक सदस्य वृक्षारोपण करता हैं और इसके अतिरिक्त इस दिन खेतों की शुद्ध मिट्टी को लेकर शिव परिवार की आकृतियां बनाई जाती है व उनकी पूजा की जाती है । यह त्यौहार नई ऋतु के आगमन का परिचायक है ।हरेली पर्व के 9 दिन पूर्व सात प्रकार के अनाज (जौ,मक्का,गेहूं,सरसों,उड़द,गहत) के बीजों को रिंगाल के टोकरी में बोया जाता है। इसे करने की एक अलग प्रक्रिया है सबसे पहले शुद्ध मिट्टी को टोकरी में डाल एक परत बनाई जाती है फिर उसमें कुछ बीज डाले जाते हैं इसके पश्चात पुनः यही प्रक्रिया 5-6 बार अपनाई जाती है। इसे सूर्य की सीधी किरणों से बचाया जाता है और प्रतिदिन पानी से सींचा जाता है।नौवें दिन

*शोधार्थी, मोबाइल- 9582460640, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय

पाती से गुड़ाई की जाती है और दसवें दिन(हरेले के दिन) काटा जाता है। हरेले को काटने के बाद उसे घर के बड़ो के द्वारा चंदन- तिलक-अक्षत से अभिमंत्रित किया जाता है और देवताओं को अर्पित किया जाता है फिर ग्रहलक्ष्मी या घर के बुजुर्गों द्वारा बच्चों को हरेला पूजा जाता है।बच्चों को कुमाऊनी भाषा में आशीर्वचन देते हुए निम्न पंक्तियां कही जाती हैं-

"जी रये, जागी रये,
तिष्टिये, पनपिये,
.....
स्याव कस बुद्धि हो,
स्य जस पराण हो"

आज के इस दौर में जहाँ गाँव के गाँव खाली हो रहे हैं ये त्यौहार अपनो को करीब ले आता है। जिनके परिवार के सदस्य दूर रहते हैं वह अपने बच्चों को दुब,चंदन पीठ्या और अक्षत डाक द्वारा भेजते है और अन्य परिवार साथ बैठकर पकवान कहते है। हरेले के त्यौहार के दिन रसोई में तवे का प्रयोग नहीं किया जाता इसीलिए पकवानों में पूरी,मास(उडद दाल)के पकोड़े,खीर इत्यादि बनाए जाते हैं।

हरेली से जुड़ी कई लोकगीत प्रचलित है इनमें से एक लोकगीत की कथा इस प्रकार है- गांव में एक बहू हरेले के दिन अपनी सास से मायके जाने के लिए अनुरोध करती है लेकिन इस पर सास बहू को कुछ काम सौंप देती है और कहती है कि सात गठरी घास,सात गठरी लकड़ियां,सात घडो में पानी और साथ खेतों को जोतने के बाद तू अपने मायके जा सकती है।तो बहू सूर्यदेव से अनुरोध करती है कि जब तक यह काम ना हो जाए तो अस्त मत होना और सूर्य देव उसका अनुरोध स्वीकार करते हैं काम समाप्त होने के बाद जैसे ही वह अपने मायके के द्वार में कदम रखती है उसकी मृत्यु हो जाती हैं।' इस मान्यता को लेकर तब से हर लड़की पहला हरेला अपने मायके में हीं मनाती है।

हरेला घर में सुख समृद्धि शांति व ईश्वर के आशीर्वाद को बनाए रखने के लिए बोया जाता है। हरेला यहां के लोगों को उनके अस्तित्व से जोड़ता है कि वह किस प्रकार प्रकृति से जुड़े हैं और प्रकृति से ही उनका वजूद है वैज्ञानिकता के संदर्भ में देखा जाए तो कहीं ना कहीं यह हरेला एक सूचक है कि इस वर्ष की खेती किस गुणवत्ता की होगी हरेली को लेकर मान्यता यह है कि जिसका हरेला जितना बड़ा होगा उसकी खेती उतनी ही अच्छी होगी क्योंकि इसमें खेत की मिट्टी व उन अनाजों को बोया जाता है जिनकी उत्तराखंड में सामान्यतः खेती होती है।

आज के संदर्भ में देखें जहां हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड व अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन जैसी विपदायें हमें देखने को मिल रही है इसका कारण यदि हम पहाड़ों के निर्माण की प्रक्रिया में देखें तो कई वर्षों पहले यूरेशियन और indo-australian प्लेटों के टकराने से हिमालय के पहाड़ों का निर्माण हुआ इन जंगलों में टेथिस(tethys) सागर की तलहटी हिमालय की चोटी बनी जिसके कारण हिमालय के पहाड़ों में मिट्टी की मात्रा अधिक है। इसका मुख्य कारण पर्वतों में पेड़ों को लगाने की दरो का बहुत कम होना है।अपनी सुविधाओं की पूर्ति के लिए आए दिन पेड़ों को काटा जा रहा है इसीलिए उत्तराखंड के सुंदरलाल बहुगुणा ने चिपको आंदोलन जैसे क्रांति को उजागर किया पेड़ों की जड़ें मिट्टी को बांधे रखती है परंतु आज सागवान की लकड़ी प्राप्त करने के लिए तेजी से वृक्षों को काटा जा रहा है यह किसी अपराध से कम नहीं।

IPCC(intergovernmental panel on climate change) की रिपोर्ट कहती है की दुनिया का तापमान बढ़ रहा है और 2030 तक पृथ्वी का तापमान 1.6°c

तक बढ़ जाएगा जिसके कारण ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं और नदियों के पानी का स्तर सर्दीयो में भी बढ़ रहा है इस परिवर्तन के कारण हिमाचल प्रदेश के सेबों की गुणवत्ता में कमी आई है।

अंततः यह कहा जा सकता है की पेड़ों की कमी के कारण पहाड़ों की मिट्टी अपनी मजबूती खो देती है और भूस्खलन जैसी समस्याएं हमारे सामने उत्पन्न होती हैं। इसी के संदर्भ मे CSE(centre of science and environment) की रिपोर्ट में भूस्खलन के कारण जुलाई से अगस्त के बीच तक 200 लोग अपनी जान गवा चुके हैं इस रिपोर्ट से हम यह सीख ले सकते हैं कि वृक्षारोपण पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए कितना उपयोगी है । पर्यावरण को बचाने के लिए जहां सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए जा रहे हैं वही हमारे त्यौहार कई सदियों पहले से ही पर्यावरण के प्रति हर व्यक्ति को सजग करते आए हैं।और हरेला पर्व तो वृक्षारोपण को ही अपने समग्रता में अपनाये हुए है इसलिए अगर हम हरेला त्यौहार को ही मनाये तो काफी हद तक भूस्खलन में कमी आ सकती है। ऐसे ही कई त्यौहार और भी हैं। जो प्रकृति से जुड़े हैं उन्हें व्यापक तौर पर अपनाया जाना चाहिए जो मनुष्य को मनुष्य व प्रकृति से जोड़ता है ।आज जहां पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दे ना केवल भारत बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए चिंता का विषय बने हैं वही उत्तराखंड में मनाया जाने वाला यह त्यौहार आज की युवा पीढ़ी को प्रकृति के प्रति जागरूक तो करता ही है साथ ही भारतीय संस्कृति व उनके तीज त्यौहार में आस्था के बीज भी बोता है।

प्रकृति मनुष्य के लिए एक उत्तम उपहार है और प्रकृति किसी न किसी रूप में सदैव हमें कुछ ना कुछ देती ही रहती है इसीलिए हमारा दायित्व है कि हम अपने पर्यावरण व प्रकृति का संरक्षण करें ।

हिन्दी आख़िर क्यों ?
संवाद की समरूपता में निहित है राष्ट्र की प्रगति

*डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

भाषा किसी दो सजीव में संवाद स्थापित करने का माध्यम है। जीव-जन्तु, पशु-पक्षियों और मनुष्य के अस्तित्व से ही संवाद का आरम्भ माना जाता है। प्रत्येक सजीव अपनी प्रजाति से किसी ने किसी भाषा में संवाद करते हैं। कोयल की कुहुक से लेकर मनुष्य की बोली तक संवाद की सजीवता ही उसके अस्तित्व को बनाए रखती है। मनुष्यता पर संवाद का सीधा असर देश, काल और परिस्थिति के साथ-साथ मातृकुल परिवेश पर निर्भर करता है। प्रत्येक राष्ट्र में संवाद के लिए अपनी बोली, अपनी भाषा और अपना अस्तित्व है। भारत भी उन्हीं देशों की तरह अपनी भाषा और बोली पर निर्भर है। भारत का इतिहास इस बात की सुन्दर गवाही देता है कि हमारे यहाँ विभिन्न भूभागों पर विभिन्न नेतृत्वकर्ताओं का साम्राज्य रहा है। एक देश के अंदर सैंकड़ो राज्य और राजा राज करते थे, और इसी कारण से वहाँ का समाज अपने राजा और राज के अनुसार रहना-खाना, बोलना-चलना करते थे। इसीलिए स्वाधीनता के बाद भी भारत बहुभाषीय राष्ट्र है, क्योंकि विभिन्न रियासतों को मिलकर एक राष्ट्र की संकल्पना को तैयार कर भारत के तात्कालिक नेतृत्वकर्ताओं ने एक गणतंत्र की स्थापना की है। किन्तु इसी के साथ, आज़ादी के तराने गाने और उसे अनुपालन करने वालों ने अपनी धरती-अपनी भाषा की प्रस्तावना भी आज़ादी के बाद बनाए जाने वाले संविधान में भी रखी थी। जिस राष्ट्र इंग्लैंड ने भारत पर वर्षों तक राज किया, उसके संविधान से प्रेरणा प्राप्त करके भारतीय संविधान की अंगरचना करने वाले संविधान निर्माताओं ने भी तात्कालिक स्थितियों के मद्देनज़र, जिसमें विभिन्न रियासतों को एकीकृत कर बनने वाले राष्ट्र की एक भाषा होने की समस्या को भी समझते हुए कुछ समय प्रदान कर एक देश - एक भाषा की परिकल्पना को रखा था। उसके बाद परिस्थितियों में बदलवा आया और एक भाषा की स्थापना की आवश्यकता इसलिए भी महसूस होने लगी क्योंकि राष्ट्र की आंतरिक संवाद की क्षमताएँ भी प्रभावित होने लग गईं।

> हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक आधार है, सामाजिक ताने-बाने में रची बसी हुई है। वर्तमान में न्यायिक और शासकीय कार्यालयीन हिन्दी और जन प्रचलित हिन्दी के अंतर को ख़त्म कर दिया जाए तो निश्चित तौर पर हिन्दी का शब्द सामर्थ्य अन्य भाषाओं की अपेक्षाकृत सरल और सहज है।

भारत में व्याप्त विभिन्न भाषाओं और बोलियों के बीच हिन्दी भाषा ही एकमात्र ऐसी भाषा रही जिसका प्रभाव भारत के अधिकांश राज्यों और भूभागों पर निर्विवाद रूप से उपस्थित रहा है और इसी प्रभाव के चलते हिन्दी की स्वीकार्यता आज तक हो रही है। आज भी जब वर्ष 2011 की जनगणना को आधार मानकर भाषा की स्थिति का अवलोकन करें तो उस बात की पुष्टि होती है कि हिन्दी भारत में सबसे ज़्यादा बोली-समझी और कार्यव्यवहार में प्रयुक्त भाषा है।

भारत को मुख्यतः छह क्षेत्रों में बाँटा जाता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उत्तरपूर्व और मध्य क्षेत्र। इन छह में चार क्षेत्रों में तो हिन्दी का गहरा प्रभाव है। दक्षिण और उत्तर पूर्व में हिन्दी भाषा समझी तो जाती है किन्तु क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव अत्यधिक होने से भाषाई सामांजस्यता का अभाव है। किन्तु जब बात समरसता और सार्वभौमिक प्रगति की आती है तो कई कारणों को नज़रअंदाज़ करते हुए एक रूपता की स्थापना की जाती है। भारत की एक प्रतिनिधि भाषा का होना राष्ट्रव्यापी कार्यों और शासकीय क्रिया कलापों में भी समरूपता के लिए नितांत आवश्यक है। भारत का सुगठित वर्तमान इस बात का पुरज़ोर समर्थन करता है कि हिन्दी भाषा भारत का परिचय है। इतिहासों के कालखंडों से हमने राष्ट्र के वैभव का अध्ययन तो कर लिया पर संवैधानिक रूप से भाषाई एकरूपता के सहारे अन्य बोलियों और भाषाओं के अस्तित्व को भी मातृभाषा के रूप में स्वीकार्यता देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर एकसमानता होगी। दक्षिण का व्यक्ति उत्तर या मध्यभारत से कार्य व्यव्हार करना चाहता है तो उसे उत्तर की भाषा सीखनी होगी और इसी तरह मध्य के व्यक्ति को दक्षिण के साथ कार्य-व्यापार करना है तो उसे दक्षिण की भाषा सीखनी होगी जोकि प्रायोगिक रूप से सफल प्रयोग नहीं है। सम्भवतः इसी कारण से दक्षिण भारत पर्यटन और सम्पदा संपन्न राज्य होने के बावजूद भी अधिक प्रगतिशील राज्य नहीं बन पाया क्योंकि संवाद की कमी और भाषा असमानता दक्षिण की प्रगति में बाधक भी है। इसी तरह, भारत के अन्य राज्यों की स्थिति का आँकलन करें तो यह बात स्पष्ट होती है कि जिन राज्यों में भाषा और संवाद सरलतापूर्वक होता हैं अथवा संवाद स्थापित करने में जटिलता नहीं है, उन राज्यों की प्रगति की गति तीव्र है।

भाषाई समरूपता के मानक इस बात का समर्थन करते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र की एक भाषा होती है, जो सभी के बीच सामंजस्य बैठा कर भाषाई एकरूपता स्थापित करती है और यही राष्ट्र की प्रगति का आधार है। विषय विवेचन की गहराई में जाएँ तो इस तथ्य से भी इंकार किया जा सकता कि विभिन्न भाषाओं-बोलियों के अस्तित्व से संस्कृति में विभिन्नता बनी रहती है, जो संस्कृति के वृहद स्वरूप का परिचय करवाती है। किन्तु इसी तथ्य के आलोक में इस बात को भी स्वीकारना होगा कि एक देश में एक राष्ट्र भाषा के होने से संवाद का आधार स्पष्ट और सुनियोजित हो जाता है।

वर्तमान कालखंड में भारत विभिन्न समस्याओं से घिरा हुआ राष्ट्र तो बन रहा है किन्तु उन्हीं समस्याओं के बीच एक उजास इस बात का भी है कि विपरीत परिस्थितियों में भी हम राष्ट्रवासी एक जुट हैं। इस एकजुटता का मूलभूत कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत है। यजुर्वेद के नौवें अध्याय की 23वीं कंडिका में लिखा है, 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'। इसका अर्थ है, 'हम पुरोहित राष्ट्र को जीवंत और जाग्रत बनाए रखेंगे', अर्थात जो इस पुर का हित करता है। प्राचीन भारत में ऐसे व्यक्तियों को पुरोहित कहते थे, जो राष्ट्र का दूरगामी हित समझकर उसकी प्राप्ति की व्यवस्था करते थे। पुरोहित में चिन्तक और साधक दोनों के गुण होते हैं, जो सही परामर्श दे सकें। यजुर्वेद में लोक व्यवहार से पूर्ण उपदेश वर्णित किए गए हैं। इसी से स्पष्ट होता है कि भारत की संस्कृति दूरगामी हितार्थ चिंतन को पोषित और पल्लवित करने वाली संस्कृति है। हमारे धर्मग्रंथों में लोकव्यवहार को बल दिया है, उसी कारण से हम विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के प्रतिनिधि माने जाते हैं।

राष्ट्र की समरसता और एक समानता का मूल आधार हमारी भाषाई एकरूपता को भी माना जाता है और इस आलोक में देश के वर्तमान गृहमंत्री अमित शाह ने 'एक

*पत्रकार, स्तंभकार एवं राजनैतिक विश्लेषक, पता: 204, अनु अपार्टमेंट, 21-22 शंकर नगर, इंदौर (म.प्र.), संपर्क: 9893877455, ईमेल: arpan455@gmail.com, अंतरताना: www.arpanjain.com

राष्ट्र-एक भाषा' की अवधारणा को रखा था। देश के विभिन्न भूभागों में एक भाषा की स्वीकार्यता राष्ट्रभाषा के रूप में होने से लोकव्यवहार में सहजता और स्पष्टता आयेगी और शासकीय रूप से भी कर्त्तव्य निर्वहन आसान होगा।

भारत में आधी से अधिक आबादी हिन्दी को अपनी मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा के तौर पर स्वीकार करती है। एक और तथ्य यह भी है कि लगभग पूरी आबादी हिन्दी बोलने, सुनने और समझने में सहज है। इसी को आधार मानकर यदि शासकीय रूप से भी जनभाषा अथवा संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को प्रामाणिक कर दिया जाए तो भारत में व्याप्त भाषाई समस्याओं का सरल हल निकल जाएगा।

जनभाषा के अस्तित्व को अपनाते हुए राष्ट्र की वैश्विक प्रगति भी नितांत अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिए 1964 से 1969 तक दौलत सिंह कोठारी आयोग की अनुशंसाओं का अनुपालन आवश्यक है जिसमें त्रिभाषा फॉर्मूला महत्त्वपूर्ण है। स्थानीय यानी क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी और अंग्रेज़ी की अनिवार्यता को कोठारी आयोग महत्त्वपूर्ण मानता है, इस फार्मूले में थोड़ा-सा संशोधन आवश्यक है जोकि मातृभाषा, राष्ट्रभाषा हिन्दी और अंतर्राष्ट्रीय भाषा जिसमें अंग्रेज़ी, फ्रेंच या अन्य विदेशी भाषा, जिसका प्रभाव वैश्विक रूप से अधिक हो उस भाषा को अनिवार्यतः पढ़ाया जाना चाहिए। इसी आधार पर राष्ट्र की उत्तरोत्तर उन्नति तय हो सकती है। भाषा का अपना स्थान है, जो संवाद और समन्वयक दोनों की भूमिका को बख़ूबी निभाना जानती है। इसीलिए राष्ट्रीयता की परिचायक हिन्दी भाषा को भारत की मुख्य संपर्क भाषा अथवा राष्ट्र भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करके देश में एकरूपता का प्रसार किया जा सकता है। हिन्दी का शब्दकोश वैसे समृद्ध है किंतु इसमें भी अन्य भाषा के वे शब्द जो अब आम जनमानस के मस्तिष्क में उसी तरह घुल गए हैं जैसे पानी में नमक अथवा शक्कर, उन शब्दों को भी हिन्दी में सम्मिलित करना चाहिए।

भाषा किसी राष्ट्र का प्रतिनिधित्व तब कर सकती है, जब प्रत्येक भारतवासी उस भाषा को सहजता से अपनाए और उसे अपने सामान्य जनजीवन में पर्याप्त स्थान प्रदान करें। हिन्दी इन्हीं गुणों से युक्त है और अधिकांश भारतवासी हिन्दी को आज भी अपनी मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा रूप में स्वीकार करता है।

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक आधार है, सामाजिक ताने-बाने में रची बसी हुई है। वर्तमान में न्यायिक और शासकीय कार्यालयीन हिन्दी और जन प्रचलित हिन्दी के अंतर को ख़त्म कर दिया जाए तो निश्चित तौर पर हिन्दी का शब्द सामर्थ्य अन्य भाषाओं की अपेक्षाकृत सरल और सहज है। इसी आधार पर भारत की जनभाषा के रूप में यानी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्थापित कर भारत देश की प्रतिनिधि भाषा के रूप में अपनाना होगा और इसके साथ ही, भारत की भाषा समस्या का हल भी निकल जाएगा। सभी प्रांतों की अपनी बोलियों और भाषाओं को प्रथम मातृभाषा के रूप में स्थान मिले, अनुवादकों और दुभाषियों की नियुक्ति से शासकीय कार्यों में भाषा के कारण आने वाली बाधाओं से भी निजात मिलेगी। हिन्दी वैश्विक रूप से भी बहुप्रचलित भाषा है और यही भाषा भारत की भाग्य विधाता भी है

सुशांत सुप्रिय की कविताएँ

1. स्त्रियाँ

हरी-भरी फ़सलों-सी
प्रसन्न है उनकी देह
मैदानों में बहते जल-सा
अनुभवी है उनका जीवन
पुरखों के गीतों-सी
खनकती है उनकी हँसी
रहस्यमयी नीहारिकाओं-सी
आकर्षक हैं उनकी आँखें
प्रकृति में ईश्वर-सा मौजूद है
उनका मेहनती वजूद

दुनिया से थोड़ा और
जुड़ जाते हैं हम
उनके ही कारण

2. वह अनपढ़ मजदूरनी

उस अनपढ़ मजदूरनी के पास थे
जीवन के अनुभव
मेरे पास थी
काग़ज़-क़लम की बैसाखी

मैं उस पर कविता लिखना
चाह रहा था
जिसने रच डाला था
पूरा महा-काव्य जीवन का

सृष्टि के पवित्र ग्रंथ-सी थी वह
जिसका पहला पन्ना खोल कर
पढ़ रहा था मैं

गेंहूँ की बालियों में भरा
जीवन का रस थी वह
और मैं जैसे
आँगन में गिरा हुआ
सूखा पत्ता

उस कंदील की रोशनी से
उधार लिया मैंने जीवन में उजाला
उस दीये की लौ के सहारे
पार की मैंने कविता की सड़क

3. आँकड़ा बन गया वह किसान

सूनी आँखें
ताकती रहीं
पर नहीं आया
वह आदमी
बैलों को
सानी-पानी देने
दिशाएँ उदास
बैठी रहीं
पर नहीं आया
वह आदमी
सूखी धरती पर
कुछ बूँद आँसू गिराने

उड़ने को तत्पर रह गए
हल में क़ैद देवदूत
पर नहीं मिला उन्हें
उस आदमी का
निश्छल स्पर्श

दुखी थी खेत की ढही हुई मेड़
दुखी थीं मुरझाई वनस्पतियाँ
दुखी थे सूखे हुए बीज कि
अब नहीं मिलेगी उन्हें
उसके पसीने की गंध

अभी तो बहुत जीवन
बाक़ी था उनका --
आँकड़ा बन जाने वाले
उस बदकिस्मत किसान की
बड़ी होती बेटी बोली
आँखें पोंछते

सुशांत सुप्रिय A-5001 , गौड़ ग्रीन सिटी , वैभव खंड , इंदिरापुरम , गाजियाबाद – 201014 (उ. प्र.) मो : 8512070086 ई-मेल : sushant1968@gmail.com

लघुकथा

अलविदा, मेरे प्यारे बेटे!

कपिल सहारे

बरसात का मौसम हो चला था। सूखे दरख़्त पानी की आस लगाए अब भी ऊपर टकटकी लगाए खड़े थे। पूरे चार बरस हो आए थे आख़िरी मानसून आए हुए, कारण भी लगभग तय ही था, फैक्ट्रियों और कोंक्रीट के महल खड़े करने के लिए जंगल और पहाड़ काटने से वातावरण का संतुलन जो बिगड़ गया था। अपने रसूखदार होने का दंभ भरते हुए माटी का सीना चीरकर पी गए थे सारा पानी वो कमबख्त, जो अपने आपको सर्वोपरि मान बैठे थे।

"अब कैसी रही? अरे, अब कैसी रही बोलो, जब प्रकृति माँ ने तुम्हें तुम्हारी अदनी सी असली औकात दिखा दी..." एक गाँव के सूने आँगन में खड़ा बूढ़ा पेड़, जो कई के सावन देख चुका था, अपना ग़ुस्सा निकालते हुए चिल्ला रहा था, "...अबे मुफ्त में मिला, तो सारा कुछ अपनी बपौती समझ बैठे थे बे, तुम साले दोगले इंसान। अब कहाँ बचा है खुद तुम्हारे लिए, जो तुम हमें पिला दोगे बे, क्यों? आओ, घटिया सोच रखने वालों, कहाँ भाग गए हो लालचियों, अपनी-अपनी आलीशान कोठियों को छोड़कर, पानी की तलाश में?"

"दादाजी, क्या हुआ दादाजी?" पास ही पड़े एक बीज ने आतुर होकर पूछा, जिसकी अभी तक कोंपल भी नहीं फूट पाई थी।

"लगता है, अब मेरा भी अंतिम समय आ गया है बेटे..." बूढ़ा पेड़ दम भरते हुए बोला, "...निर्लज्ज और एहसान-फरामोशों को जरा भी दया नहीं आई थी और बड़ी-बड़ी मशीनों से काट डाला था मेरे अपनों को, जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी उन शैतानों के लिए बलिदान कर दी थी। अरे, क्या कुछ नहीं किया था हमने? तुम्हें खेलने दिया, झूलने दिया, मीठे-मीठे फल दिए, छाव दी और तो और तुम्हारे आलीशान घरों को सजाने-संवारने तक के लिए हमने अपने आपको कुर्बान कर दिया था।"

"ये बलिदान क्या होता है दादाजी?" नन्हें बीज ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"किसी खास उद्देश्य से अपने आपको पूरी तरह से अर्पण कर देना ही बलिदान कहलाता हैं, मेरे बेटे..." बूढ़ा पेड़ रूंधे गले से समझा रहा था, "...हम अपने जन्म से लेकर मरण तक निस्वार्थ भाव से सेवा करते रहते हैं; अपना प्रेम लुटाते हैं। माटी में अपने आप को न्योछावर कर बूढ़े होने तक बलिदान करना ही तो हमारा एकमात्र धर्म है बेटे।"

"और मनुष्यों का धर्म क्या है दादाजी, सिर्फ हमें काटना और अपना मतलब पूरा करना?" भोला बीज निराश मन से पूछ बैठा।

"नहीं, नहीं बेटे, समय कभी भी एक जैसा नहीं रहा। कभी हमारे पूर्वजों को पूजने और सहेजने वाले लोग भी हुआ करते थे..." बूढ़े पेड़ ने अपनी भूली बिसरी पुरानी यादों पर से मिट्टी साफ करते हुए बताया, "...बहुत पहले की बात हैं, तब मेरी नन्हीं कोंपल ही फूटी थी बस, मैंने देखा कि इस घर के मालिक सहित पूरे गाँव के लोग नए-नए कपड़े पहने, ढ़ोल-नगाड़ों के साथ

म.प्र. राज्य कृषि विपणन (मण्डी) बोर्ड विभाग मे इंजीनियर के पद पर कार्यरत, 9340725046 sahare.kapil01@gmail.com

नाच-गाना कर रहे थे और हमारे आजू-बाजू घूम-घूम कर कुछ रीति-रिवाज कर हर्षो-उल्लासित हो खुशियाँ बाट रहे थे। वे लोग बड़े आनंदित रहते थे और हमें अपनी जान से भी ज्यादा चाहते थे, फिर कुछ सालों बाद ऐसा युग आया कि पेड़ों-पौधों ,जंगलों सहित नदी-तालाब और यहाँ तक कि जमीन को भी कुछ मुट्ठीभर अमीरों को कौड़ियों के दाम बेच दिया गया; कुछ निजीकरण जैसा शब्द बोलते थे उसे। फिर उन सूट-बूट वालों ने, न रात देखा न दिन और झोंक दी अपनी पूरी ताकत हमें जड़ से उखाड़कर बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ और आलीशान कालोनियां बनाने में। बेटा, मैंने और अपने परिवार ने इतना काला धुंआ पिया है कि हम अंदर से बिल्कुल काले और खोखले हो गए हैं। कई दफा प्रकृति माँ ने अपना रौद्र रूप भी दिखाया, लेकिन इन जाहिल-गवारों ने, प्रकृति को पूजने और सहेजने वालों के साथ-साथ स्वयं हमें भी खत्म कर दिया।"

"दादाजी संभालिए अपने आप को, आप गिर रहे हैं।" बीज ने चिंतित होते हुए कहा, तो बूढ़ा पेड़ नम आँखों से बीज को निहारता हुआ बोला, "मेरे आखिरी शब्द हमेशा याद रखना बेटे, अगर जी पाओ, तो खुब फलना और फूलना। अपने नैसर्गिक धर्म का पालन करते हुए बलिदानी होने की पराकाष्ठा को पार कर जाना, लेकिन कभी भी मनुष्य जाति पर न तो भरोसा करना और न ही कभी उपकार करना। तुझे अपना ख्याल खुद ही रखना होगा बेटे, अब कोई नहीं आएगा तुझे सहेजने, तुझे पूजने। अलविदा, मेरे प्यारे बेटे, अलविदा।"

समीक्षा

दादूपंथ के शिखर संत : एक मूल्यांकन

डॉ. विजय मणि त्रिपाठी

प्रस्तुत पुस्तक निर्गुण संत परंपरा को पुनः व्याख्यायित, विश्लेषित करने और भक्ति आंदोलन को पुनः परिभाषित करने में अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इसमें दादूपंथ पर विचार करने के साथ ही लेखक ने भक्ति साहित्य को पढ़ने की एक नवीन दृष्टि प्रदान की है। संत दादूदयाल और इस पंथ में आने वाले प्रमुख संतों का विवेचन, विश्लेषण अब तक किए गए अध्ययन में कुछ नए आयाम जोड़ता है।

साहित्य के पाठकों को अब तक निर्गुण संत साहित्य के बारे में यही पढ़ा-पढ़ाया और समझाया जाता रहा है कि निर्गुण संत मूर्ति-पूजा, हिंदू धर्म या वैष्णव धर्म में कर्मकांड के विरोधी, पूजा-पाठ के विरोधी, बाह्यडंबरों के विरोधी, जाति-पाँति, छुआछूत के विरोधी रहे हैं। यह कुछ हद तक सत्य भी है। लेकिन यही पूर्ण सत्य नहीं है और न ही इन संतों, भक्तों का उद्देश्य इतना सीमित था। निर्गुण संतों की रचनाओं में समाज को प्रताड़ित करने वाले, उन पर अत्याचार करने वाले चाहे वे पंडित हों या मुल्ला, मौलवी या कोई राजा, इन सबका विरोध किया गया है। लेकिन अधिकांशतः यह देखा गया है कि विद्वान लोग उन्हीं पंक्तियों को ज्यादा उद्धृत करते हैं, जिनमें हिंदू समाज में प्रचलित पूजा-पाठ, धार्मिक, कर्मकांड, तीर्थाटन आदि का विरोध किया गया है। यह समझ बनाने का प्रयास किया गया है कि यही निर्गुण पंथी संतों का उद्देश्य रहा है। इतना ही मात्र संत साहित्य नहीं है। संत साहित्य को व्यापक समाज में जो स्वीकृति मिली इसके अन्य भी कारण हैं। जिस पर व्यापक ढंग से प्रस्तुत पुस्तक में दादूपंथ के संतों के माध्यम से विचार किया गया है।

पुस्तक का नाम : दादूपंथ के शिखर संत
लेखक का नाम : नन्द किशोर पाण्डेय
संस्करण : 2020
मूल्य : 595 रुपए
प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, दिल्ली
समीक्षक : डॉ. विजय मणि त्रिपाठी

संत साहित्य को व्यापक सामाजिक स्वीकृति के कारणों को बताते हुए, लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में लिखा है कि- "भक्तिकालीन निर्गुण संतों ने जन भाषाओं को अपनाया, जाति-पाँति विरहित समाज की स्थापना का प्रयास किया, छुआछूत तथा कर्मकांड का विरोध किया, योग पर बल दिया, अहिंसा, निर्वैरता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, गुरु को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिस्थापित किया, भाषा और प्रांत से परे एक समान भाव-भूमि पर संतत्व को स्थापित किया, कविता और साधुता को श्रम से जोड़ा, संत सिपाही तैयार किए, कविता की रक्षा के लिए पाठ प्रक्रिया को व्यवस्थित और सुदृढ़ किया, वैचारिक दबावों, आग्रहों और रुचियों से परे जाकर संग्रह ग्रंथों का निर्माण किया, पूर्ववर्ती दार्शनिक विचारों के आलोक में स्वयं का दर्शन गढ़ा, जनता को चेतित करने के लिए संप्रेषण की नई पद्धतियों को आविष्कृत किया, नूतन छंद और लोक शब्दावली

असिस्टेंट प्रोफेसर आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

को काव्य भाषा का अंग बनाया, वाद्ययंत्रों को विकसित किया, भजन के साथ लंगर, भंडारा और अखाड़ा दिया, तीज त्योहारों को नया रूप दिया, मेलों की व्यवस्था की, कूप-तड़ागों का निर्माण कराया, साधु शिक्षा की व्यवस्था की, स्वस्थ समाज रचना के लिए आयुर्वेद को नवजीवन दिया, औषधीय पादपों-वृक्षों से परिचित करवाया और संरक्षित किया तथा पेशापरक शब्दावली से कविता को जोड़ा।'' समाज में संतों की व्यापक स्वीकृति के ये सब कारण रहे हैं। संतों के यहाँ नकारात्मक चीजों से ज्यादा सकारात्मक और रचनात्मक विचार और कार्यप्रणाली रही है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही संतों और उनके द्वारा रचे गए साहित्य को समझा जा सकता है न कि इनके विपुल साहित्य में से कुछ वेद, कर्मकांड, पूजा-उपासना, हिंदू धर्म की कमियों आदि के विरोध में लिखी गयी पंक्तियों को उद्धृत करके। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने संत दादूदयाल और इस पंथ के प्रमुख संतों का समग्रता में तो विवेचन-विश्लेषण किया ही है, साथ में अन्य संतों को भी समग्रता में विवेचित, विश्लेषण करने की साफ-सुथरी निष्पक्ष दृष्टि प्रदान की है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने संत दादूदयाल पर विचार करते हुए उन प्रश्नों का भी उत्तर देने का प्रयास किया है, जो अक्सर संत साहित्य और युगीन समस्याओं को जोड़कर उठाए जाते हैं यथा "कई बार संतों के साहित्य में उन तत्वों की खोज की जाती है, जो वस्तुतः उनका प्रतिपाद्य नहीं था। वे अपने विचारों से तात्कालिक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ रहे थे। कुछ पाठकों की चिंता यह होती है कि इन संतों ने उन दिनों की आर्थिक स्थिति पर क्यों नहीं लिखा। सत्ता के सम्मुख अपने शिष्यों के साथ विरोध करने के लिए क्यों नहीं खड़े हुए ?" ऐसे बहुतेरे प्रश्न संतों को लेकर उठाए जाते हैं।

यहाँ लेखक ने इस तरह के प्रश्नों का उत्तर बहुत ही सहजता और तार्किकता से दिया है। युगीन समस्याओं पर विचार करते हुए इन संतों और भक्तों ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा सामाजिक समरसता को स्थापित करने का प्रयत्न किया तथा धार्मिक और जातीय वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया। इन भक्तों एवं संतों ने 'परंपरा के अवगाहन', 'चिंतन एवं मनन' से युगीन चुनौतियों का सामना करने का मार्ग प्रशस्त किया। इन संतों ने लोगों में नई ऊर्जा का संचार किया। इसी भक्ति तत्व के द्वारा वे लोगों के मनोबल को ऊँचा रखने में समर्थ होते हैं। संत दादूदयाल के महत्व को रेखांकित करते हुए लेखक ने उक्त समय की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति के बारे में लिखा हैं कि, "दादूदयाल के समय अकबर का शासन था। राजस्थान में छोटे-छोटे कई शासक थे। उसमें से बहुत से राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसके पूर्व का समय अधिक उथल-पुथल का था। हिंदू और मुसलमान का वैमनस्य चरम पर था। उपासना और पद्धति को लेकर अत्यधिक वैमनस्य का वातावरण था। धर्मांतरण निरंतर चल रहा था।" इस तरह के राजनीतिक, सामाजिक परिस्थिति में संतों के सामने सामाजिक समरसता स्थापित करना और दोनों ही समुदायों के लोगों को एक साथ लाना बहुत ही चुनौतीपूर्ण था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदि ये संत अपने कुछ शिष्यों और अनुयायियों के साथ युद्ध करने जाते तो दमनकारी शासन, सत्ता के हाथों अवश्य ही पराजित होते। इन्होंने इससे भी बड़ा काम अपनी बानियों के द्वारा समाज को जागरूक करने का कार्य किया, जो किसी खूनी संघर्ष से संभव नहीं था।

इस चुनौती का सामना करने के लिए ही संतों ने हिंदू-मुस्लिम समुदाय में व्याप्त अतिवाद का प्रतिरोध किया। इन्होंने निडरता से तथा बिना किसी का पक्ष लिए दोनों ही समुदायों में स्थित विघटनकारी रीतियों-नीतियों, धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया। प्रस्तुत पुस्तक में

लेखक ने दादूवाणी के अंतर्गत संगृहीत 'साँच का अंग' में महत्वपूर्ण पंक्तियों को रखा है। संत दादूदयाल कहते हैं-

"दादू यह सब किसके पंथ में, धरती अरु आस्मान।
पानी, पवन दिन रात का, चंद सूर रहमान।।
ब्रम्ह विष्णु महेश का, कौन पंथ गुरुदेव।
साईं सिरजनहार तू, कहिये अलख अभेव।।
मुहम्मद किसके दीन में, जिब्राईल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर की, कहिये एक अल्लाह।।"

इस तरह के बहुत से पद संतों ने जनभाषा में रचे हैं। इन्हें वे अपने शिष्यों और आमजन के बीच गाया करते थे। शिष्यों ने इन बातों को आमजन के बीच पहुँचाया। भले ही संतों द्वारा किया गया यह महत्वपूर्ण कार्य उस समय के दरबारी इतिहासकारों की नजर में कोई महत्व न रखता हो, लेकिन विपरीत परिस्थितियों में, खून-खराबे के माहौल में, अन्याय और अत्याचार के परिवेश में, इन्होंने भारतीय जनमानस को संभालने का महत्वपूर्ण कार्य किया। दादूदयाल भी इस तरह की स्थितियों से अनभिज्ञ नहीं थे, "व्यावहारिक धरातल पर दादूदयाल उस समय के हिंदू , मुसलमान के संघर्षों को बहुत करीब से देख रहे थे। सत्ता संघर्ष के साथ-साथ दैनिक वैमनस्य चरम पर था। अकबर के सत्तारूढ़ होने के बावजूद राज संघर्षों में कोई कमी नहीं आने पाई थी, क्योंकि उस सत्ता का विस्तार ही युद्ध और आक्रमणों से हो रहा था। राज्य विस्तार और एकीकरण की अकबर की नीतियों को हिंदू जनता इस्लाम के विस्तार के रूप में देख रही थी। हिंदू राजाओं के आपसी संघर्ष भीषण थे। छुआछूत, जाति व्यवस्था के संघर्ष तथा ऊँच-नीच की भावना ने समाज को जर्जर कर रखा था।" लेखक का यह कथन दादूदयाल के गहरे समकालिक बोध को दर्शाता है। उस समय में संत मात्र पारलौकिक चिंतन नहीं कर रहे थे, बल्कि व्यापकता में देखा जाए तो पारलौकिक चिंतन के बहाने इहलौकिक चिंतन ज्यादा है।

समाज को स्थिर और वैमनस्य मुक्त बनाना संतों की मुख्य चिंता है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने सप्रमाण साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। इस दृष्टि से संपूर्ण भक्ति साहित्य किसी सफल सामाजिक क्रांति से कमतर नहीं है। अपने इस महत्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर, इन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों समुदायों के धार्मिक, सामाजिक कट्टरता का खुलकर विरोध किया है। दोनों समुदायों के आंतरिक अतिवादों का विरोध किया है। इन्होंने विरोध के साथ-ही-साथ दोनों समुदायों को समझाने का भी कार्य किया है। लेखक ने दादूदयाल के पद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'हिंदू और मुसलमान शरीर के अंगों की तरह हैं। एक हाथ, एक पैर, एक कान और एक आँख अपंगता की पहचान हैं। दोनों मिलाकर ही पूर्ण और बलवान होते हैं।' दादूदयाल के शब्दों में-

"दादू दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन है, हिन्दू मुसलमान।।"

दादू ने दोनों ही समुदायों के बाह्यडंबरों का विरोध करते हुए लिखा है कि-

"जोगी जंगम सेवड़े, बौद्ध सन्यासी शेख।
षट् दर्शन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख।।
दादू शेख मशायख औलिया, पैगम्बर सब पीर।
दर्शन सौं परसन नहीं, अजहूँ वैली तीर।।"

इन सबसे स्पष्ट है कि यह सब पारलौकिक चिंतन नहीं है, बल्कि इस तरह की पंक्तियों में दादूदयाल के गहरे सामाजिक बोध की झलक मिलती है। लोक की चिंता और उसके बाद चिंतन से, सामाजिक समरसता, आपस में एकता स्थापित करने का महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रकट होता है।

दादूपंथ में जगजीवनदास जी का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने द्वितीय अध्याय के

अंतर्गत जगजीवनदास जी की जीवनी एवं रचनाओं के बारे में महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'श्री दादूपंथ परिचय' में इस पंथ के इतिहासकार कविरत्न स्वामी नारायणदास ने सूचना दी है कि इनकी वाणियों की संख्या लगभग ग्यारह हजार है। इन्होंने अहंकार और द्वेष से रहित साधु जीवन की वकालत की है। इनकी वाणियों में ईश्वर के नाम महत्व पर विशेष बल दिया गया है, "ये नाम स्मरण के महत्व के सामने व्याकरण का पाठ, वेद, पुराण, भागवत, गीता का पांडित्य, कुरान और पुराण का ज्ञान आदि को चुनौती देते हैं।" इनके अनुसार ईश्वर की साधना में किसी प्रकार के प्रपंच की आवश्यकता नहीं है। जगजीवनदास जी ने अपनी वाणियों में सत्संगति के महत्व को प्रमुखता से प्रतिपादित किया है। इनके अनुसार सत्संगति के अभाव में राम नहीं मिलते हैं और न ही कोई साधना इसके बिना सुगम तरीके से संपन्न हो सकती है। सज्जनों की संगति से ही ज्ञान की समझ होती है। इस बात को समझाने के लिए इन्होंने कई प्रकार के दृष्टांत अपनी वाणियों में प्रस्तुत की है। प्रस्तुत पुस्तक में और भी बातों पर विस्तार से विवेचन विश्लेषण किया गया है। जिससे जगजीवनदास जी की वाणियों की रचनात्मक शक्ति उजागर होती है।

इस परंपरा के एक अन्य महत्वपूर्ण संत रज्जब हैं। तृतीय अध्याय के अंतर्गत इन पर विस्तार से विचार किया गया है। राघवदास के 'भक्तमाल' में दादूदयाल के बावन शिष्यों की सूची दी गई है, उसमें तीसरी पंक्ति में रज्जब का नाम आता है। इससे पता चलता है कि ये इस पंथ के कितने महत्वपूर्ण संत हैं। इन्होंने संत दादूदयाल के पदों को संगृहीत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इनकी पहली कृति 'अंगबंधू' या 'अंगबंधी' है, जो दादूदयाल की रचनाओं का संग्रह है। रज्जब की वाणियों का विशाल संग्रह 'रज्जबवाणी' है। यह छह भागों में विभाजित है। इनके विभिन्न भागों एवं उपभागों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में विस्तार से दिया गया है। इसके अलावा संत रज्जब ने एक और बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य 138 संतों की वाणियों को संगृहीत करके किया है। इसका संपादन 'सर्वंगी' नाम से किया गया है। इसका संग्रह करते समय रज्जब ने सगुण और निर्गुण कवियों का भेद नहीं किया है। इसमें सगुण कवियों के साथ-साथ संस्कृत तथा अन्य भाषा के कवियों को भी स्थान दिया गया है।

संत रज्जब के विचारों और चिंतन पर उनके गुरु दादूदयाल का स्पष्ट प्रभाव है। रज्जब उस ईश्वर की उपासना करते हैं, जो अवतार नहीं लेता है। जो जन्म-मरण के बंधन से मुक्त है, वह निर्गुण और निराकार है। वे कहते हैं कि ईश्वर की उपासना चाहे जितने प्रकारों से की जाय, वे अंततः एक ही ब्रह्म के पास पहुँचती हैं। जैसे सभी नदियों का जल अंततः समुद्र में ही समाता है। रज्जब ने सवैया में अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि-

"जैन जोग अरु शेख सन्यासी, सु भक्त बौद्ध भगवंत हिं धावै।
बोवत बीज परै धर क्यों हूँ, अंकूर उदै होय ऊँचे ही आवैं।।
नौं कुली नाग परे नव खंड में, पंख लहैं सोई चंदन जावैं।
दशों दिशि नीर बहै सरिता सब, रज्जब सोई समुद्र समावै।।"

पृथ्वी पर स्थित सभी जीवों में समानता का भाव उनकी रचनाओं में प्रतिपादित होता है। वे "शब्द और उदाहरण आम जनता के बीच से उठाते हैं। सुबह से शाम तक जिन वस्तुओं से आमना-सामना होता है, वे ही उनकी कविता का हिस्सा बनते हैं।" रज्जब की मुख्य चिंता समरस समाज की स्थापना है। इसके लिए वे हिंदू और मुसलमान दोनों को ही समझाते हैं। वे कहते हैं कि जो दूसरों को दुःखी करता है वह स्वयं इससे बच नहीं पाता है। अपने द्वारा किये गये कर्मों का फल अपने ही

सामने आता है। इन्होंने समरस समाज की स्थापना के लिए व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर लोगों से बहुत सी बुराइयों को छोड़ने के लिए कहा। रज्जब हिंसा के विरोधी हैं तथा वे इसी कारण से शाकाहार पर बल देते हैं। इससे संबंधित बहुत से पद, दृष्टांत के साथ रज्जब की वाणियों में मिलते हैं। वे लोगों के साथ ही साथ संतों को भी बिना किसी भेदभाव के सबको समान शिक्षा या उपदेश देने की बात करते हैं। रज्जब ने इस बात को साबुन और जल के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखा है कि साबुन और जल, वस्त्र को धोते समय हिंदू और मुसलमान नहीं देखते-

"रज्जब साबुन सलिल का, सुनहु सनेही हेत।
देखहु हिन्दू तुरक के, वसतर करहिं सु सेत।।"

संत रज्जब के विषय में और भी बहुत सी बातों का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। लेखक ने रज्जब की एक-एक रचनाओं का विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में वे रज्जब के 'बावनी अक्षर उद्धार ग्रंथ' का उल्लेख करते हैं। इस ग्रंथ में 'क' से लेकर 'ह' तक के प्रत्येक वर्ण के ऊपर साखियां लिखी गई हैं। 'ओ' , 'ए' और 'औ' पर भी एक-एक साखी है।' यह ग्रंथ संत रज्जब के रचनात्मक प्रतिभा को प्रदर्शित करता है। संत रज्जब का इतना विशद और प्रामाणिक अध्ययन शायद ही कहीं और देखने को मिले।

इसी पुस्तक के चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत बहुत ही महत्वपूर्ण संत और कवि सुन्दरदास के बारे में विस्तृत रूप से विचार किया गया है। सुन्दरदास पर विचार करने से पहले लेखक ने इसी अध्याय में दादूपंथ के महत्वपूर्ण संतों के विषय में संक्षिप्त किंतु महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। इसके अंतर्गत लेखक ने 'बखना' और 'मोहन दफ्तरी' के महत्व को भी रेखांकित किया है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिनके विषय में बहुत कम बातचीत की जाती है।

सुन्दरदास का नाम सर्वाधिक सुशिक्षित संत के रूप में लिया जाता है। इन्हें इस पंथ में 'दूसरे शंकराचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।' ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। ये अच्छे कवि के साथ गायक और वीणावादक भी थे। इनके विषय में 'भक्तमाल' में विस्तार से बताया गया है। लेखक ने इनके देशाटन और तीर्थाटन की प्रवृत्ति को प्रमुखता से व्यक्त किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में इनकी प्रशंसा की है। इनके छोटे-बड़े अनेक ग्रंथ हैं। इन सब में से 'सुन्दर विलास' ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें कवित्त, सवैये अधिक हैं तथा इसकी रचना काव्य पद्धति से होने के कारण अन्य संतों की रचना से भिन्न दिखाई देती है।

इनका देशाटन संबंधी ग्रंथ 'दशों दिशा के दोहे' नाम से प्राप्त होता है, जिसमें पद्य में योजनापूर्वक यात्रा वृतांत सुन्दरदास ने लिखा है। पद्य में यात्रा वृतांत लिखने वाले ये पहले साहित्यकार हैं, जिसकी प्रशंसा साहित्य जगत के प्रमुख विद्वानों ने की है। लेखक ने इसके महत्व के विषय में प्रस्तुत पुस्तक में विस्तार से विचार किया है। सुन्दरदास की एक अन्य महत्वपूर्ण रचना 'ज्ञान समुद्र' है, जिसकी भाषा ब्रज है। इसमें इन्होंने सरस ब्रजभाषा में दर्शन के गूढ़ विषयों की चर्चा की है। यह ग्रंथ गुरु और शिष्य के संवाद के रूप में लिखा गया है। शिष्य गुरु से विभिन्न विषयों के बारे में प्रश्न करता है। गुरु अलग-अलग छंदों में उसका उत्तर देता है। यह इस दृष्टि से बहुत ही अनूठा ग्रंथ है। इसके अलावा भी सुन्दरदास के महत्वपूर्ण ग्रंथों का विवेचन विश्लेषण लेखक द्वारा इस पुस्तक में किया गया है, जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। 'वेद विचार' और 'सांख्य को अंग' आदि पर प्रामाणिक विवेचन यहाँ किया गया है।

लेखक ने सुन्दरदास के विभिन्न ग्रंथों के विवेचन-विश्लेषण के उपरांत यह निष्कर्ष दिया है कि, "सुन्दरदास के साहित्य का पाठ करने पर यह ध्यान में आता है कि

इस निर्गुण कवि के भीतर सगुण के तत्व यत्र-तत्र अनायास उपस्थित होते हैं।" ये वर्णाश्रम और वर्ण व्यवस्था की चर्चा अपने-अपने धर्म में बांधे रखने के संदर्भ में करते हैं। वे इसके लिए पशु का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि खुले होने पर वह इधर उधर भागता है। जब उसे खूंटे से बांध दिया जाता है तो वह स्थिर रहता है। वैसे ही वेद की विधियां अपने-अपने धर्म और कर्म में रहने की एक व्यवस्था है-

''बरणाश्रम बंधेज करि, अपने अपने धर्म।
ब्राह्मण क्षत्रिय बैश्य पुनि, शूद्र दिढाये कर्म।।''

इस पंथ के एक अन्य महत्वपूर्ण संत निश्चलदास जी हैं, जिनके विषय में प्रस्तुत पुस्तक में विस्तृत रूप से विचार किया गया है। इनसे संबंधित प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत पुस्तक में दी गई है। ये इस पंथ के बहुत ही विद्वान संत हैं। ये नियमित रूप से दादूवाणी का पाठ और वेदांत का अध्ययन किया करते थे। इनके ग्रंथ 'विचार सागर' और 'वृत्ति प्रभाकर' के रूप में प्राप्त होते हैं, जिसका इनके शिष्यों ने व्यापक प्रचार-प्रसार किया। निश्चलदास ने अपने ग्रंथ में दर्शन विषयक चर्चाएं अधिक की हैं, इन्होंने जनभाषा में वेदांत को प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस कारण से उस कालखंड में इनकी बहुत ख्याति थी। दादूपंथ में निश्चलदास जी का महत्वपूर्ण स्थान है।

इसके अलावा प्रस्तुत पुस्तक में दादूवाणी, जगजीवनदास की वाणी, रज्जब वाणी , सुन्दरदास की रचनाएं के अंतर्गत इन संतों की वाणियों का उत्कृष्ट संग्रह किया गया है, जो इन संतों को समझने में, इनके विचारों को समझने में बहुत हद तक उपयोगी है। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में स्वीकार किया है कि दादूपंथ के शिखर संतों का निर्धारण करना कोई सरल कार्य नहीं है। क्योंकि इस पंथ में विद्वान संतों की एक लंबी परंपरा है, जिनमें गरीबदास, जयतराम, जगन्नाथदास, गोपालदास, बखना, वाजिन्द, प्रहलाददास और जनगोपाल जैसे महत्वपूर्ण संत हैं।

प्रस्तुत पुस्तक संत साहित्य को ही नहीं बल्कि पूरे भक्ति साहित्य को समझने की एक नवीन दृष्टि प्रदान करती है। अब तक भक्ति साहित्य को विभिन्न खाँचों में बाँटकर पढ़ा, समझा और समझाया जाता रहा है। निर्गुण-सगुण, ज्ञानमार्गी- प्रेममार्गी, राममार्गी-कृष्णमार्गी, शैव-शाक्त आदि न जाने कितने खांचों में संत भक्त कवि बंटे हुए हैं। इसे लेकर विद्वान भी बंटे हुए हैं और इनका अनुसरण कर समाज भी बंटा हुआ है। अपने-अपने पक्ष को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए आपसी संघर्ष भी है। संतों और भक्तों को पढ़कर ऐसा कतई नहीं लगता कि ये किसी भी प्रकार के सामाजिक टकराव के समर्थक थे। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने संत साहित्य के उद्देश्य को व्यक्त करते हुए लिखा है कि "समता और सामाजिक समरसता का विचार संत साहित्य का मूल प्रतिपाद्य है। जीवन को सुखी, संपन्न और स्वस्थ बनाने का विचार संतों ने दिया। इनका चिंतन इस लोक से पलायन का नहीं है, लोक जीवन को सुखमय रखते हुए परलोक की प्राप्ति का अवश्य है। लौकिक जीवन का उत्कर्ष और पारलौकिक जीवन की प्राप्ति दोनों की चिंता का साहित्य भक्ति साहित्य है।" भक्ति साहित्य के अंतर्गत सगुण और निर्गुण दोनों ही आ जाते हैं। अतः किसी भी भक्तिकालीन संत या भक्त कवि के काव्य को देख लीजिए, उनमें विरोध की जगह विभिन्न पक्षों में सामंजस्य के तत्व अधिक मिलेंगे।

संतों ने लौकिक जीवन को या इस लोक को सुखमय बनाने का कोरा उपदेश मात्र ही नहीं दिया है। इन्होंने अपने कर्म एवं वाणी दोनों में सामंजस्य स्थापित किया है। यह आज के समय के संतों को भी आईना दिखाता है, जो संतई को ही धंधा बना लेते हैं। लोगों के द्वारा दिए गये दान-दक्षिणा पर ही निर्भर रहते हैं, " कविता और साधुता श्रमजीविता के साथ कैसे चलती

है, इसे देखना हो तो दादूपंथ में शिक्षित संतों और सेवकों को देखकर समझा जा सकता है।" इस पंथ के संतों ने सुनियोजित तरीके से अन्य संतों की वाणियों को संगृहीत किया और सुरक्षित रखा। संत साहित्य को समृद्धि प्रदान करने में इन संतों का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कहीं है, वह यह की- "भक्तिकाल हिंदी साहित्य के इतिहास का स्वर्णयुग है तो कुछ प्रसिद्ध और चर्चित कवियों के कारण ही नहीं, इसे स्वर्णयुग बनाने में इन अल्पख्यात कवियों की बहुत बड़ी भूमिका है।" जिनकी भूमिका का पूरी तरह से मूल्यांकन होना अभी बाकी है। इस दृष्टि से भी यह पुस्तक अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। यह पुस्तक इन अल्पख्यात संतों की रचनाओं को साहित्य के केंद्र में लाती है, साथ ही इनके माध्यम से भक्ति साहित्य के विषय में लेखक द्वारा किया गया विश्लेषण, भक्ति साहित्य को समझने के लिए एक नवीन और निष्पक्ष दृष्टि प्रदान करती है

आज़ाद भारत के स्वप्न, संघर्ष एवं अतीत का काव्यात्मक आख्यान : उत्तर कबीर नंगा फकीर

समीक्षक – कुलदीप उपाध्याय

यदि कबीर मध्यकालीन भारतीय समाज की सर्वाधिक जागृत मनीषा हैं तो गांधी आधुनिक भारत में सत्य, अहिंसा, संघर्ष और स्वाधीनता के सबसे सशक्त स्वर।

कबीर का संघर्ष यदि अपने समय के कट्टर सांप्रदायिकों से था, तो गांधी का संघर्ष इसके साथ-साथ उस विदेशी सत्ता से भी था जो भारतीय संप्रभुता को दिन-प्रतिदिन क्षीण करती जा रही थी। मसलन कबीर और गांधी दोनों के जेहन में स्वाधीन भारत के सुनहरे भविष्य की चाह थी। ऐसे में दोनों को आमने सामने रखकर, उनके युग संदर्भों के साथ आधुनिक भारत की दशा-दिशा पर उन्हीं के शब्दों में विचार करना न सिर्फ प्रासंगिक बन जाता है; वरन यह एक औदात्यपूर्ण कार्य भी है। इसी क्रम में हाल ही में गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्रो कैलाश नारायण तिवारी रचित उपन्यास "उत्तर कबीर नंगा फकीर" की चर्चा करना जरूरी हो जाता है।

पुस्तक नाम - उत्तर कबीर नंगा फकीर
विधा - उपन्यास
प्रकाशक - गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष- 2020
रचनाकार- प्रो कैलाश नारायण तिवारी

"उत्तर कबीर नंगा फकीर" उपन्यास में प्रो के एन तिवारी कल्पना के कलात्मक प्रयोग से संत कबीर और महात्मा गांधी को एक मंच पर खड़ा करते हैं। सद्य: प्रकाशित इस उपन्यास में दोनों अपने समय, स्वप्न और संघर्ष पर संवाद करते नज़र आते हैं।

उपन्यास में महात्मा गांधी 'आध्यात्म-चेतस राजनीतिक व्यक्ति' के रूप में चित्रित हैं, तो संत कबीर 'आध्यात्मिकता का सहारा ले भौतिकता के समर में बेपरवाह संघर्षरत व्यक्ति' के रूप में चित्रित है; किंतु दोनों का साध्य मानवता मात्र की रक्षा करना है। इस उपन्यास में कबीर का चित्रित चरित्र उस संत व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न है जो संसार को मायाजाल और कागज की पुड़िया कहता है तथा मुक्त के लिए सतगुरु वंदना करता है वरन यहां "कबीर में जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना प्रबल है। वह देवलोक से ज्यादा मृत्युलोक को महत्व देते हैं। दूसरी तरफ गांधी अपनी नियति और कर्मफल का मूल्यांकन करते नजर आते हैं।

'स्वप्न शैली' और 'फ्लैशबैक शैली' का एक साथ प्रयोग हिन्दी साहित्य के काव्य जगत में बहुतायत में देखने को मिलता है। किन्तु गद्य क्षेत्र में इसका अभाव है। उपन्यास "उत्तर कबीर नंगा फकीर" इस अभाव की पूर्ति का पहला सफल प्रयास प्रतीत होता है।

गांधी के चिंतन में उनके स्वप्न का भारत है, उनके काल का भारत है तो दूसरी ओर कबीर वर्तमान भारत के यथार्थ को फ्लैशबैक शैली में बयाँ करते हैं। गांधी, कबीर द्वारा बताये गये जागतिक सच से विह्वल हैं। उनकी विह्वलता में स्वप्न, अतीत और यथार्थ का द्वंद्व है। जो गांधी के 'संवादात्मक औत्सुकता' में सहज प्रकट

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय 97211158634 ramesh.upa.123@gmail.com

होता है। रचनाकार के इस शैलीगत प्रयोग से यह उपन्यास एक ऐसा मनोवैज्ञानिक उपन्यास बन पड़ा है जिसमें गांधी के मनोविज्ञान से 'सहृदय पाठक' सहज तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

उपन्यास की कथावस्तु तीन परिच्छेदों में विभक्त है। तीनों परिच्छेद में लेखक अपनी कहन शैली के साथ 'नरेटर' की भूमिका में मौजूद रहता है।

पहला परिच्छेद विशुद्ध रूप से काल्पनिक है, किन्तु इसमें आज़ाद भारत के सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। देवलोक से कबीर योग द्वारा परकाया-प्रवेश कर काशी में कुछ दिन निवास करते हैं। इस दौरान कबीर अपने समय की काशी और 21वीं सदी की काशी की तुलना करते हैं –

"ऐसा दृश्य तो मैंने जीवन में कभी देखा ही नहीं था। विचार-विमर्श, खोद-विनोद, नुक्ताचीनी, बहस-मुबाहसा तो मेरे जमाने में भी होता था। पर वह सारी चर्चाएं केवल धर्म और दर्शन तक ही सीमित रहती थीं। कभी सामाजिक न्याय का हिस्सा नहीं बनी। और आज! आज तो हर कोई बिना रोक-टोक के मनोविनोद में ही एक-दूसरे को कटारी मर रहा है। सचमुच लगता है कि काशी की मिट्टी में नई जान आ गई है।" ... पृष्ठ सं- २०

कबीर आगे एक स्थान पर कहते हैं- "*एहतियात तो बरतनी होगी। सचमुच जमाना बदल चुका है। लोग-बाग नाते-रिश्तों को भी तार-तार कर रहे हैं। अजीब समय आ गया है इस देश में। रिश्ते-नाते भी अब पवित्र नहीं दिख रहे। विश्वास आस्था और मूल्यपतन का इतना गहरा संकट तो मेरे भी जमाने में नहीं था।" ... पृष्ठ सं - ४०*

कबीर मध्यकाल में जिस मठाधीशी का विरोध कर रहे थे, उनके अनुयायियों ने उसे ही अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ति का साधन बना लिया। कबीर काशी में अपने नाम से संचालित मठ की हकीकत जानकर बहुत क्षुब्ध होते हैं और सोचते हैं –

"यह सब किसने किया होगा? मेरे चेलों ने? या साधु-संतों ने? या फिर पुत्र ने? आखिर किसने यह तामझाम खड़ा किया होगा? किसके दिमाग की उपज है- कबीर प्राकट्य? किसने कहा मैं अवतारी था? किसने कहा था कि मेरे नाम का मठ बनाओ और पेट पूजा का मुझे मोहरा बनाओ।" ... पृष्ठ सं - ४४

काशी प्रवास के दौरान कबीर भारत की लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रणाली से भी दो-चार होते हैं। चुनाव में जीतने हेतु सारे गैर लोकतांत्रिक हथकंडे अपनाए जाते हैं। हारी हुई पार्टी भी सांसदों-विधायकों के जोड़-तोड़, खरीद-फरोख्त से सरकार बना लेती है। फिर पूरे पाँच वर्ष जनता का खून चूसती है।

इस प्रकार उपन्यास का प्रथम परिच्छेद आज़ाद भारत की धूल-धूसरित लोकतांत्रिक व्यवस्था की झाँकी प्रस्तुत करने में सफल रहता है।

उपन्यास का दूसरा परिच्छेद इस वाक्य से शुरू होता है- "कबीर देवलोक लौट चुके थे। एक चिंता को लेकर। एक पीड़ा एक दंश को लेकर। वर्तमान भारत का दीदार कर।" असल में कबीर की चिंता, पीड़ा और दंश आधुनिक भारत की बदहाली और मूल्यविहीन सत्ता तंत्र पर था। लेखक यहाँ बड़ी कुशलता से कबीर के मनोविज्ञान को दोहे का जुबान देता है-

"देखी तुम्हरी ऐसी काशी मनुवा हुआ बीमार।
अब ना आवन होइगा, कहै कबीर पुकार।।" ... पृष्ठ सं - ५६

इसी पीड़ा के साथ संत कबीर की मुलाकात महात्मा गांधी से होती है। और यहीं से उपन्यास अपने मूल कलेवर को प्राप्त करता है। आगे कुछ कहने से पूर्व, मिशेल पेराफ़ा का 'नॉवेल' को परिभाषित करता यह कथन सहज स्मृति में आ जाता है। जो आलोच्य उपन्यास पर सटीक बैठता है -

"उपन्यास यह सिद्ध करता है कि इतिहास के बिना कोई समाज नहीं होता और समाज के बिना इतिहास भी नहीं

होता है। उपन्यास वह कलारूप है जो ऐतिहासिक और सामाजिक रुप से परिभाषित मनुष्य की पुनः प्रस्तुति करता है।"

उपन्यास "उत्तर कबीर नंगा फकीर" में संत कबीर और महात्मा गांधी अपने ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भों के साथ न सिर्फ उपस्थित हैं वरन वे भारत के भूत-भविष्य-वर्तमान पर अनुभूतिपरक चर्चा करते हैं।

कबीर काशी-प्रवास का "आंखों देखा हाल" गांधी को बयां करते हैं। कबीर द्वारा बयां किया गया हिंदुस्तान का यथार्थ उन्हें अंदर ही अंदर सालता रहता है। एक प्रकार से गांधी का 'आजादी का व्यामोह' भी टूटता नजर आता है –

"खामोश मन कुटिया के बाहर बैठे गांधी सिर्फ एक ही बात पर विचार कर रहे थे कि मेरे सपनों के भारत का ऐसा हश्र क्यों हुआ? क्यों मेरे साथियों ने मुझे भुला दिया? क्या मेरी विचारधारा मेरी योजनाएं इतनी असंगत थी कि उन्हें छोड़ देना जरूरी समझा गया? आखिर क्या खामियां थी मेरे विचारों में? सात लाख गांवों के विकास के बारे में व्यक्त मेरी विचारधारा क्या महज अवधारणा थी? क्यों स्वतंत्र भारत के गांव आज उजड़ रहे हैं? क्यों देश के शहर नारकीय बन रहे हैं? कुटीर-उद्योग, खेती-बारी, ग्रामीण-शिक्षा और स्वास्थ्य-सेवाओं पर क्यों नहीं ध्यान दिया हमारे लोगों ने?" ... पृष्ठ सं - ९०

भारत एक कृषि प्रधान देश है। आबादी का एक बड़ा तबका किसान है। जो खेती कर खुद का और देश का पेट भरता है। आजादी के बाद से कई नियम और कानून बने किंतु किसान की बदहाल स्थिति में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ। पिछली शदी के नवें दशक से कृषि क्षेत्र में धीरे-धीरे कारपोरेट पूंजी और नई तकनीक के आक्रामक साम्राज्य से छोटे और मझोले किसानों की दुर्दशा बद से बदतर होती गई। उपन्यास में कबीर-गांधी के संवाद में किसान समस्या का यह यथार्थ अपने सघनतम रूप में मौजूद है।

" कबीर ने बड़े ही इत्मीनान से गांधी को अपना अनुभव सुनाना शुरू किया। बापू अपने हाड-मास को गला-गला कर किसान फसलें पैदा करता है। फसलें कभी अच्छी होती हैं तो कभी लागत भी नहीं मिल पाती। सस्ती दरों पर खरीदी गई किसानों की वही फसलें जब शहर की मंडियों से होते हुए सर्वसाधारण तक पहुँचती हैं तो पाँच गुने दाम में बिकती हैं। तो आप बतावें यह लाभ किसको मिलना चाहिए? किसानों को ही ना। पर ये लाभ आढ़तियों, बिचौलियों और पूँजीपतियों को मिलता है। ऐसी स्थिति में मैंने देखा कि आज के दिनों में चारों ओर से किसान ही मारा जा रहा है। एक ओर प्रकृति कभी उसका घर उजाड़ देती है तो दूसरी ओर वही प्रकृति उसकी फसलें सुखा देती है। और जब वह अपनी बची हुई कुछ फैसले लेकर मंडियों में जाता है तो उसकी मजबूरी का फायदा उठाने वाले बिचौलिए अपनी तिजोरी भरते हैं। अब आप ही बतावें - बेचारा किसान आत्महत्या नहीं करेगा तो क्या करेगा? " ... पृष्ठ सं - ९१

यह उपन्यास आधुनिक भारत का सामयिक यथार्थ, उसके समस्या के साथ रखता है और व्युत्पन्न इस कटु यथार्थ के कारण की पड़ताल भी करता है। बगैर किसी पूर्वाग्रह और वैचारिक दुराग्रह के अपने पाठकों और वर्तमान सत्ता से यह प्रश्न करता है कि इस समस्या और उसके निवारण को लेकर आपका विज़न क्या है?

उपन्यास के इस कथोपकथन का उद्धरण देना यहां प्रासंगिक बन जाता है - कबीर तर्क देते हैं - "*बापू देश ने विकास तो बहुत किया है पर असमान आर्थिक विकास का ढांचा और बेहिसाब बड़ी जनसंख्या ने विकास के सारे अवदानों की धज्जियां उड़ा दी हैं। पूंजीपतियों का बाजार पर नियंत्रण अब रुकने वाला नहीं दिखाई देता! जनसंख्या तो इतनी बढ़ गई है कि विकास का मतलब ही झूठा पड़ गया है। ताज्जुब की बात तो यह है कि इन सारी बातों को पूरा देश और नेता भी*

जानते हैं। पर सुधार करने के लिए कोई तैयार नहीं दिखता।" गांधी कहते हैं - *"तो संत प्रवर इसके लिए कौन जिम्मेदार है? किसने ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया?"* कबीर झट उत्तर देते हैं - *"आपके लोग बापू! आपके लोग। आपके ही झंडा-बिरादरी। आपके ही स्वनाम धन्य लोग।"... पृष्ठ सं - ७९*

इन प्रसंगों में उपन्यास का कथात्मक कलेवर उत्कृष्ट है। कथोपकथन में संत कबीर का सत्व और महात्मा गांधी का महात्म्य दोनों अपने सार्थक वज़ूद में सहृदय से तादात्म्य स्थापित करते हैं।

"बापू एक राजनीतिक लड़ाई लड़ रहे थे और मैं (कबीर) आध्यात्मिक लड़ाई लड़ रहा था। पर सामाजिक स्तर पर हम दोनों का लक्ष्य समान था। ये अंग्रेजों से मुक्ति चाहते थे और मैं सामंतों से। ... फिर भी जो बातें दोनों को एक दूसरे से अलग करती थी वह थी - व्यक्तिपरकता एवं सामूहिकता की स्तरीयता। कबीर आत्मगत साधना पर बल देते थे तो गांधी सामूहिक चेतना के विकास पर केंद्रित थे।"... पृष्ठ सं - ९४

यह यथातथ्य है कि कबीर साहित्यिक पुरुष हैं तो दूसरी ओर गांधी राजनीतिक महापुरुष। उपन्यास में कबीर द्वारा गांधी को वर्तमान भारत के सत्य से अवगत कराना; प्रेमचंद के इस वाक्य "साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।" की सोद्देश्यता को भी स्पष्ट करता है।

"उत्तर कबीर नंगा फकीर" उपन्यास का तीसरा परिच्छेद अपनी दार्शनिक चेतना और मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति में सबसे सशक्त है। कबीर आज़ाद भारत और भारतीय लोकतंत्र की बदहाल व्यवस्था का 'आँखो देखा हाल' गांधी को सुनाते हैं, जिसमें गांधी का संघर्ष, गांधी का स्वप्न तिरोहित है।

आज़ाद भारत के सच और खुद पर अड़ीबाजों द्वारा लगाये गये आरोपों से व्यथित होकर गांधी कबीर से प्रतिप्रश्न करते हैं -

" संत जी! मैं तो विवश था अपने सिद्धांतों से। यदि वैसा न करता तो क्या करता? एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का सपना देखा तो बुरा क्या किया? लेकिन परवर्ती लोगों ने उसे सत्ता प्राप्ति का साधन मान लिया तो इसमें मेरा क्या दोष? असली दोषी तो वे लोग हैं जिन्होंने धर्मनिरपेक्षता, जातीय-चेतना दलित उद्धार और सनातन चिंतन जैसी भावना को सत्ता प्राप्ति का साधन मान लिया। अब हमें क्या पता था कि धार्मिक-सहिष्णुता की भावना भी तुष्टिपरक-नीतियों का साधन बन जाएगी?"... पृष्ठ सं - १८९

वर्तमान व्यवस्था के उत्तरदायी कारकों की पड़ताल में गांधी अतीत और वर्तमान से बार बार टकराते हैं। गांधी के अन्दर से कई गांधी प्रश्न करने लगते हैं। विभाजित व्यक्तित्व कभी सत्यार्थी, कभी आत्मचेतस, कभी द्रस्टा रूप में अभिव्यक्त होता है।

"आत्मावलोकन की इस नव प्रक्रिया में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अंदर बैठा सत्यार्थी मानों उनसे बहस कर रहा है। उनके निर्णयों पर अँगुली उठा रहा है। एक बार तो लगा कि चंद्रशेखर की शहादत और भगत सिंह जैसे लोगों की फाँसी भी उनसे सवाल कर रही है।.. गोलमेज सम्मेलन की असफलता से लेकर आम्बेडकर की चेतावनियाँ और भारत छोड़ो की शुरुआती लड़ाई तक के सवाल अब उनके अन्तस् में उठने लगे थे।.. अन्दर से ही फिर एक दूसरा गांधी पूछता। अरे भाई ! तुम महात्मा गांधी हो या मोहनदास करमचंद गांधी ? और यदि मोहनदास करम चन्द गांधी हो तो तुमने साऊथ अफ्रीका क्यों छोड़ा ? चलो ! छोड़ भी दिया तो चम्पारण क्यों गए ? क्यों गोपालकृष्ण गोखले से मिले ? क्यों भारत की आजादी में जीवन खपा दिए ?"... पृष्ठ सं - २०७

रचनाकार अपने सृजनात्मक सदाशयता से गांधी के मनोविज्ञान को मुकम्मल रूप देने में सफल हुआ है।

उपन्यास में गांधी आत्मावलोकन करते हुये अपने

संघर्ष का पुनर्मूल्यांकन करते नज़र हैं। इस प्रसंग में रचनाकार संघर्ष एवं स्वप्न, कर्म एवं नियति, आत्मा एवं शरीर, अध्यात्म एवं भौतिकता के द्वंद्व को गांधी के शब्दों में, गांधी के चेतन-स्वर में इस प्रकार स्पष्ट करता है मानो यह उपन्यास नहीं गांधी की आत्मकथा हो। रचनाकार इस प्रसंग में स्वयं को न्यून कर कर लेता है। गांधी पाठक से सीधे संवाद करते नज़र आते हैं। जिससे यह उपन्यास अपनी पूर्ण सृजनात्मक गरिमा को संस्पर्श करता है।

गांधी समय की महत्ता को स्वीकारते हुये, नियति को प्रबल मानते हैं किन्तु दूसरी तरफ गांधी कर्मशील भी हैं। उपन्यास में नियति एवं कर्म के इस द्वंद्व को रचनाकार बड़ी कुशलता से चित्रित करता है। जिसमें गांधी के व्यक्तित्व को लेशमात्र क्षति नहीं पहुंचती।

उपन्यास में पृष्ठ सं - १६२ पर गांधी कहते हैं -

"सन्तप्रवर ! आप नियति की चुनौती को अस्वीकार करना चाहते हैं ? तत्कालीन परिस्थितियों को जाने बिना काल्पनिक बातों का उत्तर चाहते है ? सन्त जी ! इतिहास जो बन चुका था , उसकी नींव जिन्ना की जिद्द और गोरों की सोच ने बहुत पहले ही डाल रखी थी । वैसा ही भारत 'नियति' ने तय की थी।"

पृष्ठ सं -२०९ पर गांधी के विभाजित व्यक्तित्व के वर्णन में रचनाकार गांधी की कर्मशीलता को वर्णित करता है -

"अंदर बैठा गांधी का दूसरा प्रतिरूप फिर उन्हें उलझाया- नियति नहीं बापू! कर्म कहिए! कर्म। कर्म ही पूजा है, कर्म ही देवता है। कर्म से ही व्यक्ति का मूल्यांकन होता है। कर्म ही इतिहास रचता है। इतिहास पहले से नहीं बना रहता। मनुष्य अपने कर्मों से स्वयं उसे निर्मित करता है।.. कर्म ही तो आपकी पूजा अर्चना थी। इसलिए आपको तो अपने आप पर भरोसा रखना चाहिए।"

कहना न होगा कि धर्म और जाति के नाम पर तुष्टीकरण की राजनीति ने आज़ाद भारत के साम्प्रदायिक सौहार्द्र को सर्वाधिक क्षति पहुंचाया है। इसी संदर्भ में गांधी का यह मंतव्य कोई दार्शनिक विचार नहीं अपितु गांधी का अनुभूतिजन्य बोध प्रतीत होता है -

"धर्म और जाति राजनीति के साधन नहीं हो सकते। धर्म मन की विकृतियों का परिष्कार करता है और जातियाँ अस्मिताओं का बोध कराती हैं। सो दोनों में तालमेल बिठाना जरूरी होता है। जो लोग इन दोनों को राजनीति का साधन मानकर अपने को देश सेवक समझते हैं वे लोग न तो देश की सेवा करते हैं और न ही जाति और मजहब की। वे लोग सिर्फ अपना भला करना चाहते हैं।" पृष्ठ सं - १९९

प्रो के एन तिवारी आज़ाद भारत की बदहाल व्यवस्था के यथार्थांकन में काशी के अड़ीबाजों की बतकही को केंद्र में रखते हैं। काशी कबीर की जन्मस्थली है, और रचनाकार की भी। जिससे दोनों का सहज जुड़ाव स्वाभाविक है। चूंकि रचनाकार अड़ीबाजों की इस बतकही का चश्मदीद रहा है, इसलिए उपन्यास में अंकित अड़ीबाज-विमर्श कोई कल्पित विमर्श भी नहीं है। दूसरी बात काशी का यह अड़ीबाज-विमर्श पूरे उत्तरभारत के नुक्कड़ गलियों, चाय की टफरियों और नाई की दुकानों पर होनी वाली बतकही का सहज प्रतिनिधित्व करता है। पाठक भी अनुभव करता है कि वह इस बतकही का हिस्सा रह चुका है।

रचनाकार की कलात्मक कुशलता से अड़ीबाज वर्णन सजीव हो उठा है -

"अड़ीबाजों की चुहलबाजी देख कबीर मुस्काने लगे। उन्होंने गौर किया - बहस के साथ यहां शौक का भी पालन हो रहा है। कोई बीड़ी सुलगा रहा है तो कोई पान घुलाए बतियाए ही जा रहा है। एक सज्जन तो सुरती ठोंकने में इतने व्यस्त थे कि भूल ही गए कि बगल में बैठा एक नौजवान उन्हें खा जाने वाली नजरों से घूर रहा है।"... पृष्ठ सं - १४४

"इनमें से कुछ ऐसे भी थे जो अड़ीबाजों में खुद को तीसमार खां समझते थे। वह वर्तमान से ऊबकर अतीत की खोह से कोई खास रत्न निकालने की कोशिश कर रहे थे। इनमें से कोई वर्णव्यवस्था को सजा-सँवार रहा था तो कोई आंबेडकर को भगवान का दर्जा दिए जाने पर आमादा था।" ... पृष्ठ सं - २२१

अड़ीबाजों की बतकही में चुहलबाजी भी है और गम्भीर मुद्दों की उधेड़बुन भी है। उपन्यास में रचनाकार ने दोनों को बड़ी रचनात्मकता से उकेरा है।

"बा बेटा बा! जियो राजा! चलावत हइया रिक्सा। पेलत हइया फिलास्फी। अब गांधी को यहाँ कहाँ से भिड़ा लाये बे? कय तक पढ़ले हइये? अब उनको यहाँ कोड करने की क्या जरूरत है?" ... पृष्ठ सं - १७४

मुरहू पहलवान नामक अड़ीबाज गांधी विमर्श को बड़ी गम्भीरता से परिभाषित करता नज़र आता है -

" गांधी को 'जीना और गांधीवादी होना' दोनों में बहुत फर्क होता है जो गांधी को जीता है अपने आचरण में भी उन्हीं जैसा व्यवहार करता है। और जो केवल सिद्धांतों में विश्वास करता है जरूरी नहीं कि वह गांधी के आचारों-विचारों को भी जिए। हां, वह गांधी का समर्थक कहला सकता है। उसके अलावा एक तीसरा भी होता है जो केवल गांधी का नाम लेता है। उनका जन्मदिन मनाता है। मूर्तियों पर फूल माला चढ़ाता है, परंतु आचरण में गांधी की एक बात नहीं जीता। वास्तव में ऐसे लोग मूलरूप में केवल छली, कपटी और पाखंडी गांधीवादी होते हैं। भारतीय समाज में आजकल ऐसे गांधीवादियों की कमी नहीं है।" ... पृष्ठ सं - १४१

"उत्तर कबीर नंगा फकीर" उपन्यास में कबीर की साहित्यिकता के सम्यक निरूपण हेतु रचनाकार कबीर के पदों का पद्यबद्ध सरलानुवाद प्रस्तुत करता है। जिसमें पाठक को मूल का आस्वाद प्राप्त होता है। कुछ पद रचनाकार के पूर्णत: मौलिक हैं। जिनमें उपन्यासकार का कवि व्यक्तित्व प्रत्यक्ष होता है। इन पदों के प्रयोग से उपन्यास का अभिव्यक्ति पक्ष अपने पूर्ण कलात्मक वैभव पर है। यथा -

गांधी वर्तमान भारत की बदहाल व्यवस्था पर व्यथित-चिंतित हैं। गांधी के इस व्यथा को कबीर जिस कविता में व्यक्त करते हैं, वह रचनाकार की काव्य-प्रतिभा की उपज है -

"साथी तुमने क्या कर डाला?
ना केवल विचार को मारा,
सत्य, शील, संघर्ष को मारा।
नाम का मेरे मंत्र तू जपकर
सत्ता, शासन देश में रहकर
क्यों न बनाया मेरा भारत?
क्यों तुम किये स्वप्न को आहत?
कहकर मुझको भाग्य विधाता
गोरों से मुक्ति का दाता
चली नहीं क्यों मेरी नीति?
करते थे यदि मुझसे प्रीति
आज़ादी इतिहास की बातें
जेलों में जो काटी रातें
उसे मैं गिन-गिन हर दिन रोता
कारण समझ नहीं मैं पाता
साथी! तुमने क्या कर डाला?" ... पृष्ठ सं - १८०

"सूक्त-वाक्य" उपन्यास के रचनात्मक कसाव में अभिवृद्धि करता है और यह तब अधिक रचनात्मक हो जाता है जब वह उपन्यासकार की मौलिक सर्जना का उपज हो। "उत्तर कबीर नंगा फकीर" उपन्यास के सूक्त वाक्य उपन्यासकार की मौलिक सर्जना के साक्षी भर नहीं उद्घोषक भी हैं।

यथा -

१, कहते हैं जब एक बार मन में संदेहों का युग्म तैयार हो जाता है तो अंततः यह संदेह व्यक्ति की कमजोरी बन जाती है। ना चाहने पर भी वह भावना बार-बार उठती रहती है। ... पृष्ठ सं- १६९

२. स्वयं से स्वयं की आवाज का टकराना यानी आत्मालाप का अनुभव कभी-कभी खतरनाक भी होता है। लोक ऐसे व्यक्ति को या तो साधना में लीन परम योगी मान लेता है या फिर विक्षिप्त। ... पृष्ठ सं- १७०

सारत: आलोच्य उपन्यास "उत्तर कबीर नंगा फकीर" वर्तमान भारत के मौजूदा परिदृश्य में हस्तक्षेप करता है, उसके ठहराव को तोड़ता है। वाद-विवाद-संवाद की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है। भारत की गली-नुक्कड़ की बहसों, लोक-वार्ता को अभिव्यक्त करते हुये बगैर किसी पूर्वाग्रह और वैचारिक दुराग्रह के, अपने पाठकों और वर्तमान सत्ता से यह प्रश्न करता है कि वर्तमान भारत की सामयिक समस्या और उसके निवारण को लेकर आपका विज़न क्या है?

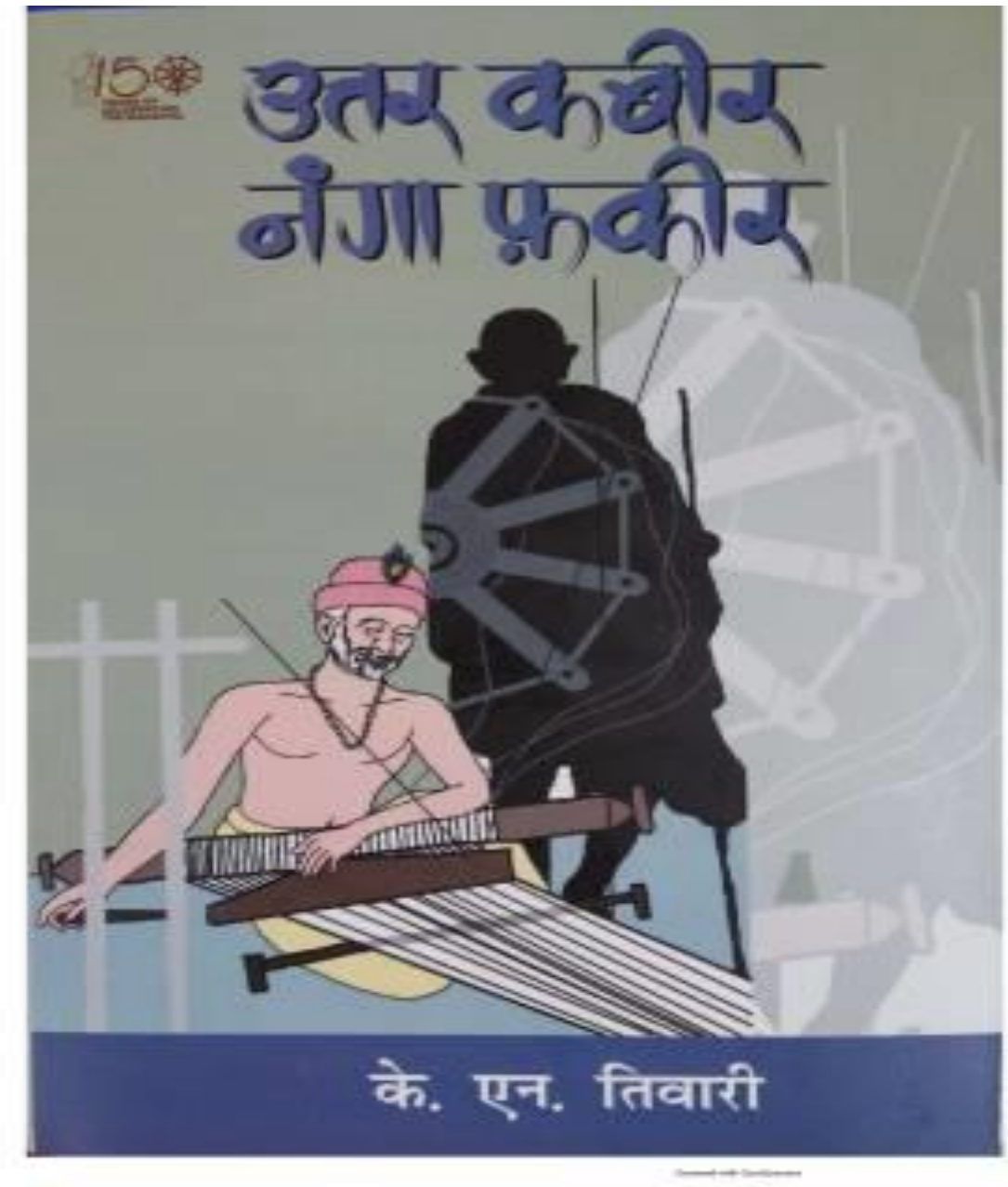

 ISSN: 2454-2725

मुर्दे का मजहब बताती 'मंटो न मरब'

समीक्षक- तेजस पूनियां*

हिंदी साहित्य में कहानी लिखना आरम्भ हुआ 19वीं सदी के प्रारंभ से। पहली कहानी किसे माना जाए इसको लेकर साहित्येतिहासकारों में बहस भी हुई। तमाम वाद-विवाद से छुटकारा पाकर इंदुमती को पहली कहानी होने का गौरव मिला। इसके बाद पहली लघुकथा बनी 'झलमला' पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की। यह कहानी सर्वप्रथम सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। और आज यह दौर भी है जब हर कोई हिंदी का लेखक होना चाहता है। हिंदी से किसी न किसी तरह से जुड़ना चाहता है।

लेखक केदारनाथ जो अपने नाम के बाद 'शब्द मसीहा' नाम से उपनाम भी लगाते हैं। मंटो न मरब इनका लघुकथा संग्रह है। लेखक केदारनाथ को 'शब्द मसीहा' उपनाम गीतों के एक कार्यक्रम के दौरान हैदराबाद के सेवानिवृत्त प्रोफेसर गंगेश गुंजन तथा विष्णु प्रभाकर के पुत्र अतुल कुमार प्रभाकर ने दिया था। इनके इस कथा संग्रह में एक सौ उन्नीस कहानियां शामिल हैं।

पुस्तक - मंटो न मरब
लेखक - केदारनाथ शब्द मसीहा
प्रकाशक - मचान , पश्चिम बंगाल
मूल्य - 150 रुपए

कहानियों का आरंभ होता है 'राम से बड़े' कहानी से और अपनी पहली ही कहानी से लेखक पाठकों का मूड सेट कर देते हैं। राम की मूर्ति को गंगा में प्रवाहित कर रहे लोगों से जब सवाल किया जाता है कि इन्हें क्यों ले जा रहे हो तब मात्र चार पंक्तियों की इस कहानी में अंतिम वाक्य आता है - "राम जी ने शबरी के बेर खाए थे। और ससुर आज के लोग राम से बड़े हो गए।" यह मर्यादा पुरुषोत्तम की दलितों से जुड़ी कहानी का स्मरण दिलाती है तो वहीं राजनीति पर भी व्यंग्य कसती है।

आगे कहानी आती है - 'गंदे खिलौने दुनिया के' यह कहानी भी दलितों को लेकर चलती है। और सड़क पर पड़ी गंदगी की उपमा इन्हें दी जाती है। एक गंदगी उठाने वाली का बच्चा जब जिद करता है महंगे खिलौने लेने की तब उसकी मां का कथन है - 'हमारे पास इतना पैसा नहीं कि हम खिलौने खरीदें... हम तो खुद खिलौने हैं... गंदे खिलौने दुनिया के।' दलितों के जीवन पर खूब साहित्य रचा गया है। दलित जाति के व्यक्ति वाल्मीकि ने राम कथा का गुणगान किया तो कई लोगों ने उसे सराहा भी तो कई ने उसकी आलोचना भी की। दरअसल ये सब हमारे समाज के वो गंदे खिलौने हैं जिनकी ओर कोई देखना भी नहीं चाहता।

'इरादे नहीं' कहानी 'उसने कहा था' कहानी की याद दिलाती है। इसमें भी देशभक्ति और देश प्रेम के संवाद नजर आते हैं। नया नवेला दूल्हा कुड़माई के बाद सीधा सीमा पर आ जाता है और नफरतों के तूफान में जान गंवा बैठता है। 'बीबी समझा है क्या' कहानी स्त्री चेतना की कहानी है अपने स्वरूप व ढांचे से। लेकिन यही कहानी एक पुरुष पर बलात घटना का झूठा आरोप मढ़ने का भी इशारा करती है अप्रत्यक्ष रूप से। साथ ही यह घर की उन महिलाओं के लिए भी आवाज उठाती है जिन्हें तथाकथित मर्द जात रोजाना बिस्तर पर किसी चींटी की भांति मसलने के बाद यूं ही छोड़ देता है। जो कभी उससे उस बात के रुपए भी नहीं मांगती ऊपर से उसके दिए बच्चों को भी पालती आ रही है।

कीड़ा कहानी परोपकार करने वाले परोपकारियों की बात करती है और बताती है कि परोपकार का कीड़ा पालने के लिए मन को मजबूत रखना ही पड़ेगा। ओवरटेक कहानी रिश्तों और प्यार में ओवरटेक कर जाने वालों की बात करती है। भुना भविष्य दहेज प्रथा

शिक्षा स्नातक (बीएड) , स्नातकोत्तर हिंदी, पता - फ्लैट नंबर 601, स्काई वे बिल्डिंग, नजदीक - गोरस भंडार, मुरलीपुरा, जयपुर - 302039, संपर्क -9166373652, ईमेल- tejaspoonia@gmail.com

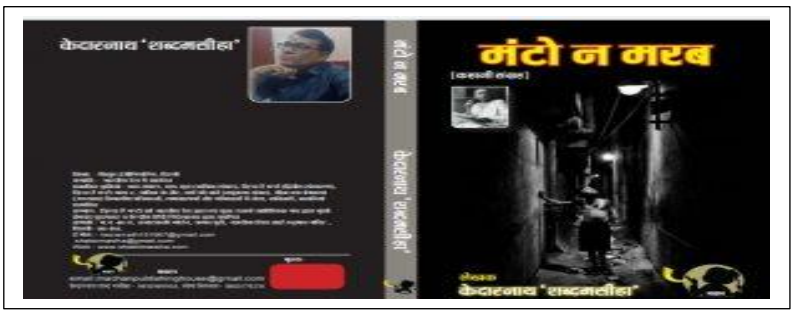

पर व्यंग्य करती हुई कहानी है। कसाई मसीहा भी इस संग्रह की बेहतरीन कहानियों में से एक है। इसमें एक ऐसे कसाई के बारे में उल्लेख है जो दिन भर जानवरों को हलाल करता है। लेकिन बच्चे हुए गोश्त को जो उसके किसी काम का नहीं होता उसे चील, कौवे आदि को खिला देता है। इस तरह से वह हत्यारा होकर भी किसी के लिए जीवनदायी अन्न उपलब्ध करवाने वाला मसीहा भी बनकर उभरता है।

चिकन कहानी अन्य कहानियों की तरह ही लघु आकार में है लेकिन पांच से छह पंक्तियों की इस कहानी का अंतिम वाक्य मारक है। "चखना चाहिए... लाशों का। स्वाद बदल गए हैं... आदमी अब चिकन हो गए हैं।" यह कहानी शहरों के नए नामकरण तथा सत्ता के गलियारों में बनने वाले सत्ता के जाम में लाशों के चखना चाहने वालों पर करारा तमाचा है। कोई जवाब नहीं, डसने का डर, अव्वल से कम, गर्व है, इंसान इंसान में फर्क नहीं होता भाई! जैसी कहानियां दलितों, स्त्रियों, समाज, राजनीति पर सवाल उठाती हैं। लगता है जैसे मंटो मरा नहीं है। इस कथा संग्रह का शीर्षक भी लेखक ने अपने प्रिय लेखक मंटो को याद करते हुए ही रखा है। इससे पहले शब्द संधान, शब्द-शूल, जिंदा है मंटो, नाविक के तीर, राहों की बातें, मीता एक प्रेम कथा, अमृता लव एट 50, न-औरत जैसी रचनाएं कविता संग्रह, कहानी संग्रह तथा उपन्यास की शक्ल में साहित्य जगत को प्रदान करने वाले लेखक केदारनाथ शब्द मसीहा 'भारतीय रेल द्वारा युवा उत्कर्ष साहित्यिक मंच द्वारा मुंशी प्रेमचंद पुरुस्कार से भी सम्मानित हो चुके हैं तथा दिल्ली में विद्युत विभाग में इंजीनियर हैं।

ओल्ड माइंडेड स्टुपिड्स कहानी एक प्रेम विवाह करने वाली लड़की की कहानी कहती है। जिसने माता पिता की मर्जी के खिलाफ शादी तो कर ली लेकिन वह पति से खुश नहीं। अब वह माता पिता के समझाने पर ही वापस चली जाती है एक संकल्प लेकर वह संकल्प इस कहानी का शीर्षक ही है। मंगल-अमंगल, बालिका दिवस, लघुकथा की पन्नाधाय, बड़े लेखक कैसे बनें, मां का चुम्बन, प्रेम की जवान किलकारियां कहानियां भी अपने अपने विमर्शों तथा विमर्शों के ढांचे से इतर दोनों ही स्वरूपों में लघु होने के पश्चात भी बखूबी विस्तार तथा ज्ञान का प्रकाश फैलाती है।

हाफीजा कहानी एक स्त्री का खुद की सुरक्षा तथा देश के लिए अपनी जान तक दांव लगा देने की कहानी कहती है। इस कहानी की नायिका हाफीजा स्वयं की रक्षा भी कर लेती है और नापाक दुश्मनों की गिरफ्त से एक परिवार को सुरक्षित लिवा लाती है। अदृश्य कातिल कहानी पुनः एक बार राजनीति की बातें करती हैं। ऐसी राजनीति जिसने लोगों के दिलों में नफरती संसार को जन्म दिया है। माई सी दीखत है कहानी एक बुजुर्ग महिला को गरीब मजदूर द्वारा भोजन करवाने तथा उसमें अपनी मां के दर्शन करने की अनुभूति दे जाती है।

आज के संत, जीनियस की हत्या, गरीब कौन है, जे रामहू न भये हमारे, स्वच्छता विचारों की, दैवीय फूल, अंतिम इच्छा, शेर कहाँ गया? , मुहब्बत के जश्न में, राम उसका भला करें, फ्रेंड रिक्वेस्ट, शुद्धिकरण, औरों के लिए जो जीता है, राहू, राम की हत्या आदि जैसी तमाम कहानियां साहित्य, समाज, राजनीति, अर्थ, धर्म, विमर्श इत्यादि पर करारा प्रहार तथा प्रश्न चिन्ह खड़ा करती हैं। लघुकथाओं की पहली शर्त उनका आकार लघु होना है। इस शर्त तो बखूबी पार करते हुए लेखक कम से कम शब्दों में मारक बातें कह जाते हैं। यहीं से उनका लेखकीय धर्म भी आरम्भ तथा अभिव्यक्ति पाता है। मंटो को सर्वाधिक पसन्द करने वाले इस कथा संग्रह के लेखक 'मंटो कहाँ मरा' नाम से भी एक किताब के साथ शीघ्र कथा संसार में वापसी करने वाले है